ARCHAEOLOGY of GORAKHPUR DISTRICT
(From Earliest times to 600 A.D.)

गोरखपुर जनपद का पुरातत्त्व
(प्रारम्भ से ६०० ई० तक)



डी०फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत

शोध ग्रन्थ

शोधकर्त्ता
राजेश्वर शाही

शोध पर्यवेक्षक
श्री बी०बी० मिश्र
रीडर (अवकाश प्राप्त)

प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय
इलाहाबाद

2001

्रावाक्

एक समय मे पुरातत्त्व का अध्ययन अग्रेजी जानने वाले कुछ गिने–चुने लोगो तक ही सीमित था, लेकिन अपनी विषयगत रोचकता एव हृदयग्राह्यता के कारण इस विषय के अध्ययन के प्रति सामान्य जन भी जागृत हुआ है। वस्तुत इस विषय के अध्ययन–अनुशीलन के माध्यम से ऐतिहासिक अध्ययन को सीमित दायरे से निकालकर सर्वथा नया आयाम प्रदान किया जा सकता है। ज्ञान की साधना के क्रम में मानवीय प्रयास का सही मूल्याकन इस विषय के अध्ययनोपरांत ही किया जा सकता है। इस अध्ययन–क्रम में भारतीय पुरातत्त्व विभाग एव व्यक्तिगत प्रयासो से इससे सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सामग्रियॉ इकट्ठी की जा चुकी है।

सरयूपार परिक्षेत्र मे अनेक अग्रेज विद्वान् अपने पुरातात्त्विक विचार–मथन के द्वारा समय–समय पर नवीन जानकारियॉ प्रस्तुत करते रहे है। इसी क्रम मे कुछ स्थानीय लोगो की भी विषय के प्रति रुचि बढी है। फलत इस परिक्षेत्र से समय–समय पर महत्त्वपूर्ण पुरासामग्रियॉ मिलती रही है, जिनके आधार पर इस परिक्षेत्र की पुरासस्कृतियो के विषय मे हमारा ज्ञानवर्द्धन हुआ है। फिर भी इस परिक्षेत्र के पुरातत्त्व पर अब तक कोई व्यवस्थित अध्ययन नही हो सका था। अतएव यह शोध–प्रबन्ध इस क्षेत्र की पुरासस्कृतियो के उस व्यवधान को मिटाने का एक विनम्र प्रयास है, जो अब तक इसमे विद्यमान था।

गोरखपुर परिक्षेत्र की पुरासस्कृतियो के उद्घाटन मे मै किस सीमा तक सफल हो सका हूँ, इसका निर्धारण विद्वत्–समाज ही कर सकता है, तथापि जहॉ तक मुझसे बन सका है, मैने इस विषय मे अब तक हुयी तमाम खोजो के आलोक मे इस परिक्षेत्र की पुरासस्कृतियो को व्यवस्थित रूप मे प्रस्तुत करने की चेष्टा की है। फिर भी शोध–कार्य एक गम्भीर विषय है, जिसे अंतिम रूप दे पाना अत्यन्त कठिन है। अस्तु कुछ ऐसे तथ्य हो सकते है, जिन्हे पुनः अनुसंधान की अपेक्षा हो। कविवर कालिदास के शब्दो में विश्व–स्रष्टा विधाता की प्रवृत्ति ही ऐसी है कि वह समस्त गुणो को एक ही स्थान में नहीं रखना चाहता–

वर्णप्रकर्षे सति कर्णिकारे दुनोति निर्गन्धतया स्म चेतः।
प्रायेण सामग्र्यविधौ गुणानां पराङ्मुखी विश्वसृजः प्रवृत्तिः।। –कुमार सम्भवम् 3 28

(राजेश्वर शाही)

11 10 2001
इलाहाबाद, उ0 प्र0

आभारोक्ति

अज्ञानान्धस्य लोकस्य ज्ञानाञ्जन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः।।

प्राय. यह मानव स्वभाव ही है कि वह पीढी–दर–पीढी अपनी जातीय धरोहर के परिरक्षण, सम्वर्द्धन और सम्प्रेषण का प्रयास करता है। इतिहास विषय के अध्ययन के प्रति मेरी नैसर्गिक अभिरुचि की पृष्ठभूमि मे कुछ सीमा तक पारिवारिक परिवेश भी काम करता रहा है। जहॉ तक इस विषय मे शोधकार्य का प्रश्न है, यह उत्कण्ठा परास्नातक कक्षा मे प्रवेश के समय से ही मेरे अन्तर्मन मे पल रही थी। इस उत्कण्ठा को, प्रात स्मरणीय पूज्यपाद पिताश्री श्री मैनेजर शाही से अनवरत उर्बर भूमि मिलती रही है। शोध–कार्य की पृष्ठभूमि से लेकर पूर्णता तक आपके अनुपम उत्सर्ग को मै शब्दों में व्यक्त नहीं कर सकता। शोध–कार्य का यह पवित्र–यज्ञ आपकी प्रेरणा एवं प्रोत्साहन के अभाव मे शायद पूर्ण नहीं हो पाता। अस्तु, आपकी मनसा, वाचा, कर्मणा वन्दना करना, मेरा परम कर्त्तव्य है।

सर्वप्रथम मै परम सम्माननीय, उन सभी आचार्यों एव विद्वानो के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिनकी कृतियो से इस शोध कार्य को पूरा करने मे मैने महत्त्वपूर्ण जानकारियॉ प्राप्त की है।

पूर्वाचार्यों मे परम श्रद्धेय गुरूवर, प्रो0 यू0 एन0 राय एवं प्रो0 एस0 एन0 राय का आशीर्वाद, स्नेहपूर्ण सान्निध्य एव प्रेरणाप्रद मार्गदर्शन, मुझे स्नातक कक्षा से ही मिलता रहा है, अस्तु, आप गुरूजनो का मै अतीव कृतज्ञ हूँ।

शोध–कार्य की प्रेरणा के उज्जीवन में मै अपने निदेशक श्री बी0 बी0 मिश्र के अवदान को भुला नहीं सकता। आपके पितृ–तुल्य सहज–स्नेह, मार्गदर्शन एव आशीष को मै शोध–प्रबन्ध की पूर्णता मे एक महत्त्वपूर्ण उपादान समझता हूँ। आपके सान्निध्य मे आने के बाद पुरातत्त्व के प्रति मेरी रुचि बढती गयी। विषयगत् समस्याओ को लेकर जब भी मै आपके पास बैठा, मुझे लगा कि मै अन्तेवासी शिष्यो की परम्परा मे शिक्षा

ग्रहण कर रहा हूँ। शोध–प्रबन्ध मे मैने आद्योपान्त आपकी विचार–दृष्टि का उपयोग किया है, अस्तु आपको मेरा कोटि–कोटि प्रणाम।

विभागीय गुरुजनों मे प्रख्यात पुराविद् प्रो0 विद्याधर मिश्र (पूर्व, आचार्य एवं अध्यक्ष) का मैं विशेष आभारी हूँ, जिनके शब्दो एव विचारो से मुझे विविध प्रकार से सहायता मिली है। आपके सान्निध्य में आने के बाद मैने अनुभव किया कि सहजता विद्वानो का मौलिक गुण है।

परम श्रद्धेय गुरुवर, डॉ0 जे0 एन0 पाल का मै चिरऋणी हूँ, जिन्होने पुरातत्त्व के वर्णमाला से लेकर विषय की गहराइयो तक पग–पग पर आने वाली विविध समस्याओ का अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य से सद्य समाधान किया है। सम्पूर्ण शोध–कार्य के दौरान आपने जिस प्रकार से रुचि लिया है, वह आपका मेरे ऊपर सहज स्नेह ही है। नि:सदेह सहजता और विद्वत्ता को मिलाकर, व्यक्तित्व की कोई प्रतिमा बनायी जा सके तो वह आपकी उपमा बन सकती है। ऐसे गुरुजनो के आशीर्वादो का स्पन्दन ही जीवन को एक लम्बी गति दे सकता है, अस्तु आप मेरे लिए वदनीय है।

शोध–प्रबन्ध की पूर्णता मे, परम श्रद्धेय गुरुवर डॉ0 जे0 एन0 पाण्डेय का अवदान विशेष महत्त्वपूर्ण है, जिनकी कृति से मै अनवरत लाभान्वित हुआ हूँ। गुरुवर डॉ0 एच0 एन0 दूबे के विचारो एव कृतियो से मै स्नातक–कक्षा से ही लाभान्वित होता रहा हूँ। आपसे जो प्रोत्साहन मिलता रहा है, वह मेरे लिए इतना मूल्यवान है कि आभार–प्रदर्शन द्वारा मैं उसे शब्दो की सीमा मे बॉधना नही चाहता। अन्य गुरुजनो मे डॉ0 आर0पी0 त्रिपाठी, डॉ0 जी0के0 राय, डॉ0 यू0सी0 चट्टोपाध्याय, डॉ0 सी0डी0 पाण्डेय, डॉ0 शशिकान्त राय एव डॉ0 हर्ष कुमार से भी मुझे विविध प्रकार की सहायता मिली है, अस्तु मै आप सभी का हृदय से आभारी हूँ।

विभागीय सहयोगियो मे श्री विजेन्द्र खत्री का मै विशेष आभार व्यक्त करना चाहता हूँ, जिन्होंने अपना अत्यन्त मूल्यवान समय देकर विविध प्रकार से मेरी सहायता की है। श्री अरविन्द मालवीय, श्री सतीश राय एव डॉ0 मानिक चन्द्र गुप्त का भी मै विशेष आभार मानता हूँ, जिनसे अनेक प्रकार से मुझे सहायता मिली है। विभाग के अन्य सहयोगियो मे श्री आर0 पी0 यादव, श्री राजेश कुमार यादव, श्री कमलेश कुमार एव श्री श्रीप्रकाश मिश्र धन्यवादार्ह है। प्राचीन इतिहास विभाग के कार्यालय का असीम सहयोग मुझे प्राप्त हुआ है, जिसके लिए धन्यवाद ज्ञापित करने के पश्चात् भी मै उऋण नही हो पाऊँगा।

विभागीय पुस्तकालय के अतिरिक्त इलाहाबाद सग्रहालय एवं उसमे अवस्थित पुस्तकालय के सचित कोश से भी मै निरन्तर लाभ उठाता रहा हूँ। इस संस्था के सहयोगियों में श्री धीरेश जोशी (पुस्तकालय

सूचना सहायक) श्री रामरतन प्रसाद एव मीठा लाल मीणा ने भी यथाशक्ति मुझे सहयोग दिया है, एतदर्थ आप लोग भी धन्यवाद के पात्र है।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एव सस्कृति विभाग के पुराविद् एव सग्रहालयाध्यक्ष श्री कृष्णानद त्रिपाठी ने शोध कार्य के दौरान आद्योपान्त रुचि लेकर जो अप्रतिम योगदान प्रदान किया है, उसके लिए मै आपका चिरऋणी हूँ। आपके साहाय्य एव सौहार्द के अभाव मे शोध प्रबन्ध, शायद अपने वर्तमान कलेवर मे प्रस्तुत नही किया जा सकता, एतदर्थ आपके प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करना मै अपना पुनीत कर्त्तव्य समझता हूँ।

गोरखपुर विश्वविद्यालय से सम्बद्ध, श्री भगवान महावीर स्नातकोत्तर महाविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के विभागाध्यक्ष डॉ0 चन्द्रमौलि शुक्ल का भी मै विशेष आभारी हूँ, जिनसे प्राय प्रेरणा एव प्रोत्साहन मिलता रहा है।

मित्रो मे सर्वश्री दिनेश जी पाण्डेय, आर0 एल0 त्रिपाठी (कोषाधिकारी), अजय कुमार मिश्र, इन्द्रमणि उपाध्याय, मिथिलेश कुमार राय, अरविन्द राय, अरुणशकर राय, अनिल सिह (जि0 हो0 गा0 कमाण्डेण्ट), अरविन्द दूबे, सत्यनारायण पाण्डेय एव रमाकात सिह ने शोधकार्य मे अपने तरह से सहयोग किया है, अस्तु आप मित्रो के प्रति आभार व्यक्त करना मै अपना मित्र धर्म समझता हूँ।

परिजनो मे श्री पडित देवपूजन पाठक एव श्री इन्द्रजीत पाण्डेय के वैदुष्यपूर्ण विचारो से मै सदा लाभान्वित होता रहा हूँ। आप लोगो ने भी शोध–कार्य मे विशेष रुचि लिया है, एतदर्थ आप महानुभावो का मै अतीव आभारी हूँ।

अग्रज, श्री जयप्रकाश नारायण शाही एव भाभीश्री, श्रीमती सविता शाही ने भी मेरी इस सरस्वती–साधना मे आद्योपान्त रुचि लेकर विविध प्रकारेण सहायता की है। अनुज श्री दिग्विजय नाथ राय ने फोटोग्राफी की समय–साध्य जिम्मेदारी लेकर भ्रातृ–धर्म का पालन किया है, एतदर्थ आप लोगो का मै विशेष आभारी हूँ।

आभार व्यक्त करते समय रजना जी (श्रीमती रजना) का नाम मेरे स्मृति पटल पर बार–बार आ रहा है, जिनका प्रेरणा–प्रद सान्निध्य शोध कार्य मे प्रवृत्त होने के पहले से ही मिलता रहा है। छाया की भॉति मेरे साथ रहकर आपने जो सम्बल मुझे दिया है, उसे दृष्ट साक्ष्यो के माध्यम से मै व्यक्त नही कर सकता। अस्तु मेरी शुभकामनाओ मे थोडा भी बल हो तो मै आपके समृद्धशाली भविष्य की कामना करता हूँ।

सहधर्मिणी अमिता (श्रीमती अमिता शाही) ने शोध–कार्य की इस सुदीर्घ अवधि मे मेरे प्रयाग–प्रवास के दौरान गृहस्थ जीवन की सुविज्ञ कठिनाइयो का सामना करते हुए जो आत्मीय सहयोग दिया है, उससे मुझे एक अतिरिक्त सम्बल मिला है। इसके लिए उन्हे धन्यवाद देना, मुझे कुछ औपचारिकता–सा लग रहा है। वत्सला (पुत्री) एव शुभम् (पुत्र) ने अपने शैशवोचित सहयोग से मेरे अवकाश के क्षणो को रोचक बनाया है, अस्तु, उन्हे मेरा चिरसचित स्नेह। आभार व्यक्त करने के क्रम मे मै अपनी ममतामयी स्वर्गीया माँ (श्रीमती चाँदमती देवी) को कैसे भुला सकता हूँ, जिनके हृदय–रक्त से निरन्तर अभिसिचित होता हुआ शोध–कार्य के महायज्ञ को पूरा करने की योग्यता प्राप्त कर सका हूँ। अस्तु, आपको मेरी हार्दिक श्रद्धाजलि। राका प्रकाशन के सचालक श्री राकेश तिवारी के प्रति आभार व्यक्त करना मै अपना धर्म समझता हूँ, जिन्होने अल्प समय मे इस शोध–प्रबन्ध के टकण का कार्य अत्यन्त कुशलता के साथ पूरा किया है। और अन्त मे सकल विद्या एव वाड्मय की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती के चरणो मे मेरा प्रणाम–

सरस्वती महाभागे विद्ये कमललोचने
विद्यारुपे विशालाक्षी विद्या देहि नमोऽस्तुते।

(राजेश्वर शाही)

11 10 2001

इलाहाबाद, उ0 प्र0

विषयानुक्रमणिका

रेखाचित्र, छायाचित्र एवं तालिकाओं के विव ण

रेखाचित्र ·

छायाचित्र :

7	मूर्तिखण्ड	तुर्कपट्टी–महुअवा	गुप्त–युग
8	शिवलिग	सरया	पाल–युग
9	अग्नि	सरया	पाल–युग

तालिकाएँ

तालिका सख्या–1, 1974–75 मे बासगॉव तहसील, गोरखपुर जनपद मे सरयू नदी के किनारे खोजे गये पुरास्थल।

तालिका सख्या–2, गोरखपुर जनपद मे कुआनो नदी के किनारे खोजे गये पुरास्थल।

संक्षिप्तावली

ए0 ए0 आई0 आर0	–	आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, रिपोर्ट
ए0 एस0 आई0 ए0 आर0	–	आर्क्योलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट
ए0 इ0	–	एपिग्रफिका इण्डिका
ए0 जी0 आई0	–	एन्सियण्ट ज्यागर्फी ऑफ इण्डिया–कनिघम
जे0 आर0 ए0 एस0	–	जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी
जे0 ए0 एस0 बी0	–	जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी ऑफ बगाल
जे0 ए0 एस0 इ0	–	जर्नल आफ दि एपिग्रैफिकल सोसायटी आफ इण्डिया
जे0 ए0 एस0 एल0	–	जर्नल आफ दि एशियाटिक सोयायटी आफ लदन
पी0 ए0 एस0 बी0	–	प्रोसिडिग आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बगाल
कार्पस	–	कार्पस इन्सक्रिप्सनम इण्डिकेरम
क्वा0 हो0 यू0 पी0	–	क्वायस हार्ड्स आफ यू0 पी0 – श्रीवास्तव, ए0 के0
गो0 ज0 इ0	–	गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियो का इतिहास– पाण्डेय राजबलि
प्रा0 रा0 इ0		प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास– राय चौधरी, हेमचन्द्र
रा0 स0 ल0	–	राज्य सग्रहालय लखनऊ
पू0 स0 गो0 वि0	–	पूर्वायतन सग्रहालय, गोरखपुर विश्वविद्यालय (प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एव सस्कृति विभाग)
बौ0 स0	–	राजकीय बौद्ध सग्रहालय गोपलापुर, गोरखपुर

सेमी0	–	सेन्टीमीटर
कि0मी0	–	किलोमीटर



भूमिका

विषय का महत्त्व (गोरखपुर परिक्षेत्र के विशेष संदर्भ में)

पुरातत्त्व, मानव सस्कृति एव इतिहास को एक नवीन आयाम प्रदान करता है, विशेषत कालक्रम तथा सास्कृतिक विकास के परिप्रेक्ष्य मे। वस्तुत पुरातत्त्व शब्द अग्रेजी के आर्कियोलॉजी का हिन्दी रूपान्तर है। आर्कियोलॉजी शब्द यूनानी भाषा के आर्कियास+लोगस से बना है, जिसका अर्थ है– पुरातन ज्ञान। मानव इतिहास के विविध पक्षो, यथा– सामाजिक, सास्कृतिक एव आर्थिक इतिहास की व्याख्या में पुरातत्त्व की उपयोगिता स्वत सिद्ध है। पुरातत्त्व इतिहास को जीवत बनाता है।

मानव इतिहास का अधिकाश भाग पुरातत्त्व एव पुरातात्त्विक साक्ष्यो पर ही आधारित है। यद्यपि पुराविद् पुरावशेषो को निर्जीव हालत मे प्राप्त करता है, लेकिन ये निर्जीव पुरावशेष पुराविद् के हाथो मे आते ही मानव के अतीत को सजीव एव साकार वना देते है। पुरातत्त्ववेत्ता भौतिक अवशेषो को वस्तु के रूप मे नही देखता अपितु उसके माध्यम से वह क्रियाशील मानव को उसके सम्पूर्ण परिवेश मे सजीव देखता है[1]। खण्डहर से दिखने वाले निर्जन स्थल, मात्र नीवो मे सिमटे भवन साकार एव स्पन्दित हो उठते है। ये अतीत मे न रह कर वर्तमान मे साकार होने लगते है। इस सम्बन्ध मे ह्वीलर की मान्यता है कि 'उत्खननकर्त्ता मात्र वस्तुओ को नही खोदता अपितु वह लोगो को खोदता है'[2]। ह्वीलर की यह उक्ति अत्यन्त सार्थक प्रतीत होती है। इस प्रकार दूसरे शब्दो मे कहा जा सकता है कि भौतिक अवशेषो के माध्यम से पुरातत्त्ववेत्ता मानव–जीवन के सम्पूर्ण परिवेश का निर्माण करता है। फिर भी पुरातत्त्व की अपनी सीमाये है, क्योकि पुराविद्, व्यक्ति के निजी क्रिया–कलापो एव उपलब्धियो की व्याख्या नही कर सकता। वह सम्पूर्ण समाज का परिवेश प्रस्तुत करता है। समाज ही उसके अध्ययन की इकाई है। व्यक्ति विशेष की चर्चा करना उसका अभीष्ट नही है। उसकी अभिरुचि समष्टि मे केन्द्रीभूत रहती है। पुराविद् जब किसी समाज की सास्कृतिक उपलब्धियो की चर्चा करता

है तो उसके उसके निजी दृष्टिकोण एव मान्यताओ की कोई अहमियत नहीं होती। वह यथार्थ से हटकर कुछ भी नही लिख सकता। मानव समाज का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करना ही उसका अभीष्ट है।

मानव विकास के प्रारम्भिक चरणो एव लेखनी के आविर्भाव के पूर्व के ऐतिहासिक ज्ञान के लिए पुरातत्त्व के अतिरिक्त कोई अन्य विकल्प नही है। फिर भी पुरातत्त्व की अपनी सीमाएँ है। इन्ही सीमाओ के कारण पुरातात्त्विक साक्ष्यो के आधार पर जब किसी मानव समाज के अतीत कालीन घटनाओ की विवेचना की जाती है तो इसमे अन्य विषयो से भी सहयोग लेना पडता है, क्योकि अतीत कालीन कुछ ऐसे भी प्रश्न उपस्थित होते है, जिनके उत्तर मानविकी (Humanties) एव प्राकृतिक विज्ञानो से सम्बन्ध स्थापित किये बिना देना सम्भव नही है। इस प्रकार पुरातत्त्व एक बहुआयामी विषय है, जो मानविकी एव प्राकृतिक विज्ञानो से घनिष्ट रूप से जुडा हुआ है।

विभिन्न विद्वानो ने पुरातत्त्व की जो अलग–अलग परिभाषाये दी है, उनसे इस विषय से सम्बन्धित भ्रान्तियो एव विसगतियो का बहुत सीमा तक निराकरण हुआ है। गार्डन चाइल्ड ने पुरातत्त्व की परिभाषा इस प्रकार दी है– 'पुरातत्त्व सुस्पष्ट भौतिक अवशेषो के माध्यम से मानव के क्रिया कलापो के अध्ययन को कहा जा सकता है'। ग्राहम क्लार्क ने भी पुरातत्त्व की परिभाषा दी है, जिनके अनुसार 'पुरातत्त्व को मानव अतीत के इतिहास की रचना करने के लिये पुरावशेषो के क्रमबद्ध एव सुव्यवस्थित अध्ययन के रूप मे परिभाषित किया जा सकता है।' ग्लिन डेनियल के अनुसार, पुरातत्त्व शब्द का प्रयोग दो प्रमुख अर्थो मे किया जा सकता है– (1) मानव अतीत के भौतिक अवशेषो के अध्ययन और (2) मानव के प्रागैतिहासिक काल से सम्बन्धित पुरावशेषो के अध्ययन के अर्थ मे। इनमे से प्रथम परिप्रेक्ष्य मे पुरातत्त्व शब्द का अत्यन्त व्यापक अर्थ ग्रहण किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रागितिहासिक एव ऐतिहासिक कालो के पुरावशेषो को सम्मिलित किया गया है। इस दृष्टि से पुरातत्त्व के अन्तर्गत पाषाण काल के औजारो से लेकर आजकल के काल–पात्रो तक का समावेश किया जा सकता है।

पुरातत्त्व की महत्ता के उपरोक्त पक्ष ने मुझे इस विषय की ओर आकर्षित किया। क्या पुरातत्त्व का यह उपयोग हम अपने क्षेत्र के सदर्भ मे कर सकते है? इस प्रश्न मे भी मेरी रूचि बढी।

गोरखपुर परिक्षेत्र मध्य गगा घाटी का एक अभिन्न अग है। इस परिक्षेत्र का मानव सस्कृति के विकास मे महत्वपूर्ण स्थान है। यहाँ विभिन्न सस्कृतियो का क्रमिक जमाव मिलता है, जो इस क्षेत्र के मानव समुदाय के जीवन मे स्थायित्व की ओर सकेत करता है। यद्यपि गगा सस्कृति भारत भूमि की प्राचीनतम

सस्कृतियो मे से एक है, तथापि इस परिक्षेत्र मे (मध्य गगा घाटी) इस सस्कृति के विभिन्न चरणो के उद्घाटन के निमित्त व्यापक अनुसधान के अभाव को दृष्टिगत् रखते हुए इस शोध–प्रबन्ध का सृजन किया गया है।

यद्यपि स्वतत्रता प्राप्ति से पूर्व कुछ अग्रेज पुराविदो एव प्रशासनिक अधिकारियो ने इस परिक्षेत्र के पुरातत्त्व की ओर सीमित पैमाने पर ध्यान दिया था, लेकिन उनका यह कार्य पर्याप्त नही था। तत्पश्चात् गोरखपुर विश्वविद्यालय के अस्तित्व मे आने के बाद (1956) यहॉ के पुराविदो ने इस परिक्षेत्र मे सीमित पैमाने पर अनुसधान एव उत्खनन कार्य किया। इसके अतिरिक्त बी0 एच0 यू0 (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय) की ओर से भी कुछ अनुसधान हुये। इन सभी कार्यो के सम्मिलित विवेचन से ही इस परिक्षेत्र के सास्कृतिक अनुक्रम को व्यवस्थित ढग से प्रस्तुत किया जा सकता है। अतएव प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध इस परिक्षेत्र मे मानव के सास्कृतिक विकास की विभिन्न कडियो को एक निश्चित अनुक्रम मे प्रस्तुत करने का एक विनम्र प्रयास है।

यहॉ उल्लेख्य है कि, शोध–कार्य के दौरान मैने अनुभव किया कि विषय की भौगोलिक सीमाओ मे (वर्तमान गोरखपुर जनपद) रहकर जनपद के पुरातत्त्व को सम्यक् रूपेण उद्घाटित नही किया जा सकता। क्योकि विभाजित जनपद की सीमाओ मे यदि इस अध्ययन क्षेत्र को सीमित रखा गया तो इस क्षेत्र की पुरा सस्कृतियो को सम्पूर्णता मे नही प्रस्तुत किया जा सकेगा। अतएव मैने अविभाजित गोरखपुर (सम्मिलित महराजगज) के अतिरिक्त सरयूपार के अन्य इलाको को भी अपने अध्ययन के लिए लिया। फलत जनपद के पुरातत्त्व का अभीष्ट स्वरूप उद्घाटित हुआ।

जनपद का सामान्य परिचय

गोरखपुर परिक्षेत्र पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक ऐसा भौगोलिक अचल है जो इतिहास के कालखण्ड मे भू–राजनैतिक एव भू–सामाजिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण अगणित घटनाओ तथा उत्थान–पतन की गाथा समेटे हुये है[2]। वर्तमान मे यह परिक्षेत्र भारत के उत्तरी सीमा की सुरक्षा को स्थानिक निर्धारको द्वारा, भू–राजनीतिक तथा भू–सामाजिक दृष्टियो से अतिनिकट से प्रभावित करता है। उत्तर मे मडल की अतर्राष्ट्रीय सीमा पड़ोसी देश नेपाल से मिलती है। गोरखपुर के उत्तर मे महराजगज, पश्चिम मे बस्ती एवं सिद्धार्थ नगर, दक्षिण मे आजमगढ तथा पूर्व मे देवरिया एव कुशीनगर जिले हैं।

गोरखपुर मंडल के भू–भाग का विस्तार 25°51′ से 26°30′ उत्तरी अक्षाश तथा 83°20′ पूर्वी देशान्तर तक है। नेपाल की तराई मे कपिलवस्तु, रूपन्देई तथा नवल परासी जनपद का दक्षिणी भू–भाग स्थित है। उत्तरी भाग वन ससाधनो से युक्त है, जहॉ वर्षा अधिक होती है। हिमालय से दूरी कम होने के कारण भी इस

क्षेत्र का सामरिक महत्त्व बढ जाता है। इस क्षेत्र मे निवास करने वाली जनता का नजदीकी सम्पर्क नेपाल देश से, सामाजिक, राजनीतिक, सास्कृतिक एव अन्य कारणो से लम्बे समय से चले आ रहे है।

गोरखपुर मडल की भूमि का ढलान प्राय उत्तर से दक्षिण की ओर है। इस क्षेत्र से होकर प्रवाहित होने वाली मुख्य नदियॉ, अचिरावती अर्थात् राप्ती (234 किलोमीटर), सरयू (77 किलोमीटर), रोहिणी (109 किलोमीटर), आमी (77 किलोमीटर) तथा कुआनो (3 किलोमीटर) है, जो जल निकासी व सिचाई का मुख्य स्रोत है। इनके अतिरिक्त गोर्रा एव बरही नदियो का प्रवाह भी जनपद मे है। गोरखपुर राप्ती नदी के तट पर स्थित है। इसके दक्षिणी सीमा पर घाघरा नदी पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। उत्तरी भू–भाग की तुलना मे दक्षिण मे छोटे–छोटे नालो की सख्या अधिक है। 1700 एकड क्षेत्रफल मे फैली विस्तृत नैसर्गिक झील रामगढताल गोरखपुर शहर मे प्राकृतिक रूप से बारहो मास जल प्लावित रहता है। बखिरा झील बस्ती जनपद मे अवस्थित है।

गोरखपुर क्षेत्र की समुद्र तल से ऊँचाई 185 मीटर है। वर्षा ऋतु मे यहॉ के नदी–नाले विकराल रूप धारण कर लेते है जिससे पर्याप्त कृषि सम्पदा और जन–धन की हानि होती है। इसमे नेपाल देश की नदियो का भी कहर होता है। बाढ आने से यहॉ की भूमि की गुणवत्ता मे परिवर्तन होता रहता है जिससे कृषि उत्पादन प्रभावित होता रहता है।

जिले मे दो प्रकार की भूमि की बनावट पायी जाती है। जिले के उत्तरी भाग मे मिट्टी दोमट है परन्तु कुछ अश चिकनी मिट्टी का भी है, जो धान और गेहूँ के लिये उपयुक्त है। इस भाग में जगल कौडिया, कैम्पियरगज, धानी, भटहट, पिपराइच एव चरगॉवा विकास खण्ड आते है। जिले के दक्षिणी भाग में सहज नवॉ, पाली, पिपरौली, खजनी, बॉस गॉव, गगहा, कौडीराम, बडहलगज, गोला उरूवा, सरदार नगर, ब्रह्मपुर तथा बेलघाट आदि विकास खण्ड है।

वर्ष 1989 मे महराजगज जिला घोषित हुआ जो पहले गोरखपुर का ही एक भाग था। अधिकाश वन का क्षेत्र नये जिले मे चला गया परन्तु फिर भी कुछ क्षेत्र कैम्पियरगज, चरगॉवा तथा खोरबार विकास खण्डों मे सुरक्षित रहा। कुसुम्ही वन क्षेत्र का एक बडा भाग इस जिले मे आज भी मौजूद है। इसमे इमारती लकडी, साखू, शीशम, सागौन, असनाकरफुस, बॉस आदि का बाहुल्य है। इसके अतिरिक्त नहरो एव सडको के किनारे गॉव–समाज, सस्थाओ एव निजी भूमि पर वन प्राप्त होते है। लगभग 22190 हेक्टेयर क्षेत्रफल मे वन है।

जिले मे प्रमुख खनिज की उपलब्धता नही है। नदियों का भी क्षेत्र सीमित है। उनकी तलहटी से बालू निकालने का कार्य होता है, जिसका उपयोग भवन निर्माण मे अधिक किया जाता है। इसी प्रकार मिट्टी

से ईट बनाने का कार्य किया जाता है। जनपद मे लगभग 350 ईट भट्टे हैं। ककण तथा रेह भी कही–कही पाया जाता है, जिसका उपयोग विभिन्न कार्यों मे किया जाता है। जनपद का अभी पूर्ण–रूपेड, भू–सर्वेक्षण नही किया जा सका है। परन्तु लोगो का ऐसा मानना है कि प्रचुर मात्रा मे खनिज प्राप्त होने की प्रबल सभावना है। गोरखपुर–बस्ती राष्ट्रीय मार्ग–28, पर सहजनवां के समीप बोम्टा मे राप्ती नदी की तलहटी से गैस प्राप्त हुई है। बोम्टा मे भारत पेट्रोलियम मे गैस फिलिग प्लान्ट स्थापित किया है।

जिले मे पूर्वोत्तर रेलवे का मुख्यालय स्थित है। यहॉ से देश की राजधानी दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, मद्रास, जम्मू, बनारस आदि प्रमुख स्थानो पर जाने के लिये रेलगाडी मिलती है। रेल सेवा आयोग गोरखपुर कार्यरत् है, जहॉ से रेलवे नौकरी मे भर्ती हेतु परीक्षा ली जाती है। यहॉ से नेपाल सीमा तक जाने के लिये ट्रेन की सुविधा है।

जिले मे 'एयरफोर्स स्टेशन' है जिसका सामरिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। यहॉ से नियमित उडान की सुविधा नही हैं। उत्तर प्रदेश राज्य सडक परिवहन निगम का क्षेत्रीय कार्यालय भी स्थित है। निगम की बसे, देश व प्रदेश के दूर–दराज क्षेत्रो मे यात्री लाने व ले जाने की महत्त्वपूर्ण सेवा करती है।

जिले मे बाबा राघवदास मेडिकल कालेज, पडित मदन मोहन मालवीय इजीनियरिंग कालेज, गोरखपुर विश्वविद्यालय, वीर बहादुर सिह स्पोर्ट्स कालेज, खाद कारखाना, दूरदर्शन व आकाशवाणी केन्द्र, इडियन ऑयल व भारत पेट्रोलियम, सर्किट हाउस तथा फातिमा अस्पताल आदि स्थापित है।

जिले मे दो लोक सभा,–गोरखपुर तथा बासगॉव (सुरक्षित) सीटे हैं। 9 विधान सभा,– गोरखपुर, बाँस-गॉव, धुरियापार, चिल्लूपार, कौडीराम, मुँडेरा बाजार, मानीराम, पिपराइच, सहजनवा की सीटे स्थायी हैं। क्षेत्र और स्थानीय प्राधिकारी सहित 3 सीटे स्थायी हैं। लोक सभा तथा विधान सभा निर्वाचन, 1996 मे लगभग 2414166 मतदाता थे। जिसमे 1351790 पुरुष तथा 1062376 महिलाये थी।

ऐतिहासिक परिचय

गोरखपुर जनपद मुख्यालय का यह नामकरण नाथ सम्प्रदाय के महान सत एव साधक गुरू गोरखनाथ, जो एक कनफटा योगी थे, के नाम पर हुआ[3]। प्रसिद्ध सत गोरखनाथ ने वर्तमान गोरखनाथ मंदिर के समीप कठोर तपस्या किया, परिणामत उनके इस पवित्र प्रयास से जनपद को यह नाम और प्रसिद्धि मिली[4]। बाबा गोरखनाथ पजाब से यहॉ आये थे। इन्होने जनपद मे गोरक्ष नामक देवता की स्थापना की[5]। गोरक्ष, नेपाल के प्रसिद्ध देवता है। कहा जाता है कि बाबा गोरखनाथ ने गोरखपुर शहर की स्थापना की थी।

वर्तमान समय मे गुरू गोरखनाथ एक आध्यात्मिक व्यक्ति के रूप मे जाने जाते हैं। पुराना शहर गोरखपुर के मध्य गुरू जी का भव्य मदिर स्थापित है।

महाकाव्य युग मे वर्तमान गोरखपुर परिक्षेत्र कारूपथ के नाम से जाना जाता था, जो कि कोशल राज्य का एक भाग था[6]। यह परिक्षेत्र आर्य सस्कृति एव सभ्यता का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था[7]। पौराणिक और धार्मिक महाकालो मे वर्णित उद्धरणो से यह तथ्य सामने आता है कि रामायण काल मे सिन्धु तथा आर्य सभ्यता की सस्कृतियो के पारस्परिक समन्वय की आधारभूमि तैयार हो चुकी थी और आर्यो की सभ्यता सिन्धु घाटी से लेकर आगे गगा और गडक की घाटियो तक फैल चुकी थी[8]।

यह स्पष्ट है कि राजधानी अयोध्या सहित इस परिक्षेत्र पर शासन करने वाला प्रथम शासक इक्ष्वाकु था, जिसने सूर्यवशी क्षत्रिय जाति की स्थापना की[9]। राम, जो कि इस राजवश के महानतम शासको मे से थे, के राज्याभिषेक तक इस राजकुल मे अनेक प्रसिद्ध शासक उत्पन्न हुए[10]। राम ने अपने जीवन काल मे ही सम्पूर्ण राज्य को दो छोटे–छोटे भागो मे विभक्त कर दिया। उन्होने अपने बडे पुत्र, कुश को कुशावती का राजा बनाया[11]। वर्तमान कुशीनगर ही प्राचीन कुशावती थी जो कि 1948 तक गोरखपुर जनपद का अग था[12]। राम के आत्मोत्सर्ग के पश्चात् अयोध्यावासियो के आग्रह पर कुश पुन अयोध्या लौट आए[13]। बाल्मीकि रामायण से स्पष्ट होता है कि कुश के चचेरे भाई चन्द्रकेतु की उपाधि 'मल्ल' थी, जिसके आधार पर उनके राज्य का नाम भी मल्ल राष्ट्र हुआ[14]। महाभारत के अनुसार युधिष्ठिर ने राजसूय–यज्ञ के दौरान भीमसेन को पूर्वी राज्यो के विजय का आदेश दिया। फलत पूर्व मे स्थित गोपालक नामक स्थान की विजय, भीमसेन ने की[15]। डॉ0 राजबलि पाण्डेय ने गोपालक की पहचान बासगॉव तहसील मे अवस्थित गोपालपुर से की है[16]। डॉ0 राजबलि पाण्डेय के अनुसार, गोपालपुर के समीप भीमटीला स्थित है, जहॉ भीमसेन ने विजय के पश्चात् विश्राभ करने के लिए कहा[17]।

बौद्ध धर्म के सस्थापक तथा ई0 पू0 छठी शताब्दी मे आध्यात्मिक क्रान्ति के सूत्रधार महात्मा बुद्ध का जन्म इसी परिक्षेत्र मे हुआ, जो अब नेपाल देश की सीमा मे है। उन्होने इस शहर के पश्चिमी छोर पर रोहिणी और अचिरावती (राप्ती) नदी के सगम पर आकर अपना राजकीय परिधान, आभूषण एव चिन्ह त्याग किया और सत्य की खोज मे आगे बढ गये। इस समय शाक्यो का कपिलवस्तु, कोलियो का रामग्राम, मौर्यों का पिप्पलीवन एव मल्लो का कुशीनगर प्रमुख गणराज्य थे।

वस्तुत विभिन्न साहित्यिक स्रोतो के अनुसार जनपद का राजनीतिक इतिहास कोशल राज्य की स्थापना के साथ प्रारम्भ होता है। कोशल वर्तमान उत्तर प्रदेश के फैजाबाद जिले मे स्थित था। इसके पश्चिम

तथा उत्तर पश्चिम में पाचाल जनपद था[18]। रामायण के अनुसार कोशल राज्य के पश्चिम मे गोमती, दक्षिण मे सर्पिका या स्यदिका अर्थात् सई नदी, पूर्व मे सदानीरा तथा उत्तर में नेपाल की पहाडियॉ थी[19]। बौद्ध साहित्य भी इसका समर्थन करता है[20]। शतपथ ब्राह्मण मे सदानीरा (आधुनिक गण्डक नदी) को कोशल और विदेह जनपदो की सीमा बताया गया है[21]। ध्यातव्य है कि सरयू के उत्तर और पूर्व का भाग कोशल राज्य मे सम्मिलित था। इस प्रकार वर्तमान बहराइच, गोडा, बस्ती, महराजगज, सिद्धार्थनगर, गोरखपुर, देवरिया तथा कुशीनगर जनपद प्राचीन कोशल के अग थे। गोरखपुर जनपद ने आर्य राज्यो के विस्तार, चक्रवर्ती राजाओ की दिग्विजय, शासन व्यवस्था, सामाजिक सगठन, धार्मिक एव दार्शनिक मतो के प्रवर्तन, साहित्य और कला आदि जीवन के सभी पक्षो मे अपना योगदान किया[22]।

कोशल की राजनीतिक महत्ता का वर्णन वैदिक काल से ही मिलने लगता है[23]। महाकाव्यो एव पुराणो मे तो अनेक कोशल नृपतियो का उल्लेख हुआ है[24]। अथर्ववेद मे कोशल की प्रथम राजधानी की सरचनाओ, सम्पदा और महानता का उल्लेख मिलता है[25]। पाणिनि की अष्टाध्यायी मे भी कोशल का नामोल्लेख है[26]। रामायण, महाभारत और पुराणो मे एक भौगोलिक इकाई के रूप मे कोशल का उल्लेख तो हुआ ही है साथ ही उसके शासको का इतिहास भी उपलब्ध है[27]। बौद्ध साहित्य के विविध प्रसगो मे कोशल राज्य के उल्लेख मिलते है[28]। जैन परम्परा मे कोशल के लिए 'कुणाल विषय' शब्दो का प्रयोग किया गया है[29]। महाकाव्यो एव पुराणो मे तो अनेक कोशल नृपतियो का उल्लेख हुआ है। इनमे इक्ष्वाकुवशीय राजाओ की प्रशस्ति मिलती है, जिनमे से कुछ, जैसे– शाक्य, शुद्धोदन, सिद्धार्थ, राहुल तथा प्रसेनजित के नाम बौद्ध ग्रन्थो मे मिलते है। बौद्ध ग्रन्थो मे उल्लिखित कुछ राजा पुराणो तथा महाकाव्यो मे उल्लिखित राजाओ से भिन्न है। बौद्ध ग्रन्थो मे विवृत्त कुछ राजाओ की राजधानी अयोध्या, कुछ की श्रावस्ती तथा कुछ की साकेत थी।

उल्लेख्य है कि अयोध्या के शासको मे से अनेक नाम ब्राह्मण उपनिषद तथा सूत्रो मे प्राप्त है[30]। पौराणिक परम्परा मे अयोध्या सहित इस पूरे क्षेत्र पर शासन करने वाला प्रथम शासक इक्ष्वाकु था, जिसे सूर्यवशी क्षत्रियो का सस्थापक बताया गया है[31]। विभिन्न पौराणिक सूचियो के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर डॉ0 विशुद्धानद पाठक की मान्यता है कि प्रथम सत्रह पीढियो तक इन सूचियो मे लगभग समानता है। पौराणिक सूचियो का उल्लेख करते हुए उन्होने 61वे शासक तक की सूची तैयार की है[32]।

छठी शताब्दी ई0 पू0 में गोरखपुर जनपद की स्थिति मल्ल एव कोशल महाजनपदों के बीच रही होगी। जनपद का पूर्वी भाग यदि मल्लो से सम्बन्धित था तो पश्चिमी, उत्तरी एव दक्षिणी भाग कोसल से, क्योकि महाभारत मे वर्णित गोपालक राष्ट्र का नामोल्लेख बौद्ध ग्रन्थो में नही प्राप्त होता। अत गोपालक राज्य

इन दोनो शक्तियो मे किसी एक के अधीन हो गया होगा। बहुत सम्भव है कि कोशल ने ही इसे अपने अधीन कर लिया हो।

महाभारत काल के पश्चात् इस क्षेत्र मे एक नवीन राजनीतिक प्रवृत्ति का सूत्रपात हुआ। इस नये राजनीतिक परिवेश मे लोकतान्त्रिक या प्रजातात्रिक राज्य अस्तित्व मे आए[33]। इस प्रवृत्ति के प्रति विशेष झुकाव सम्भवत भौगोलिक परिस्थितियो के कारण था[34]। गणतन्त्र प्रजातन्त्र की ओर अग्रसर हो रहे थे।[35] इनकी राजनीतिक शक्ति चुने हुए व्यक्तियो मे केन्द्रित रहती थी। ऐसा प्राय क्षत्रिय राजाओ मे होता था[36]। रिज डेविड्स प्रथम विद्वान थे, जिन्होने बुद्ध एव विम्बिसार कालीन गणतत्रो पर प्रकाश डाला था[37]।

गोरखपुर जनपद की सीमा मे उपर्युक्त विशेषताओ वाले राज्यो मे प्रथमत पिप्पलिवन के मोरियो का नाम लिया जा सकता है,[38] जिनकी पहचान जनपद मे अवस्थित राजधानी एव उपधौलि नामक स्थानो से की जा सकती है[39]। मोरिय राज्य कोलियो के पश्चिम तथा पूर्व और उत्तर–पूर्व मे मल्ल राज्य तक फैला हुआ था। यह स्थल पीपल के पेडो से आच्छादित था। यह क्षेत्र चार मील लम्बे एव दो मील चौडे क्षेत्र मे फैला हुआ था[40]। यहाँ सहनकोट नामक आयताकार किले का अवशेष प्राप्त होता है। बी0 सी0 लॉ पिप्पलिवन को पिपरहवा से समीकृत करते है[41]। किन्तु लॉ, महोदय का यह समीकरण निराधार है। श्री के0 एम0 श्रीवास्तव ने पिपरहवा का उत्खनन किया है, जिसकी पहचान शाक्यो की राजधानी कपिलवस्तु से की जा चुकी है[42]। पिप्पलिवन की निश्चित पहचान अभी तक नही हो सकी है। मोरियगण का विस्तार पूरब–पश्चिम दिशा मे 25 मील आमी नदी तक, तथा 50 से 55 मील उत्तर–दक्षिण दिशा मे घाघरा नदी तक था[43]। स्पष्ट है कि उक्त सीमाएँ गोरखपुर जनपदान्तर्गत आती है।

शाक्य नेपाल की सीमा पर हिमालय की तलहटी मे आवासित थे। इनकी उत्तरी सीमा पर हिमालय की पर्वत श्रेणियॉ थी। पूर्व मे रोहिणी तथा पश्चिम एव दक्षिण मे राप्ती नदी प्रवाहित थी। इनका क्रीडा–क्षेत्र राप्ती एव रोहिणी की उपत्यका मे प्रसरित था। शाक्यो की राजधानी कपिलवस्तु, गौतम बुद्ध की जन्मस्थली लुम्बिनी से आठ मील की दूरी पर रोहिणी के तट पर स्थित थी। रोहिणी नदी, शाक्यो एव कोलिय प्रदेशो के बीच सीमा रेखा बनाती थी[44]। कपिलवस्तु की स्थापना कपिल ऋषि की कृपा से ही की गयी थी, अतएव इसका नामकरण इसी पृष्ठाधार मे किया गया है[45]। महाभारत के तीर्थ यात्रा खण्ड मे कपिलवस्तु के नाम से उक्त स्थान का उल्लेख मिलता है[46]। बुद्धचरित् काव्य मे इसे 'कपिलस्यवस्तु' कहा गया है[47]।

कोलिय रोहिणी के पूर्वी तट पर शाक्यो के पडोसी थे। जनपद के रामग्राम एव देवदह के कोलियो का बुद्धयुगीन गणतत्रो मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। गौतम बुद्ध की माता कोलिय परिवार की थी। इस तरह

कोलिय और शाक्य सम्बन्धी थे। कोलिय वश शाक्य कन्या और काशी के राजा राम से उत्पन्न हुआ था[48]। कोलिय और शाक्य दोनो प्रतिष्ठित क्षत्रिय कुल के थे[49]। महावस्तु कोलियो को कोल ऋषि का वशज बतलाता है[50]। कुणाल जातक के अनुसार कोलिय कोल वृक्ष पर रहते थे, इसलिए इन्हे कोलिय कहा गया[51]। कोलिय एव शाक्य दोनो रोहिणी नदी के जल का उपयोग करते थे। रोहिणी नदी के जल पर अपने अधिकार को लेकर प्राय उनमे विवाद होता रहता था[52]। इसी विवाद के दौरान एक बार भयकर रक्तपात की सम्भावना बढ गयी थी। किन्तु बुद्ध ने हस्तक्षेप करके यह झगडा शान्त करा दिया[53]। गौतम बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् उनके अस्थि–अवशेषो को प्राप्त करने के लिए कोलियो ने उनके साथ अपनी सजातीयता प्रकट की थी[54]। कोलियो ने रामगढ ताल के किनारे बुद्ध के अस्थि–अवशेष के ऊपर स्तूप का निर्माण किया था[55]।

छठी शताब्दी ई0 पू0 मे गोरखपुर जनपद मे कोलिय गणतत्र के दो केन्द्र थे, रामगढ एव देवदह[56]। विशुद्धानद पाठक की मान्यता है कि रामग्राम नाम इस वश के पूर्वज राम के नाम पर आधारित है[57]। वर्तमान समय मे रामग्राम की पहचान को लेकर विद्वानो मे मतभेद है। फिर भी डॉ0 पाण्डेय द्वारा प्रस्तुत पहचान अपेक्षाकृत उपयुक्त प्रतीत होती है। डॉ0 पाण्डेय ने रामग्राम की पहचान गोरखपुर नगर के निकट स्थित रामगढ ताल से की है[58]। इनके अनुसार यह राष्ट्र रामजनपद कहलाया[59]। ए0 सी0 एल0 कार्लायल तथा बी0 सी0 लॉ, रामग्राम की पहचान वर्तमान रामपुर (देवरिया) से करते है[60]। लेकिन कार्लायल यह भी कहते है कि कोलियो द्वारा निर्मित स्तूप रामग्राम के दक्षिण–पूर्व न होकर उत्तर–पूर्व था[61]। कनिघम ने देवकली नामक ग्राम से रामग्राम की पहचान की है[62]। ह्वेनसॉग ने कहा है कि रामग्राम से कपिलवस्तु की दूरी 300 ली और लुम्बिनी से 200 ली से भी अधिक है।

जनपद मे कोलियो का दूसरा केन्द्र देवदह था। गौतम बुद्ध की माता महामाया, बुद्ध के जन्म का समय निकट आने पर परम्परा के अनुसार अपने पितृगृह देवदह जा रही थीं। सयोग से मार्ग मे ही लुम्बिनी बन मे उन्हे पुत्र लाभ हो गया। ऐसा प्रतीत होता है कि देवदह लुम्बिनी बन के समीप ही कही रहा होगा। बुद्ध की माता महामाया कोलिय गणमुख्य की पुत्री थी[63]। एच0 सी0 राय चौधरी के अनुसार शाक्यों के राज्य मे देवदह नाम का नगर था, जिसमे सम्भवत कोलियगण का भी हिस्सा था[64]।

उपर्युक्त कथनो के पृष्ठाधार में ऐसा प्रतीत होता है कि देवदह पर कुछ समय तक दोनो का अधिकार रहा हो। दुल्वा की मान्यता है कि कपिलवस्तु के शाक्यो ने सख्या बढने पर देवदह को प्राप्त

किया[65]। डॉ0 सी0 डी0 चटर्जी ने देवदह की पहचान गोरखपुर के फरेन्दा तहसील के अन्तर्गत बनरसिहा कला नामक स्थान से किया है[66]।

कोलिय गणराज्य के उत्तर मे हिमालय, दक्षिण मे राप्ती (अचिरावती) और दक्षिण–पूर्व मे पिप्पलिवन के मोरिय, पडोसी के रूप मे थे[67]। कोलियगण की पश्चिमी सीमा रोहिणी नदी बनाती थी[68]। इस प्रकार स्पष्ट है कि रामग्राम मे गोरखपुर सदर का दक्षिणी हिस्सा और बासगॉव तहसील का पश्चिमी हिस्सा सम्मिलित था।

कोशल राज्य के गणतत्रो के सबसे बडे एव महत्त्वपूर्ण गणतत्र के रूप मे मल्लो का उल्लेख किया जा सकता है[69]। मल्लो की उत्तर एव उत्तर पश्चिमी सीमा, कोलिय गणतत्र को स्पर्श करती थी तथा दक्षिण एव दक्षिण–पश्चिमी सीमा पर मोरिय गणराज्य स्थित था[70]। यह स्पष्ट हो चुका है कि जनपद के पूर्वी भाग मे मल्लो का आधिपत्य था[71]। इस युग मे मल्ल इतने शक्तिशाली थे कि कोशल के सभी गणतत्रो को मिलाकर उन्हे मल्ल राष्ट्र कहा जाता था[72]। ये गणतत्र साम्राज्यवादी शक्तियो का सामना करने के लिए अपनी राजनैतिक एकता के प्रति प्रतिबद्ध थे और उनके सामने कभी नही झुके[73]। मगध नरेश अजातशत्रु द्वारा वैशाली पर आक्रमण किए जाने पर जनपद के सभी गणतत्र मगध नरेश के विरूद्व एकजुट हो गए थे[74]।

अब तक इस क्षेत्र मे अवस्थित गणराज्यो की भौगोलिक सीमाओ की जो विवेचना की गयी है उनके आधार पर यह कहा जाता है कि गोरखपुर जनपद मे जहॉ एक ओर रामग्राम एव देवदह के कोलियो एव पिप्पलिवन के मोरियो के गणराज्य थे, वही दूसरी ओर जनपद के पूर्वी तथा पश्चिमी हिस्से मे अशत क्रमश मल्लो एव शाक्यो के गणराज्य थे। मल्लो की पहचान वर्तमान समय मे कुशीनगर जनपद के कुशीनगर एव पावानगर (फाजिलनगर) से निर्विवादत हो चुकी है।

छठी शताब्दी ई0 पू0 मे गणतत्रो की स्थिति अत्यत सुदृढ थी। लिच्छवी, मल्ल इत्यादि अत्यत सुगठित तथा शक्तिशाली थे, किन्तु राजतन्त्रो की साम्राज्यवादी नीति के समक्ष गणतत्र सागर मे तैरते हुए उस नौड के समान थे जिनका अस्तित्व सदैव खतरे मे था[75]। प्रारम्भ मे जब राजतत्रात्मक राज्य पृथक–पृथक थे तथा उनकी शक्ति दुर्बल थी तब तो गणतत्रो को अपना अस्तित्व बनाए रखने मे किसी बडी कठिनाई का सामना न करना पडा लेकिन छठी शती ई0 पू0 के उत्तरार्द्ध में जब मगध, वत्स, कोशल तथा अवति राजतत्र शक्तिशाली हो गए तो गणतत्रो का अस्तित्व सकट मे पड गया। इस प्रकार गणतत्रों के पतन का एक महत्त्वपूर्ण कारण इन राजतत्रात्मक राज्यो का अपेक्षाकृत अधिक सशक्त होना था।

उपर्युक्त विवेचन के आलोक मे यह स्पष्ट हो चुका है कि छठी शती ई0 पू0 के उत्तरार्द्ध मे उत्तर भारत का इतिहास दो विरोधी प्रवृत्तियो की ओर उन्मुख हो रहा था। इस ऐतिहासिक उथल–पुथल से कोशल

एव इससे जुडे हुए अन्य क्षेत्र भी प्रभावित हुए बिना नही रह सके। यहाँ कोशल की भौगोलिक सीमा को के मे रखकर ही इन विरोधी शक्तियो के सघर्ष की चर्चा की जा रही है। इस सघर्ष मे राजतत्रो की साम्राज्य लिप्सा की नीति ने गणतत्रो के अस्तित्व को समाप्त कर दिया।

बिम्बिसार के समय मगध एव कोशल के सम्बन्ध अत्यन्त मधुर थे। दोनो राज्यों के बीच इस निकटता के पृष्ठाधार मे वैवाहिक सम्बन्ध काम कर रहे थे। वस्तुत बिम्बिसार एक दूरदर्शी शासक था। कोशल के साथ वैवाहिक सम्बन्ध बनाकर उसने जहाँ एक ओर अपनी राजनीतिक हैसियत बढायी, वहीं दूसरी ओर दहेज मे काशी का एक ग्राम प्राप्त कर उसने अपनी आर्थिक स्थिति भी मजबूत की। ध्यातव्य है कि काशी उस समय तक कोशल का अग बन चुका था। बिम्बिसार के पुत्र एव उत्तराधिकारी अजातशत्रु के समय मे राजनीतिक परिस्थिति बदल गयी, जिसके परिणाम स्वरूप काशी के उस ग्राम को लेकर प्रसेनजित के साथ युद्ध हुआ, जिसका अत प्रसेनजित की पुत्री वजिरा के साथ मगध नरेश के विवाह के रूप मे हुआ[76]। अजातशत्रु के पश्चात् उसके उत्तराधिकारियो एव कोशल के बीच सम्बन्धो के विषय मे जानकारी का अभाव है। लेकिन यह स्पष्ट है कि नन्द शासक महापद्मनद ने इसे (कोशल को) अपने राज्य मे मिला लिया। कथासरित्सागर से इसकी पुष्टि हो जाती है[77]।

शाक्यो के पतन की पृष्ठभूमि मे उनके स्वाभिमान को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। कोशलपति प्रसेनजित का विवाह शाक्यो की दासी–पुत्री वासभखत्तिया के साथ छलपूर्वक हुआ था। शाक्यो द्वारा किए गए इस छल से प्रसेनजित अत्यधिक क्रोधित हुआ और अपने अपमान का बदला लेने के लिए सैन्य कार्यवाही के लिए तत्पर हुआ, लेकिन गौतम बुद्ध के समझाने–बुझाने पर मामला शात हो गया। लेकिन प्रसेनजित के दासी–पुत्र विड्डूभ (वासभखत्तिया से उत्पन्न) ने पिता के इस अपमान को बहुत गम्भीरता से लिया। फलत विड्डूभ ने अपने पिता के अपमान का बदला लेने का निश्चय किया और इसमे सफलता प्राप्त की[78]। बहुत सम्भव है कि कोलिय भी शाक्यो की सहायता के लिए उनके कदम से कदम मिलाए हो। क्योकि यह उल्लेख किया जा चुका है कि शाक्य और कोलिय दोनो सम्बन्धी थे। इस सघर्ष मे कोशल नरेश विड्डूभ ने शाक्यों एव कोलियो, दोनो को पराजित किया। परिणामत शाक्य एवं कोलिय राज्य कोशल मे मिला लिए गये।

राजतत्रो द्वारा विभिन्न गणराज्यो को अपने अधीन करने के क्रम मे लिच्छवियो एव अजातशत्रु के बीच जो सघर्ष हुआ उसका न केवल मगध के इतिहास मे बल्कि उत्तर भारत के इतिहास मे भी विशेष महत्त्व है। कहा जाता है, इस युद्ध मे अजातशत्रु ने महाशिलाकण्टक तथा रथमूसल नामक गुप्त युद्धास्त्रों का प्रयोग किया था। इस युद्ध मे अजातशत्रु के विरूद्ध लिच्छवियो की सहायता नौ मल्लगण ने की थी। डॉ0 राजबलि पाण्डेय के अनुसार, नौमल्लगण से प्रयोजन– मल्ल राष्ट्र और गोरखपुर के अन्य सहायक गणराज्य से है[79]।

इस युद्ध मे लिच्छवियो की पराजय हुयी। चूँकि मल्ल भी लिच्छवियो के साथ थे, अतएव उन्हे भी पराजय का मुँह देखना पडा होगा।

यह उल्लेख किया जा चुका है कि कोशल एव मगध से लगे हुए अन्यान्य राज्यो का विलय मगध साम्राज्य मे हो गया। इस प्रकार मगध ने अपने पडोसी राज्यो की कीमत पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। नन्द लोग मगध की राजसत्ता के अपहारक थे। पुराणो के अनुसार महापद्म या महापद्मपति नन्दवश का प्रथम नन्द था[80]। महापद्मनन्द ने व्यापक दिग्विजय किया, जिसका वर्णन कलियुग राजवृत्तात मे प्राप्त होता है[81]। पुराणो के अनुसार महापद्मनन्द परशुराम के समान समस्त क्षत्रियो का विनाशक तथा सम्पूर्ण पृथ्वी का एकछत्र शासक था[82]। प्रश्न उठता है कि वे कौन से क्षत्रिय राजवश थे, जिन्हे महापद्म ने उन्मूलित किया तथा जिनके लिए वह परशुराम तुल्य सिद्ध हुआ। पुराण इस विषय मे मौन नही हैं। मत्स्यपुराण मे महापद्मनन्द के समकालीन ऐक्ष्वाकु, पाचाल, काशेय, हैहय, कलिग, अश्मक, कुरू, मैथिल, शूरसेन तथा वीतिहोत्र का उल्लेख मिलता है[83]। महापद्म द्वारा विजित राज्यो मे इक्ष्वाकुओ का उल्लेख सर्वप्रथम किया गया है। यह स्पष्ट है कि कोशल के इक्ष्वाकुओ पर उसने आक्रमण किया। महापद्म द्वारा कोशल विजय की पुष्टि कथासरित्सागर द्वारा भी हो जाती है। इसमे अयोध्या के निकट एक सैनिक शिविर का उल्लेख किया गया है[84]। डॉ0 राजबलि पाण्डेय का विचार है कि गोरखपुर जनपद मे स्थित गणराज्य भी इक्ष्वाकुवश से सम्बन्धित थे। अत कोशल के साथ इनमे बचे–खुचे शाक्य, मौर्य तथा मल्ल भी सम्मिलित थे। इस युद्ध मे शाक्य और कोलिय गणतत्र सदा के लिए समाप्त हो गए लेकिन मल्ल और मौर्य गणो ने मगध की अधीनता स्वीकार कर अपने अस्तित्व को बचाए रक्खा, क्योकि मौर्य साम्राज्य के उदय के समय ये दोनो राज्य जीवित दिखायी पडते है[85]।

नन्द–युग के पश्चात् मौर्य वश का शासन आरम्भ हुआ। इस युग मे पहली बार एक शाही सत्ता के अतर्गत सम्पूर्ण भारत का राजनीतिक एकीकरण हुआ था, जिसने अपनी भौगोलिक सीमा के बाहर स्थित भूमि पर भी अपने प्रभुत्व का दावा किया था। नन्दो के पश्चात् चन्द्रगुप्त मौर्य मगध के सिहासन पर अधिष्ठित हुआ[86]। प्लूटार्क ने लिखा है कि चन्द्रगुप्त मौर्य 6 लाख की सेना लेकर समूचे भारत को अपने साम्राज्य मे मिला लिया। जस्टिन भी स्वीकार करते है कि समूचा भारत चन्द्रगुप्त के अधीन था। डॉ0 एस0 कृष्ण स्वामी आयगर ने लिखा है कि मौर्य लोग एक बडी सेना लेकर तिनबेली जिले की पोडियल पहाडी तक पहुँचे[87]। मुद्राराक्षस के अनुसार चन्द्रगुप्त की विजय पताका सुदूर दक्षिण मे हीरे मोतियो से भरे प्रदेश, पाण्ड्य राज्य

तक पहुँच चुकी थी[88]। इन विवेचनो से द्योतित होता है कि मौर्य साम्राज्य उत्तर मे हिमालय पर्वत पर गगा से लेकर दक्षिण सागर तट तक विस्तृत था और सम्भवत गोरखपुर परिक्षेत्र भी मौर्य साम्राज्य का अग रहा होगा।

इस प्रकार पजाब और सिन्ध से सिकन्दर की, और गगाघाटी से नन्दो की सत्ता का उन्मूलन करके मौर्य–साम्राज्य की आधारशिला रखने तथा भारत को एकताबद्ध करने का श्रेय चन्द्रगुप्त मौर्य को प्राप्त है। मौर्य राजवश के इस शिखर पुरुष का राज्यारोहण 322 ई0 पू0 मे हुआ।

मौर्यो के पश्चात् गोरखपुर मण्डल क्रमश शुग, कण्व एव कुषाण शासको के बाद गुप्तो एव मौखरियो के अधीन रहा। मौखरियो के लगभग 46 वर्ष के शासन के पश्चात् गोरखपुर हर्षवर्द्धन के आधिपत्य मे आ गया था जिसके प्रमाण स्वरूप मधुबन (आजमगढ) से प्राप्त ताम्र-पत्र अभिलेख उल्लेखनीय है।

आठवी सदी मे यह क्षेत्र कन्नौज के शक्तिशाली राजा यशोवर्मन के अधीन आ गया। इसके उत्तराधिकारी सफल नही हुये, और यह क्षेत्र पाल वश के आधिपत्य मे आ गया। इनसे मुक्त होकर चन्देल राजा विद्याधर के काल मे यह परिक्षेत्र पुन पाल वश के अधीन आ गया। इसके आठ राजाओ ने इस परिक्षेत्र पर राज्य किया।

1192 मे दिल्ली, 1194 मे कन्नौज तथा 1195 मे बनारस पर मुहम्मद गोरी का आधिपत्य कायम हो जाने के बाद यह क्षेत्र तुर्को के अधीन आ गया। मध्यकाल मे यह क्षेत्र अनेक बार मुस्लिम आक्रमणकारियो के विध्वश का शिकार हुआ। 1070 ई0 मे पाल वशीय राजा सूरपाल द्वारा निर्मित विष्णु मदिर को नष्ट किया गया। अलाउद्दीन खिलजी ने गोरखनाथ पीठ को क्षति पहुँचायी और गोरखनाथ की प्रतिमा के स्थान पर मस्जिद निर्मित कराने की आज्ञा दी थी। बगाल आक्रमण के समय फिरोजशाह तुगलक गोरखपुर के पास से गुजरा था और यहॉ के अमीरो से कर वसूल किया था। मुगल सम्राट अकबर के शासनकाल मे अवध पॉच भागो मे बॅटा था जिसमे से एक का मुख्यालय गोरखपुर था।

जहॉगीर के शासनकाल मे बॉसी और रूद्रपुर के राजाओ ने अपने को स्वतत्र घोषित कर लिया था। बाद मे औरगजेब के शासन काल मे यह क्षेत्र मुगल अधिकार मे आ गया। औरगजेब का पुत्र मुहम्मद मुहज्जम बहादुर शाह प्रथम गोरखपुर के जगलो मे शिकार खेलने आया था और गोरखपुर का नाम मुहज्जमाबाद कर दिया। किन्तु यह नाम प्रचलित नही रह सका।

भारत मे ईस्ट इडिया कम्पनी के शासन काल मे 1801 ई0 मे गोरखपुर अग्रेजो के अधीन एक जिला घोषित हुआ। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन काल मे गोरखपुर मे पॉच तहसीले थी। 1818 मे महराजगज,

1840 मे भौवापार के स्थान पर बासगॉव, 1902 मे सलेमपुर के बदले देवरिया तहसील का गठन हुआ। 1947 मे देवरिया को स्वतत्र जिले के रूप मे मान्यता प्रदान कर दी गयी।

स्वतत्रता आदोलन मे गोरखपुर का विशेष योगदान रहा है। 1857 के प्रथम स्वतत्रता सग्राम सेनानियो मे से एक बधुसिह का जन्म, ग्राम डुमरी कोर्ट, थाना चौरी चौरा के स्वर्गीय शिवप्रसाद सिह के घर हुआ था। बाबू बधुसिह गुरिल्ला युद्ध के माध्यम से अग्रेजो को मारते और उनका सिर काट कर देवी मॉ के चरणो मे बलि स्वरूप चढाते। इस कार्य मे उनके भाई भी उनका साथ देते। परन्तु किरी की मुखबिरी पर वे अग्रेजो द्वारा गिरफ्तार किये गये और 12 अगस्त, 1857 को अलीनगर चौराहे पर खुलेआम फॉसी दी गयी। देवी मॉ का आशीर्वाद उनके साथ था। फॉसी का फन्दा सात बार उनके गले मे डाला गया और वह बार–बार टूट जाता। अतिम बार बधु सिह ने देवी मॉ से अपने चरणो मे बुलाने की स्वय प्रार्थना की और खुद फॉसी का फदा अपने गले मे डालकर झूल गये।

कहते है कि बधुसिह की गर्दन फॉसी के फन्दे पर लटकते ही उधर देवी के स्थान पर तरकुल का पेड बीच से टूट गया और उसमे से खून की धारा बहने लगी, जिससे देवी के सामने स्थित फरने नाला खून से लाल हो गया। यह बात अतिशयोक्ति भले ही लगे, मगर उस समय से देवी मॉ का स्थान 'तरकुलहा देवी का स्थान' के नाम से प्रसिद्ध हो गया, जहॉ देश के कोने–कोने (कलकत्ता, मुम्बई) से लोग आते है। यहॉ का मसाला व्यापार भी प्रसिद्ध है। बाबू बधुसिह की शहादत आजादी प्राप्ति तक पूर्वांचल के लोगो को आजादी के लिए प्रेरणा देती रही।

ऐतिहासिक चौरीचौरा काण्ड इसी जनपद मे हुआ, जिससे जन इतिहास, क्षेत्रीय इतिहास और स्थानीय इतिहास का महत्त्व उजागर होता है। 4 फरवरी, 1922 को यहॉ के नागरिको ने पुलिस के बर्बर अत्याचार से त्रस्त होकर चौरीचौरा थाने के थानेदार सहित 19 सिपाहियों को थाने परिसर मे आग लगाकर जला दिया। इससे क्षुब्ध होकर गॉधी जी ने असहयोग आदोलन वापस ले लिया। जवाहरलाल नेहरू व अन्य राष्ट्रीय नेताओ ने गॉधी जी के इस निर्णय का विरोध किया।

9 अगस्त, 1925 को 8 डाउन सहारनपुर–लखनऊ पैसेन्जर गाडी को काकोरी रेलवे स्टेशन के आगे रोककर सरकारी खजाना लूट लिया गया। इसमे पं0 रामप्रसाद बिस्मिल, अशफाकुल्लाह खॉ वारसी, केशव, चक्रवर्ती, राजेन्द्र लाहिणी, शचीन्द्रनाथ सान्याल, मुरारीलाल, मुकुन्दीलाल, चन्द्रशेखर आजाद, बनवारी लाल और मन्मथ गुप्त शामिल थे। बाद मे पूरे हिन्दुस्तान से इन क्रातिकारियों को गिरफ्तार कर लखनऊ लाया गया और मुकदमा चलाया गया। 6 अप्रैल, 1927 को सेशन जज मि0 हैमिल्टन ने प0 रामप्रसाद बिस्मिल को

निर्दयी और हत्यारा सम्बोधित करते हुए प्राण निकल जाने तक फॉसी पर लटकाने का आदेश दिया। 19 दिसम्बर 1927 को गोरखपुर जिला जेल मे उन्हे प्रात फॉसी दी गयी। बन्दे मातरम् और ॐ का स्वर उनके होठो पर था, जिसकी गूँज ने गोरखपुरवासियो को प्रेरणा प्रदान की।

यह जिला गुरू गोरखनाथ, सन्त अहमद अलीशाह तथा महावीर स्वामी, की कर्म स्थली रहा है। छठी शताब्दी ई0 पू0 मे भी इस जनपद के अन्तर्गत मल्लो, लिच्छवियो, शाक्यो, कोलियो एव मौर्यो आदि के लगभग 10 गणराज्य थे। आज भी यहॉ का सामान्य जन लोक सवेदना की अपनी प्राचीन धरोहर सॅजोए हुए है। यहॉ की सस्कृति ने विश्व के दूसरे देशो, मारीशस, फिजी, त्रिनीदाद, वर्मा, श्रीलका, नेपाल आदि की सस्कृति को प्रभावित किया है।

आठवी शताब्दी के पूर्व गोरखपुर के किसी भी मुहल्ले का कोई इतिहास उपलब्ध नही है। आठवी शताब्दी मे भौवापार नरेश बसन्त सिह ने राप्ती नदी के दक्षिणी तट पर बसन्तपुर बसाया। इनके राज्य मे नदी का उत्तरी भाग था। बसतपुर मे उन्होने अपनी सैनिक छावनी कायम की । सैनिक छावनी उन्होने इसलिए बनायी थी कि राप्ती नदी के उत्तरी तट से डोमकटार क्षत्रियो के राज्य की सीमा शुरू होती थी, और वे भौवापार राज्य पर आक्रमण करके उनकी फसले कटवा ले जाते थे। उस समय राप्ती नदी का मार्ग सुमेर सागर, रेती चौक और तुर्कमानपुर होकर आगे जाता था। खूनीपुर, इस्माइलपुर, बख्शीपुर आदि जितने भी 'पुर' या 'पार' नामधारी गॉव या मुहल्ले हैं, सभी राप्ती नदी के कगार पर बसे हुए है। उर्दू नामधारी मुहल्लो का नामकरण मुगलकाल मे औरगजेब के बाद हुआ।

वास्तव मे वर्तमान गोरखपुर का इतिहास 300 वर्षों से ज्यादा पुराना नही है। उस समय यहॉ केवल बढई, लुहार और कुम्हारो की आबादी ज्यादा थी। औरगजेब के समय एक मुगल बादशाह यहॉ आया था, जिसके सम्मान मे घण्टाघर चौक यानि उर्दू बाजार मे मुशायरा हुआ था। उसी के बाद उर्दू बाजार, रेती चौक, इस्माइलपुर तथा खूनीपुर मुहल्ले आबाद हुए। अलीनगर को सब्जपोश मुसलमानो ने बसाया।

सन् 1867 के पहले गोरखपुर जनपद नही था। यह आजमगढ जिले का एक ताल्लुका था। सन् 1857 मे यहॉ एक ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट बैठते थे। गदर के समय बर्ड नाम के ज्वाइट मजिस्ट्रेट यहॉ तैनात थे। गदर के असफल होने पर अग्रेजो ने अपने हिन्दुस्तानी मित्रो को इस स्थान की जमीदारी मुफ्त दे दी। उनमे से कुछ ने रायगज, साहबगज, मियाबाजार, बख्शीपुर आदि बसाया।

सन् 1867 मे इसे नगरपालिका का दर्जा प्राप्त हुआ, और प्रशासनिक दृष्टि से आजमगढ से पृथक करके अलग जिला बनाया गया।

गोरखपुर का विकास सन् 1914 के बाद हुआ, जब यहॉ रेलवे लाइन आ गयी। बडे व्यापारी यहॉ आने लगे और यह एक बडा व्यापारिक केन्द्र बन गया। जिले की फौजदारी, दीवानी और माल की अदालते तो उन्नीसवी सदी के आते–आते यहॉ स्थापित हो गयी। कचहरी और अदालतो के काम मे कायस्थो ने भी अपना शहरीकरण शुरू कर दिया। धीरे–धीरे यहॉ मुसलमान, कायस्थ और वणिक वर्ग अधिक प्रभावी हो गया।

गोरखपुर मे अवध–तिरहुत रेलवे का बडा दफ्तर स्थापित हुआ, जो अब पूर्वोत्तर रेलवे के नाम से जाना जाता है। इसके साथ ही लोको वर्कशाप बन गया, जिससे इस शहर का और भी फैलाव हो गया। 1951 तक तो गोलघर, बेतियाहाता जैसे मुहल्ले थे ही नही। उर्दू–बाजार, बख्शीपुर और अलीनगर का ही नाम था।

वर्तमान मे गोरखपुर नगर उत्तर मे झुगिया बाजार, दक्षिण मे नौसड, पूरब मे इजीनियरिंग कालेज और पश्चिम मे राप्ती नदी के किनारे तक पसरा हुआ है। महानगर की आबादी लगभग 7 लाख हो गयी है।

1857 मे मुहम्मद हसन और डुमरी नरेश बन्धुसिह के आह्वान पर यहॉ के लोगो ने तत्कालीन ज्वाइट मजिस्ट्रेट, बर्ड् की कोठी मे आग लगा दी। 1857 के गदर मे नरहरपुर, सतासी, डुमरी, चिल्लूपार की रियासतो ने भी भाग लिया। इसमे राजा हरिप्रताप सिह, मुसरफ खॉ, रमजान अली खॉ आदि शहीदो ने अपनी कुर्बानियॉ दी।

16 मार्च, 1919 को आदोलन ने और तेजी पकडी। फिराक साहब, अनवर अली, विन्दवासिनी आदि ने खिलाफत आन्दोलन द्वारा जनजागरण किया। 1920 मे फिराक साहब ने डिप्टी कलक्टर के पद से त्यागपत्र दे दिया और असहयोग आदोलन मे कूद पडे। बाबा राघवदास, भगवती प्रसाद तथा गौरीशंकर मिश्र ने आदोलन को और आगे बढाया।

क्षेत्रफल

गोरखपुर पूर्वी उत्तर प्रदेश का एक महत्त्वपूर्ण जनपद है। इसके उत्तर मे महराजगज, पश्चिम मे बस्ती एव सिद्धार्थनगर, दक्षिण मे आजमगढ तथा पूर्व मे देवरिया जिले है। गोरखपुर जनपद मे कहला से प्राप्त अभिलेख मे इस क्षेत्र के लिए 'सरयूपार' शब्द का प्रयोग किया गया है[89]। गाहडवाल अभिलेखो (पाली एव पीपीगज) मे सरयूपार के स्थान पर 'सरूआर' शब्द प्रयुक्त है[90]। ध्यातव्य है कि दोनो ही पद एक ही भौगोलिक सीमा का प्रतिनिधित्व करते है।

सरयूपार क्षेत्र का विस्तार हिमालय पाद से दक्षिण मे सरयू नदी तक है। सरयूपार मैदान का विस्तार 26'5 उत्तर से 28°30' उत्तर एव 80°75' पूर्व से 85°29' पूर्व तक हे। सरयू के उत्तर, स्थित सरयूपार मेदान मे इस समय आठ जनपद्—बहराइच, गोण्डा, बस्ती, सिद्धार्थनगर, गोरखपुर, महराजगज, देवरिया एव कुशीनगर सम्मिलित है। यह क्षेत्र पूर्व से पश्चिम लगभग 270 कि0 मी0 लम्बा और उत्तर से दक्षिण 160 कि0मी0 चौडा है। इस भू–भाग का क्षेत्रफल 33236 वर्ग कि0मी0 है[31]।

आधुनिक गोरखपुर जनपद (20°45' उत्तरी अक्षॉश एव 83°22' पूर्वी देशान्तर पर) उत्तर प्रदेश के उत्तर–पूर्वी भाग मे स्थित है, जिसकी उत्तरी सीमा नेपाल की अन्तर्राष्ट्रीय सीमा रेखा को स्पर्श करती है। सरयू नदी इसे आजमगढ से पृथक करती है। जनपद की सम्पूर्ण लम्बाई 124 कि0मी0 एव चौडाई 52 कि0मी0 है[32]।

वर्तमान गोरखपुर जनपद 25 51 अक्षाश उत्तरी से 26 20 अक्षाश उत्तरी तथा 83 25 पूर्वी देशातर से 84 20 पूर्वी देशातर के मध्य स्थित है। जिले का सम्पूर्ण भौगोलिक क्षेत्रफल 3483 81 वर्ग कि0 मी0 है। इसके दक्षिणी सीमा पर घाघरा नदी, पश्चिम से पूर्व की ओर प्रवाहित होती है। यह जिला राप्ती नदी के तट पर स्थित है। जिले मे आमी, गोर्रा कुआनो, बरही, रोहिन आदि नदियो का प्रवाह है, जो बरसात मे उग्र रूप मे परिलक्षित होती है। (मानचित्र सख्या–1)

तहसीलें

जिले मे 6 तहसीले है– गोरखपुर सदर, चौरीचौरा, सहजनवा, खजनी, बासगॉव तथा गोला। इस जनपद मे 19 विकास खण्ड्—कैम्पियरगज, जगलकौडिया, भटहट, चरगॉवा, पिपराइच, सरदारनगर, ब्रह्मपुत्र, खोराबार, कौडीराम, गगहा, बडहलगज, गोला, बेलघाट, उरूवा, बासगॉव, खजनी, पिपरौली, सहजनवा तथा पाली है। आशिक रूप से पनियरा तथा फरेन्दा, जो कि महराजगज जिले के विकास खण्ड है, के भी गॉव गोरखपुर जिले मे स्थित है। क्षेत्रफल के दृष्टिकोण से प्रदेश मे जनपद का 51वॉ स्थान है। 31 मार्च, 1991 की स्थिति के अनुसार आबाद ग्रामो की सख्या 2882 है।

जिले मे एक नगर निगम, गोरखपुर तथा पॉच टाउन एरिया क्रमश गोला, बडहलगज, मुडेरा बाजार, पिपराइच तथा पीपीगज है। जनपद मे कुल तीन मण्डी समितियॉ गोरखपुर, सहजनवॉ तथा मुण्डेरा बाजार है।

नदियाँ और झीलें

जल एक ऐसा प्राकृतिक उपादान है, जिसके अभाव मे मानव जीवन सम्भव नही है। यही कारण है कि प्राचीन समय से ही जल को दैवीय मान्यता मिलती आ रही है। जल, जीवन के लिए एक अनिवार्य शर्त है, क्योकि जीवन का कोई भी पहलू इसके बिना सचालित नही हो सकता।

नदियाँ

यह अत्यन्त सौभाग्य एव सयोग की बात है कि जल के महत्त्वपूर्ण स्रोत, नदियो के मामले मे गोरखपुर परिक्षेत्र बहुत समृद्ध है। जनपद मे नदियो का जाल बिछा हुआ है। इनमे प्रमुख, नारायणी (बडी मण्डक) रोहिन, राप्ती, आमी, तैरना और सरयू (घाघरा) नदियॉ है[93]।

राप्ती नदी गोरखपुर जनपद मे जल के मुख्य स्रोत के रूप मे जानी जाती है। यह शहर के पश्चिमी किनारे से प्रवाहित होती है। घाघरा, राप्ती, रोहिन और आमी नदियो की घाटियॉ अपने निचले स्तर पर भी चोडी और सामान्य स्तर से अधिक गहरी है। बाढ नदी के दोनो किनारो के मध्य सीमित रहता है।

गण्डक को छोडकर सम्पूर्ण जिले का प्रवाह-तत्र, घाघरा नदी (सरयू) मे जाता है। कई स्थानो पर प्रवाहतत्र अपूर्ण है, विशेषत राप्ती बेसिन मे।

राप्ती नदी : राप्ती का असली नाम इरावती है, जो अपभ्रंश होकर रवाती के नाम से जानी जाती है। इसके अनेक नाम यथा, अचिरावती, अजिरवती, ऐरावती प्राप्त होते है[94]। चीनी यात्री ह्वेनसॉग ने इसे अचिलो नाम से पुकारा है, जो श्रावस्ती नगर के दक्षिण–पूर्व की ओर बहती थी[95]। इसी नदी को गोरखपुर जनपद की आधुनिक राप्ती नदी से समीकृत किया गया है, जिसके पश्चिमी तट पर कोशल की तृतीय या अतिम राजधानी श्रावस्ती का प्राचीन नगर स्थित था[96]। यह एक गहरी नदी थी, क्योकि इसका जल अगाध था[97]। यह नदी नेपाल के बाहरी क्षेत्र से निकलती है और बहराइच, गोण्डा तथा बस्ती से बहते हुए यह गोरखपुर जनपद मे तलनतवा और बेरसर के बीच मे प्रवेश करती है। कुछ दूर तक यह जनपद की सीमा बनाती है। तत्पश्चात् दक्षिण–पूर्व दिशा की ओर बहती है, पुन यह रिंगौली से जयनारायनपुर गॉव तक गोरखपुर और बस्ती के मध्य सीमा बनाती है। तत्पश्चात् दक्षिण दिशा मे मुड जाती है। 20 कि0 मी0 बहने के बाद, पूरब की ओर मुडकर गोरखपुर शहर को स्पर्श करती है। पुन दक्षिण–पूर्व की ओर मुड जाती है। इस दिशा मे काफी घुमावदार रास्ते को तय करते हुए बासगॉव तहसील और देवरिया जनपद के बीच सीमा बनाते हुए बॉसगॉव तहसील के दक्षिण पूर्वी किनारे से जनपद को छोड देती है। नदी के मार्ग परिवर्तन से

कभी–कभी पूरा का पूरा गॉव इसके प्रवाह मे विलीन हो जाता है। कभी–कभी आने वाले बाढ अपने पीछे सिल्ट और बालू बहुत अधिक मात्रा मे छोड जाते है, जो साधारणतया फायदेमद होता है। क्योकि यह बहुत ही उपजाऊ प्रकृति का होता है। यह नदी बरहज से पॉच किमी0 पश्चिम, सरयू मे मिल जाती है[98]। ग्रीष्म ऋतु मे बालुकामय नदी तल छोडकर सूख जाया करती थी[99]। इस नदी के किनारे रहने वाले लोग, नदी मे जाल फेककर मछली पकडने के अभ्यस्त थे[100]। राप्ती नदी मे प्रलयकारी बाढ आने का भी उल्लेख है[101]।

सरयूपार क्षेत्र से प्रवाहित होने वाली नदियॉ मार्ग परिवर्तन के लिए कुख्यात रही है। नदियो एव उनके समीपवर्ती क्षेत्रो मे छाडन झीलो तथा शुष्क नालो की स्थिति से स्पष्ट होता है कि इनकी उत्पत्ति प्रवाहित नदियो के मार्ग परिवर्तन के परिणाम स्वरूप हुयी है। राप्ती नदी के अत्यत सर्पाकार मार्ग तथा स्थान–स्थान पर छाडन झीलो की उपस्थिति से स्पष्ट है कि इस नदी मे मार्ग परिवर्तन अधिक हुआ है। अपने ऊपरी भाग से लेकर सगम स्थल के मध्य, इसने अनेक स्थानो पर मार्ग परिवर्तन किया है। गोरखपुर नगर के समीप राप्ती ने कई बार मार्ग परिवर्तन किया है। रामगढ ताल इसकी एक छाडन मात्र है[102]। प्रो0 उजागिर सिह ने इस परिवर्तन का अध्ययन कर यह प्रमाणित किया कि इसके कारण पॉच बार नगर सन्निवेश मे परिवर्तन हुआ[103]।

1 प्रारम्भिक काल मे राप्ती नदी पश्चिम मे रेलवे लाइन से उत्तरी भाग मे सूरजकुण्ड, गोरखनाथ, उत्तरी हुमायूँपुर, विष्णुमदिर, असुरनताल, आम बाजार के उत्तर बसहिया नाला, जेल, बिछिया कालोनी होती हुयी गोरखपुर कैण्ट स्टेशन से पहले दक्षिण को मुडकर, रामगढ से प्रवाहित होती थी।

2 प्राचीन काल मे नदी दक्षिण को स्थानातरित होकर इलाहीबाग के पास वर्तमान नगर के लगभग मध्य से सुमेर सागर होती हुयी, गोरखपुर रेलवे स्टेशन के दक्षिण से रेलवे गोल्फ कोर्स के मार्ग से रामगढताल से प्रवाहित होती थी।

3 मुस्लिम काल मे राप्ती नदी दक्षिण को स्थानातरित होकर पुराने किले के उत्तरी भाग से बगुलादह तथा कोपादह होती हुयी, बिलन्दपुर के पश्चिम–दक्षिणी भाग से रामगढ ताल होती हुयी, प्रवाहित होती रही।

4 1916–17 के आस–पास राप्ती नदी इलाहीबाग के पश्चिमी भाग मे रोहिन नदी से मिलकर, बसन्तपुर निर्मित पुराने किले, रैन बसेरा तथा राजघाट के पश्चिमी भाग से दक्षिण को प्रवाहित होने लगी।

5 सम्प्रति राप्ती नदी राजघाट के समीप गोरखपुर की सीमा को स्पर्श करती है, तथा दक्षिण को मुड जाती है। राप्ती एव रोहिन नदियो का सगम स्थल सन् 1973–74 से सन् 1976–77 के बीच लगभग 15 किमी0 दक्षिण को स्थानातरित हुआ है।

भूमि की सरचना के आधार पर राप्ती नदी, जनपद को दो भागो मे विभाजित करती है। प्रथम, उत्तरी–पूर्वी भाग, जिसमे तराई का क्षेत्र सम्मिलित है तथा दूसरा दक्षिण–पश्चिमी भाग, जहॉ बॉगर और कछार दोनो है। इस प्रकार यह जनपद को कर्णवत् विभाजित करती है। जनपद मे इसके प्रवाह के साथ ही विशाल भूखण्ड कछार के रूप मे परिणत हो जाता है, जो कृषिकार्य के लिए अत्यन्त उर्बर क्षेत्र कहा जा सकता है। अस्तु, राप्ती कछार के दोनो तटबध, प्राचीन काल के मानव के अधिवास हेतु सर्वथा अनुकूल थे। क्योकि निवास के लिए ऊँची भूमि और कृषि हेतु उपजाऊ कछारी भू–भाग, दोनो ही राप्ती के तटबध पर सुलभ थे। ऐसे बहुत से प्राचीन स्थल प्रकाश मे आए है, जो राप्ती के उर्बर भू–खण्ड के समीप थे, यथा–सोहगौरा, कोठा आदि। प्राचीनकाल मे व्यापार हेतु भी यह नदी सर्वथा उपर्युक्त थी। इसलिए प्राचीन बस्तियो के अवशेष राप्ती के तट पर मिलना, अत्यन्त स्वाभाविक है।

घोघी नदी   राप्ती के बाएँ किनारे पर मिलने वाली पहली नदी घोघी है। यह नदी नेपाल से निकलकर जनपद की उत्तर–पश्चिम सीमा बनाती हुयी, दक्षिण की ओर बढती है, और धानी बाजार से आगे राप्ती मे मिल जाती है[104]। इसकी मुख्य धारा भारत और नेपाल के बीच अतर्राष्ट्रीय सीमा का निर्धारण करती है। दक्षिण–पश्चिम की ओर बहते हुए, डाडा और डुनरी, (Danda and Dunri) दो छोटी नदियो की धाराएँ इसके बाएँ किनारे पर मिलती है। इसके बाद यह दक्षिण की ओर मुड जाती है और बस्ती जिले के साथ कुछ दूर तक सीमा बनाती है। बृजमानगज (Bridgmanganj) के बाद यह नदी दो भागो मे बॅट जाती है, जो पुन सिकरी (Sikri) के धमेला (Dhamela) और रिगौली के नजदीक एक हो जाती है। यह गहरी तथा निश्चित दिशा मे प्रवाहित होने वाली नदी है। यद्यपि वर्षा के समय यह काफी चौडी हो जाती है, लेकिन इसके बाद (वर्षा ऋतु समाप्त होने पर) बहुत तेजी से सिकुड कर सॅकरी हो जाती है। धमेला मात्र राप्ती का पुराना चैनेल (Chanell) है, जो कुन्हरा और बस्ती के अन्य नदियों से जल ग्रहण करती है और 15 किमी0 बहने के पश्चात् करमैनी के निकट राप्ती मे पुन मिल जाती है।

रोहिन   राप्ती की दूसरी मुख्य सहायक रोहिन नदी है। यह नदी नेपाल से निकलकर नौतनवॉ कस्बे (भारत, गोरखपुर जनपद) के पास जनपद मे प्रवेश करती है और दक्षिण वाहिनी होकर गोरखपुर के पश्चिम डोमिनगढ नामक स्थान पर राप्ती से मिल जाती है[105]। बरसात के दिनो मे मानीराम से लेकर डोमिनगढ के बीच यह एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कछारी भूखण्ड का निर्माण करती है। यह कछार भूमि कृषि

कार्य हेतु अत्यन्त उपजाऊ है। इस नदी के जल का उपयोग सिचाई के लिए किया जाता था। यह कछार भूमि कृषि-कार्य हेतु अत्यन्त उपजाऊ है। इस नदी के जल का उपयोग सिचाई के लिए किया जाता था। शाक्य एव कोलिय गणो ने रोहिणी नदी को एक ही बॉध से बॉधा था और वे इस नदी के जल से कृषि-कर्म किया करते थे[106]। प्राचीन काल मे यह नदी शाक्य एव कोलिय प्रदेश की मध्यवर्ती सीमा थी[107]। इसी नदी के जल के बॅटवारे से सम्बन्धित विवाद को भगवान बुद्ध ने समाप्त किया, जो शाक्यो और कोलियो के बीच उत्पन्न हुआ था[108]। इस नदी का समीकरण कनिघम ने 'रोबाई' या 'रोहवैनी' से स्थापित किया है[109]। रोहिणी का तादात्म्य नेपाल की तराई से बहने वाली नदी रोहिन के साथ भी स्थापित किया गया है[110]। इसके किनारो पर कृषि योग्य भूमि होने के कारण, प्राचीन काल के मानव का आकर्षण कृषि-कार्य हेतु अवश्य हुआ होगा। फलत उसने अपना स्थायी अधिवास यहॉ बनाया होगा। रोहिन नदी अपने बाऍ किनारे की ओर सखौनी से 9 किमी0 आगे बघेला नदी मे मिलती है। पियस या झरिन (Piyas or Jharain) इस जनपद मे ठूॅठीबारी से प्रवेश करती है और मलून (Malaun) नदी मे मिलती है। मलून, लहरौली से निकलती है और नदवा नाला (Nadao Nala) तथा अन्य छोटे-छोटे नाले रोहिनी मे गिरने के पहले फरेन्दा और महराजगज के बीच एक दूसरे से मिलते है। बलिया नदी (Balia River) महराजगज के पास से निकलती है और रोहिनी मे जरलहिया (Jarlahia) के पास आकर मिल जाती है। चिलुआ नदी, हवेली परगना के तप्पा कटहरा से निकलती है। इसमे पानी टेमर और कुछ अन्य छोटी धाराओ से आता है। ये सभी मिलकर चिलुआ ताल बनाते है और तब मानीराम के पास रोहिन मे मिल जाते है। इसके दक्षिणी किनारे पर केवल एक कलान नामक बडी धारा, जो लेहरा (Lehra) से निकलती है, दक्षिण दिशा मे बहते हुए पीपीगज के उत्तर-पूर्व मे रोहिन मे आकर मिल जाती है।

तुरा और गौरा परगना हवेली के तप्पा अन्ती (Unti) मे 'तुरा' नामक एक छोटी नदी निकलती है और गोरखपुर शहर के पूर्व रामगढ जगल से होते हुए झगहा तक जाती है और यहॉ गौरा नदी मे मिल जाती है।

ये दोनो नदियॉ मिलने के बाद राप्ती नदी एक से एक निश्चित दूरी बनाकर उसके समानान्तर बहती है।

फरेन्द नाला फरेन्द नाला, पिपराइच के उत्तर मे अस्तित्व मे आता है। दक्षिण दिशा मे यह तुरा नदी के समानान्तर बहता है और अतत. राजधानी के दक्षिण गौरा नदी में मिल जाता है। इसका यह नाम 'फरेन्द' नदी के दोनो किनारों पर सघन जंगली जामुन के पेडो के कारण पडा।

आमी राप्ती की सहायक 'आमी' और 'तरैना' इसके दाहिने किनारे पर है। पहले यह बस्ती जनपद के परगना रसूलपुर मे अस्तित्व मे आयी, और गोरखपुर जनपद मे रामपुर (परगना मगहर) मे प्रवेश करती है। इसके बाद दक्षिण-पूर्व मे बहते हुए सोहगौरा (परगना भौवापार) के निकट राप्ती मे मिल जाती है। वर्षाकाल को छोडकर यह बहुत ही सॅकरी और सुस्त (मद गति से बहने वाली) नदी है। वर्षाकाल मे अमियार ताल मे पानी बढने की दशा मे इस नदी मे बाढ आ जाता है और इस नदी की घाटियो मे भी पानी फैल जाता है, और इससे लगे हुए क्षेत्र भी प्रभावित हो जाते है।

इस नदी का प्राचीन नाम अनोमा है[111]। कार्लायल ने अनोमा (आमी) को बस्ती जिले की 'कुडवा' नदी से समीकृत किया है[112]। त्रिपिकटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित इसे देवरिया जिले की आधुनिक 'मझने' नदी बताते है[113]। भरत सिह उपाध्याय ने इसका समीकरण आमी नदी के साथ किया है[114]। कपिलवस्तु छोडने के बाद बुद्ध इस नदी के तट पर आये और तब उन्होने भिक्षु जीवन ग्रहण किया[115]।

गोरखपुर जिले मे आमी और राप्ती लगभग 10 15 किमी0 की दूरी पर समानान्तर बहती है। यदि दोनो नदियो के प्रवाह सीमा पर ध्यान दिया जाय तो ऐसा लगता है कि आमी का कछारी क्षेत्र सम्भवत पहले राप्ती का ही कछार था[116]। आमी के दक्षिणी पार्श्व पर अनेक प्राचीन स्थल है, यथा सरया, उनवल, बासगॉव, सोहगौरा आदि। जिन भूखण्डो से होकर यह नदी बहती है, वह पीली बालूदार है, जो इस बात का सकेत करती है कि यह क्षेत्र नदियो द्वारा लायी हुयी मिट्टी से निर्मित हुआ है। इसलिए यह भू-क्षेत्र अत्यन्त उपजाऊ है। प्राचीन काल मे राप्ती और आमी नदियो के माध्यम से व्यापार भी होता रहा होगा। भगवान बुद्ध ने कपिलवस्तु से प्रस्थान कर कोलियो के रामग्राम जनपद होते हुए अनोमा को पार किया था[117]।

तरैना यह नदी दक्षिण मे परगना उनवला मे अपना आकार ग्रहण करती है और दक्षिण पूर्वी सीमा की ओर बहते हुए धुरियापार तक जाती है और वहॉ भेरी ताल मे मिल जाती है। पुन. भेरी ताल के पूर्वी छोर से निकलकर पश्चिम से पूरब की ओर बढती हुयी राप्ती मे मिल जाती है[118]। गर्मी के दिनो मे यह नदी अत्यन्त सॅकरी हो जाती है, लेकिन वर्षा ऋतु मे विशाल आकार ग्रहण कर लेती है। इसके तटबन्धो के पार्श्व क्षेत्र कृषि-योग्य नही है। इस नदी से प्रभावित क्षेत्र चूँकि कृषि-योग्य नही है, अस्तु प्राचीन काल का मानव इसके किनारो को अधिवास हेतु उपयुक्त नही समझा होगा।

घाघरा या सरयू घाघरा नदी 'सरयू' और 'देहवा' नाम से जानी जाती है। सरयू या घाघरा का उद्गम स्थल नेपाल मे है। यह नदी हिमालय की श्रेणियो मे तकलाकोट के उत्तर-पश्चिम मे स्थित नेपचाचुग हिमनद से निकलती है, जहॉ इसे करनाली नाम से सम्बोधित करते है। हिमालय से मैदान में प्रवेश करने पर

यह कोडियाला एव चौका या शारदा, दो शाखाओ मे विभक्त हो जाती है। गोण्डा जनपद के एलगिन पुल के पास से यह दोनो धाराएँ पुन मिलकर एक धारा मे प्रवाहित होती है। यहाँ इसे घाघरा नाम से पुकारते है। सम्प्रति यह नदी घाघरा एव सरयू दोनो नामो से प्रचलित है[119]। वर्तमान समय मे यह नदी बासगॉव तहसील के नरगडा नामक ग्राम के दक्षिण, गोरखपुर जनपद मे प्रवेश करती है। भूमि की कठोरता के अनुसार दोनो ही तटबन्धां पर कटाव करती है। नरगडा से शाहपुर के बीच यह अपने तट को काटती हुयी आगे बढती है। फलत एक विशाल 'दियारा' निर्मित होता है, जिसमे मात्र एक ही फसल पैदा होती है। दियारा के उत्तरी तट पर अनेक प्राचीन स्थल स्थित है– यथा, कूरी बाजार, धुरियापार आदि। जनपद मे पूरब की ओर बढती हुयी यह नदी बरहज बाजार से पूर्व ही गोरखपुर जनपद की सीमा को छोड देती है। यही राप्ती–सरयू सगम है। आगे बढती हुयी यह नदी गगा मे मिल जाती है। शाहपुर से पूरब नदी का उत्तरी तटबन्ध कठोर होने के कारण परिवर्तित नही हुआ। फलत गोला, गोपालपुर, नरहन, मकन्दवार, जैसे पुरास्थलो पर वर्तमान मे भी पुरावशेष देखे जा सकते है।

सरयू का उल्लेख ऋग्वेद मे प्राप्त होता है[120]। रामायण मे कहा गया है कि राजा दशरथ ने इस नदी के तट पर अश्वमेध यज्ञ का सम्पादन किया था[121]। महाभारत मे इस नदी का उल्लेख सरयू नाम से किया गया है[122]। पाणिनि ने भी इसका उल्लेख किया है[123]। वर्षा काल मे इस नदी की धारा मे घहर–घहर की आवाज होती है, इसलिए इसे घाघरा कहते है[124]।

बौद्ध काल मे कोसल जनपद दो भागो मे विभाजित था, जिसके मध्य सरयू विभाजक रेखा थी। उत्तर की ओर स्थित भाग उत्तर कोसल और दक्षिण भाग को दक्षिण कोसल कहा जाता था[125]। विष्णु स्मृति मे भी इस नदी का उल्लेख किया गया है[126]। हापकिस ने इसे पश्चिम की एक नदी माना है[127]।

इस नदी के किनारे काफी ऊँचे होने के बावजूद वर्षा के दिनो मे यह अपने किनारो से ऊपर होकर बहती है और आस–पास का निचला क्षेत्र पानी से डूब जाता है। बरसात के बाद अनेक बालूकामय किनारे और द्वीप बन जाते है।

कुआनो इस नदी का उद्गम स्थल बहराइच जिले के पूरब मे है, किन्तु गोरखपुर जनपद मे पूर्ण रूप से छितौना ग्राम (बासगॉव तहसील) के पास प्रवेश करती है[128]। छितौना से पहले यह गोरखपुर जनपद को बस्ती जनपद से अलग करती है, और तब परगना धुरियापार के पश्चिम मे बहते हुये, शाहपुर के निकट (शाहपुर से 3 कि0 मी0 पूरब मठरामगिरि के पास) घाघरा मे मिल जाती है। इस नदी के किनारे अनेक नीलकोठियो के प्रमाण हमे प्राप्त हुए है। इस आधार पर निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इस नदी के माध्यम

से व्यापार होता था। इसके किनारे कुछ पुरास्थलो के प्रमाण मिले हैं– यथा, इमलीडीह, सिकरीगज, बसतपुर, दुघरा, धुरियापार, शाहपुर और छितौना आदि। इस नदी के दोनो ऊँचे किनारो के मध्य तलहटी मे बालू की चादर (Sandy bed) के अवशेष मिलते है।

बडी गण्डक यह नदी नेपाल के बर्फीले क्षेत्र मे अपना आकार ग्रहण करती है और अत्यन्त सँकरे मार्ग से चलकर त्रिवेनीघाट के समीप मैदान मे आती है, जो जिले की सीमा से 16 कि0 मी0 दूर है। इसके अनेक नाम प्राप्त होते है, यथा सदानीरा, शालीग्रामी, गण्डकी आदि[129]। शतपथ ब्राह्मण मे वर्णित सदानीरा को कुछ विद्वानो ने गण्डक और अन्य ने ताप्ती नदी से समीकृत करने की चेष्टा की है[130]। पार्जिटर ने भ्रमवश इसे राप्ती से समीकृत किया है[131]। पद्मपुराण मे इस नदी को पुनीत बताया गया है[132]। योगिनी तत्र मे गण्डकी नदी का उल्लेख प्राप्त होता है[133]। नेपाल से गुजरते हुए इसमे बायी ओर से चार और दाहिनी ओर से दो सहायक नदियॉ मिलती है[134]। वर्तमान समय मे इस नदी के दोनो पार्श्वों पर जगल है। किन्तु जहॉ कटाव हो गया है,वहॉ मात्र बालूका के ढेर ही प्राप्त होते है।

बडी गण्डक सबसे अधिक महत्त्व की नदी है। गर्मी के मौसम मे भी इसका फैलाव बहुत अधिक रहता है। जिले मे प्रवेश के समय यह पथरीले मार्ग से आगे बढती है तथा इसका पानी ठण्डा और साफ (पारदर्शी) दिखायी देता है।

छोटी गण्डक इस नदी का उद्‌गम स्थल नेपाल मे है। दक्षिण दिशा मे बहते हुए यह सीतलापुर ग्राम के पास गोरखपुर जनपद मे प्रवेश करती है। अपने उद्‌गम स्थल से 1 कि0 मी0 और इस गॉव से 1/2 कि0 मी0 चलने के बाद यह नदी दो शाखाओ मे बॅट जाती है। एक शाखा जनपद के उत्तर–पश्चिम दिशा मे बहती है और दूसरी शाखा अनवरत रूप से दक्षिण दिशा मे बहती है। यही छोटी गण्डक है। डोमखण्ड वन–क्षेत्र से गुजरने के बाद देवरिया जनपद के दक्षिण मे पहुँचती है। इसी दिशा मे बहते हुए यह जनपद महराजगज और हाटा तहसील (जनपद देवरिया) के बीच सीमा रेखा का आकार ग्रहण करती है।

झीलें

गोरखपुर जनपद मे अत्यधिक सख्या में बारहमासा (वर्ष भर पानी वाली) झीले है,जिनमे अधिकतर नदियो की छाडन झीले है, जो सिल्ट के इकट्ठा होने के फलस्वरूप या प्राकृतिक दबाव से गहरे हुए स्थल पर पानी के इकट्ठा होने से अस्तित्व मे आयी है। इनके महत्त्व का वर्णन निम्नवत् है–

रामगढ ताल गोरखपुर शहर से दक्षिण–पूर्व और कसया (जो कि देवरिया जनपद मे है) जाने वाली मुख्य सडक के दक्षिण मे रामगढ ताल है। बहुत पहले यह झील बरसात के मौसम को छोडकर अन्य मौसमो मे घने नरकटो से आच्छादित रहता था, जो समीपवर्ती, लोगो विशेषत नगर के लोगो के स्वास्थ्य के लिए हानिकारक था। अतएव इसे साफ करके इसके पानी को एक पतली धारा के द्वारा राप्ती मे मिलाने का असफल प्रयास किया गया। रामगढ ताल, राप्ती नदी के मार्ग परिवर्तन से बना है[135]। रामगढ ताल मछलियो के मामले मे बहुत समृद्ध है। इस ताल के किनारे बसे लोगो को यहॉ से मछली पर्याप्त मात्रा मे मिलती है। ये मछलियॉ समीपवर्ती लोगो के लिए व्यावसायिक दृष्टि से अत्यन्त उपयोगी हैं।

नरही ताल रामगढ के कुछ कि0 मी0 दक्षिण–पूर्व मे राप्ती के कछार मे पानी का पर्याप्त छोटा जमाव है, जो नरही ताल के नाम से जाना जाता है। यह गौरा नदी के द्वारा रामगढ ताल से लगा हुआ है। यह नदी दोनो तालो के अतिरिक्त पानी को राप्ती मे मिलाती है। वास्तव मे यह ताल राप्ती की ही एक धारा है। गर्मी के दिनो मे यह सूख जाता है और चौपाया पशुओ के लिए (गाय, भैंस, वगैरह) चारागाह बन जाता है।

डोमिनगढ और करमैनी ताल ये दोनो झीले गोरखपुर शहर के पश्चिम मे है, जिनका आकार रोहिन नदी के बाढ के फलस्वरूप बना। इनके ठीक पहले रोहिन और राप्ती का सगम स्थल है। दोनो झीलो को मिट्टी का एक ऊँचा ढूहा अलग करता है, जो बाढ के समय पूरी तरह डूब जाता है, और दोनो झीले बिल्कुल एकाकार (मिल जाती है) हो जाती है। वर्षा के दिनो मे जनपद के उत्तरी क्षेत्र से रेलवे बॉध तक लगभग 11 कि0 मी0 तक पानी फैल जाता है। बरसात बन्द होने के बाद अचानक इसमे राप्ती का पानी बहना बन्द हो जाता है। फलत यह झील सिकुडकर बिल्कुल छोटा आकार ग्रहण कर लेता है।

नन्दौर ताल नन्दौर ताल गोरखपुर से 96 कि0 मी0 दक्षिण दिशा मे है। यह पूर्व दिशा मे आजमगढ को सडक से जोडता है। इसका आकार छोटा है, जो वर्षा से प्रभावित हो जाता है। इसका पानी साफ है। यह ताल मछलियो का विपुल स्रोत है। गह ताल भी राप्ती के पुराने प्रवाह का छाडन है।

अमियर ताल नन्दौर ताल के कुछ कि0 मी0 दक्षिण अमियर ताल है, जो आमी नदी के बाढ के फलस्वरूप अस्तित्व मे आयी। यह नदी अपनी पूरी घाटी को जल से भर देती है। यह घाटी उत्तर में बेलीपार और दक्षिण मे बासगॉव के बीच है। ये दोनो स्थान पर्याप्त ऊँचे हैं। इनके बीच का धसा हुआ भाग, बरसात के मौसम मे लम्बाई मे कुछ कि0 मी0 (टुकर बॉध तक) तक झील का रूप ले लेता है। यह ताल अमियर नदी के छाडन से बना हुआ है। यह गर्मी मे सूख जाता है। फलत चारागाह और कृषि–कार्य हेतु इसका उपयोग

होता है।[136] टूकर बॉध के पूरब मे एक अन्य झील अस्तित्व में आती है, जो 'बिजरा–ताल' के नाम से जाना जाता है।

भेनरी ताल यह झील राप्ती और घाघरा नदियो के मध्य, चिल्लूपार परगना मे स्थित है। यह तरैना नदी के अतिरिक्त जल (जलाधिक्य) से अस्तित्व मे आयी है। यह नदी (तरैना) इस झील से होती हुयी गुजरी है। शुष्क मौसम मे यह सिकुडकर बहुत छोटे आकार मे आ जाती है, लेकिन वर्षा ऋतु मे पानी के फैलने से यह काफी बडी हो जाती है। फिर भी यह झील अधिक मात्रा मे बालू इकट्ठा हो जाने के कारण स्थायी रूप से सिकुड गयी है। पूर्वी छोर पर इस झील का अतिरिक्त जल राप्ती मे चला जाता है, लेकिन बाढ के दौरान उफनने लगता है और इसके किनारे का क्षेत्र डूबने लगता है।

चिल्लुआताल चिल्लुआताल, चिल्लुआ नाला के उफान के फलस्वरूप अस्तित्व मे आया। यह परगना हवेली मे है, जो कि गोरखपुर से 11 कि0 मी0 उत्तर मे स्थित है। मानीराम के समीप और रोहिन नदी मे मिलने से पहले यह लम्बी और सॅकरी नदी का रूप धारण कर लेता है। यह ताल, तरैना नदी के छाडन के फलस्वरूप अस्तित्व मे आया। यह रोहिणी की सहायक नदी चिलुआ से बना है[137]।

जनपद के उत्तरी भाग मे अनेक झीले है, यथा– रामभर ताल, कुसेशर ताल, चकहवा ताल एव डुमरैनी ताल इत्यादि। इस प्रकार उपर्युक्त साक्ष्यो के आलोक मे कहा जा सकता है कि गोरखपुर परिक्षेत्र जल–स्रोत की दृष्टि से काफी समृद्ध है, जिसका प्रभाव यहॉ खाद्यान्न के पैदावार पर पडता है। जल की अधिकता के कारण ही यहॉ रामगढ ताल मे जाडे के दिनो मे भी लहलहाती हुयी धान की फसल देखी जा सकती है[138]।

जलवायु

प्रारम्भ से ही मानव–समुदाय उन स्थलो की ओर आकर्षित होता रहा है, जहॉ की जलवायु उसके स्वास्थ्य के लिए उत्तम एव उपयोगी थी। जलवायु के निर्धारण मे अनेक कारक उत्तरदायी हो सकते है। जलवायु का अच्छा होना समुद्र से दूरी तथा उसकी ऊँचाई पर निर्भर करता है। गोरखपुर जनपद समुद्र तट से बहुत दूर है, साथ ही ऊँचाई 316 फीट से भी अधिक है। यहॉ पश्चिमी प्रान्तो की भॉति न तो कडाके की सर्दी पडती है और न ही गर्मी। इसका प्रमुख कारण है जनपद से हिमालय की निकटता और वर्षा का

आधिक्य। इन समन्वित कारणो से उष्णता क्रम हो जाती है। दक्षिण की जलवायु ठीक होने के कारण जनपद का दक्षिणी हिस्सा जनसकुल है[139]।

गोरखपुर जनपद की जलवायु उन जिलो की जलवायु से समानता रखती है, जो इसके पश्चिम एव उत्तर दिशा मे लगे हुए है। जनपद के उत्तरी हिस्से की जलवायु कुछ हद तक उत्तर दिशा मे पहाड की निकटता और तराई के दलदल (नमी) के आधार पर निर्धारित होती है। पूरे वर्ष को चार मौसमो के अन्तर्गत बॉटा जा सकता है। मध्य नवम्बर से फरवरी तक जाडे का मौसम रहता है। मार्च से लेकर मध्य जून तक गर्मी का मौसम रहता है। मध्य जून से सितम्बर के अत तक दक्षिण–पश्चिम वर्षा ऋतु का मौसम रहता है। अक्टूबर से लेकर नवम्बर के मध्य तक परवर्ती बरसात का मौसम रहता है।

वर्षा (Rainfall) :

जनपद मे चार वर्षा मापक यन्त्र के स्टेशन (Four rain-gauge Station) है[140]। रिकार्ड के अनुसार इनमे से तीन लगभग 100 वर्ष पहले से स्थापित है। फरेन्दा स्टेशन पर वर्षा के ऑकडे मात्र 29 वर्ष पहले के है।

पूरे जनपद मे दक्षिणी–पश्चिमी मानसून साधारणतया लगभग मध्य जून मे आ जाता है और सितम्बर के अत तक चला जाता है। जनपद मे पूरे वर्ष का औसत बरसात 1393 1 मि0 मी0 है। जून से लेकर सितम्बर तक की बरसात पूरे वर्ष की बरसात की अपेक्षा 87 % है। इसमे जुलाई माह की बरसात अधिकतम है। सामान्यतया जनपद के दक्षिण–पश्चिम से उत्तर–पूर्व मे अतिरिक्त मानसून रहता है। जनपद मे प्रतिवर्ष जो बरसात होती है, उसमे कोई विशेष मात्रात्मक भेद नही रहता है। 1901 से 1950 तक के 50 वर्षों मे जो बरसात हुयी है, उसमे 1936 मे रिकार्ड (सर्वाधिक) पानी गिरा है। यह साधारण बरसात का 130 % है। 1907 मे निम्नतम बरसात हुयी। यह सामान्य बरसात का 54 प्रतिशत है। इस पच्चास वर्ष मे 14 वर्ष की सालाना (वार्षिक) बरसात, सामान्य से 80 प्रतिशत कम रिकार्ड किया गया। जनपद के महराजगज तहसील (सम्प्रति महराजगज जनपद) मे 28 सितम्बर 1900 को लगातार 24 घण्टे भारी बरसात रिकार्ड किया गया, जो 439 7 मि0 मी0 था। यह बरसात जनपद के सभी जगहो पर हुआ था।

गोरखपुर जनपद मे अतरिक्ष विद्या सम्बन्धी दो (Meteorological Observatories) वेधशालाएँ है। एक वेधशाला गोरखपुर और दूसरी नौतनवॉ मे है। नौतनवॉ की वेधशाला से अतरिक्ष विद्या सम्बन्धी जो जानकारी रिकार्ड की गयी है, वह मात्र कुछ ही साल पहले की है। लेकिन गोरखपुर मे स्थापित वेधशाला, बहुत पहले की अतरिक्ष सम्बन्धी जानकारी उपलब्ध कराता है। गोरखपुर की वेधशाला से जो ऑकडे उपलब्ध

हुए है, वे जनपद की अतरिक्ष सम्बन्धी अन्य जानकारियो मे विशेष महत्त्व के है, अर्थात् ये आदर्श ऑकडे है। तुलना करने पर स्वीकार किया जा सकता है कि, जनपद के उत्तरी क्षेत्र मे हल्की गर्मी (Milder summer) पडती है। नौतनवॉ के रिकार्ड से ऐसा सकेत मिलता है। जनवरी सबसे ठण्डा महीना है। इस महीने मे दिन मे औसत अधिकतम तापमान 22 8 डिग्री सेण्टीग्रेट और निम्नतम 9 3 डिग्री सेन्टीग्रेट रहता हैं। जाडे के दिनो मे ठण्डी तरगे प्राकृतिक रूप से जलवायु सम्बन्धी पश्चिमी उथल–पुथल के रूप मे पूरब दिशा की ओर जाती हैं और तापमान 1 या 2 डिग्री सेन्टीग्रेट से लेकर बर्फ जमने तक नीचे गिर जाता है।

फरवरी के बाद दिन का तापमान बडी तेजी से बढना शुरू हो जाता है। मई के महीने मे सर्वाधिक गर्मी पडती है। इस महीने मे दिन का अधिकतम औसत तापमान 38 4 डिग्री सेन्टीग्रेट और निम्नतम 25 1 डिग्री सेन्टीग्रेट हो जाता है। जून के मध्य मे मानसून के आगमन के साथ ही दिन का तापमान कुछ पसदीदा (अच्छा) होने लगता हे। फिर भी रात गर्म होती है, जो कष्टप्रद रहती है। सितम्बर मे दिन का तापमान बहुत धीमी गति से बढता है। लेकिन रात का तापमान सितम्बर के बाद गिरने लगता है। अक्टूबर के प्रारम्भ से (जब मानूसन चला जाता है) तापमान तेजी से गिरने लगता है।

गोरखपुर मे 26 मई, 1958 को दिन का अधिकतम तापमान 48 3 डिग्री सेन्टीग्रेट और 15 जनवरी 1933 को न्यूनतम तापमान 1 7 डिग्री सेन्टीग्रेट रिकार्ड किया गया।

आर्द्रता (Humidity) वर्षा ऋतु (Monsoon) और परवर्ती वर्षा (Post-monsoon) ऋतु मे आर्द्रता बहुत उच्च स्तर की रहती है, जो 70 और 85 प्रतिशत के बीच रहती है। जाडे मे आर्द्रता कम हो जाती है और गर्मी मे तुलनात्मक रूप से हवा शुष्क हो जाती है।

बदली (Cloudiness) दक्षिण–पश्चिम मानसून (मध्य जून से सितम्बर तक) के मौसम मे प्राय आकाश मे घनी बदली छा जाती है। कभी–कभी पूरा आकाश बदली से ढक जाता है। इस मौसम को छोडकर साल के शेष दिनो मे (जाडे के मौसम को छोडकर) आसमान बिल्कुल साफ रहता है। यदि बदली रहती भी है तो बहुत हल्की। लेकिन जाडे के दिनो मे जलवायु सम्बन्धी पश्चिमी ऊथल–पुथल (Western disturbances) के कारण मौसम कभी–कभी प्रभावित हो जाता है, और आसमान मे घनी बदली छा जाती है और पूरा आसमान बादलो से ढक जाता है। लेकिन यह स्थिति बहुत कम समय तक रहती है। अधिक से अधिक दो या तीन दिन के बाद फिर मौसम सामान्य हो जाता है।

हवाये (Winds) सामान्यतया गर्मी के अतिम चरण और दक्षिण–पश्चिम मानसून के महीने मे, हल्की एव मदगति से हवा चलती है। जाडे के मौसम मे मुख्यतया पश्चिमी पवन चलता है। यह पश्चिन दिशा से पूरब की ओर चलता है। गर्मी के प्रारम्भिक चरण मे हवा पूरब की ओर से चलती है। लेकिन पश्चिमी पवन प्रबल रूप से चलती है। पूर्वी पवन और उत्तरी–पूर्वी पवन, गर्मी के अन्त और बरसात के मौसम मे प्राय चलता है। अक्टूबर मे बहुत ही मन्द गति से हल्की और शात हवा चलती है। मुख्यतया यह पश्चिम, उत्तर–पूर्व या पूर्व दिशा से चलती है।

मौसम सम्बन्धी खास विशेषतायें (Special Weather Phenomena) . गर्मी के अतिम चरण और बरसात के मौसम मे कभी–कभी बिजली की कडक (गर्जना) के साथ तूफान (ऑधी) आता है। जाडे के अन्तिम चरण मे भी जलवायु सम्बन्धी पश्चिमी ऊथल–पुथल के कारण कभी–कभी खराब मौसम हो जाता है। यदा–कदा इस मौसम मे बिजली की कडक (गर्जना) के साथ ओले भी पडते है। जनपद के उत्तरी हिस्से मे सर्दी के मौसम मे कभी–कभी वातावरण कोहरे (तुषार) से आच्छादित हो जाता है।

जीवजन्तु और वनस्पतियाँ

नेपाल से निकटता और जगल के अत्यधिक विस्तार के कारण गोरखुपर जनपद मे बहुत अधिक सख्या मे जगली जानवर पाये जाते हैं[141]। जगल प्राय मानव आवास से लगभग 10 किमी0 की दूरी पर हैं। ऐसी दशा मे लोगो के द्वारा इन जानवरो का बहुत नुकसान होता है। लोग इनका शिकार भी कर लेते है। गोरखपुर जगल मण्डल के उत्तरी जगल के निचलौल रेज मे बाघ (Tiger) पाये जाते है। इस डिवीजन मे बाघो की सख्या बाद मे बढी है। उत्तरी जगल के प्रत्येक रेज मे चीते (Panthers) पाये जाते है। इसके अतिरिक्त चीतल, बार्किंग डियर, (Barking deer) सॉभर, नीलगाय, जगली सूअर, सियार (Jackal) इत्यादि इन जगलो मे पाये जाते है।

इस मण्डल के दक्षिणी जगलों मे, जिनमें तिलकोनिया, बंकी, फरेन्दा और पकडी शामिल हैं, में सियार, (Jackal) जगली सूअर, (Wild Pig) नीलगाय, चीतल, (Cheetal) खरगोश और गिलहरी इत्यादि पाये जाते है, जबकि चीतल और सूअर पकडी रेज मे अपेक्षाकृत अधिक पाये जाते है। तिलकोनिया रेज मे वन्य-प्राणियो की सख्या कम है। डोमा ब्लाक, जो नारायणी नदी के किनारे है, मे वन्य प्राणियो मे मुख्यत बाघ, चीतल, पारा (Para) और नीलगाय पाये जाते है। इस जगल मे पाये जाने वाले अन्य जन्तुओ मे मुख्यत जगली बिल्ली, चीता या तेदुआ, बन्दर और लाल लोमडी है।

पक्षी इस जनपद मे पाये जाने वाले पक्षी निकटवर्ती जनपदो के पक्षियो से समानता रखते है। शिकार करने वाले प्रमुख पक्षियो मे विभिन्न प्रकार के पक्षी है, जिनमे बत्तख, कबूतर तथा तीतर या चकोर (Partridges) मुख्य है। इनके अतिरिक्त जिले मे मुख्यत. अन्य प्रकार के पक्षी भी पाये जाते है। इनमें प्रमुख है– मोर, कोयल, उल्लू, चाहापक्षी (Snipe), तोता, चील, (Kite) कौवा, गिद्ध, बुलबुल, मैना, बाया, गौरैया, तथा बगुला इत्यादि।

रेगने वाले जन्तु (सरीसृप) जनपद मे विभिन्न प्रकार के रेगने वाले जन्तु पाये जाते है। इनमे सर्प (सॉप) का महत्त्वपूर्ण स्थान है। ये सरीसृप विशेष रूप से ग्रामीण क्षेत्रो मे पाये जाते है। कुछ सर्प बहुत ही खतरनाक किस्म के है, जैसे– गेहुँअन, करैत तथा रैट, स्नेक। अधिकतर सर्प कम जहरीले है। कुछ ऐसे भी सर्प है, जो बिल्कुल विषैले नही है। सर्पदश से प्रत्येक वर्ष कुछ लोगो की मृत्यु होती है। जिले के अन्य सरीसृपो मे मगरमच्छ, छिपकली, अजगर एव विभिन्न प्रकार के रेगने वाले (Lizard) जन्तुओ का उल्लेख किया जा सकता है।

मछलियॉ मछलियॉ, मुख्यत जनपद के नदियो, झीलो और तालाबो मे पायी जाती है। साधारणतया जनपद मे निम्न प्रजातियो की मछलियॉ पायी जाती है– रोहू, करौच, बाटा, खुर्सा, भाकुर, नैन, रैया, दरही, पुतिया, परहन, टेगरा, तिगा, चेगना, गिरई, पतरा, मोई, मॉगुर, सिग्ही, चेलवा, बेलगगरा और गोच इत्यादि।

वनस्पतियाँ

साधारणतया जनपद के उत्तरी भाग मे जगल पाया जाता है। यद्यपि पहले यह जगल गोरखपुर जिले के दक्षिण तथा दक्षिण–पूर्वी हिस्से, जो राप्ती के साथ–साथ लगता था, मे पाया जाता था[142]।

वन–विभाग के अन्तर्गत 55,235 हेक्टेयर भूमि मे इमारती लकडी के अतिरिक्त अन्य पेड और झाडियॉ है। इनमे से फरेन्दा तहसील मे 20720 हेक्टेयर, गोरखपुर मे 4340 हेक्टेयर और महराजगज जनपद मे 30175 हेक्टेयर भूमि पर जगल फैले हुए है। 1490 हेक्टेयर भूमि गॉव सभा के अधिकार मे है, जिसमे जगल है। इनमे से 626 हेक्टेयर भूमि पर इमारती लकडी तथा शेष पर अन्य प्रकार के पेड तथा झाडियॉ है। फरेन्दा तहसील मे 206 हेक्टेयर तथा गोरखपुर मे 11 हेक्टेयर भूमि पर इमारती लकडी के जगल है। महराजगज जनपद मे लगभग 409 हेक्टेयर भूमि पर इमारती लकडी के वृक्ष है। अन्य वृक्ष और झाडियों के जगल का फैलाव फरेन्दा तहसील मे 30 हेक्टेयर, बॉसगॉव मे 166 हेक्टेयर और गोरखपुर मे 119 हेक्टेयर है। महराजगज जनपद मे 549 हेक्टेयर भूमि में जगल (अन्य वृक्ष एव झाडियॉ) है।

जनपद के जगल मे मुख्य वृक्ष साल का है। साल एक सदाबहार वृक्ष है। इसका पेड छोटा और झाडीनुमा होता है, जो नालो और छोटी नदियो के किनारो पर सघन रूप से पाया जाता है। महराजगज जनपद के उत्तरी हिस्से मे धोमखण्ड नामक वन पट्टी है। यहॉ सघन जगल है, जिसमे पेडो की ऊँचाई मध्यम दर्जे से लेकर पर्याप्त ऊँचे है। इस क्षेत्र के वनो मे जो वृक्ष पाये जाते है, उनमे मुख्यत. साल, बहेरा, हल्दू, फल्दू, असीध, तेन्दू, महुआ, डोमसल, जामुन, भकमल, शीशम, सेमल, तुन, ढाक, नीम, अमालतास और सागवान का उल्लेख किया जा सकता है।

550 हेक्टेयर जमीन मे पुन वृक्षारोपड का कार्यक्रम रखा गया, जिसमे से 300 हेक्टेयर मे साल और सागौन लगाया गया। शीशम, खैर और सेमल इत्यादि 200 हेक्टेयर मे लगाया गया। इसके अतिरिक्त वन–विभाग ने राष्ट्रीय राजमार्ग के दोनो किनारो पर पौधे लगाये।

कुछ जगहो पर घास की पतली पट्टी भी है। ये स्थल हैं– त्रुआ (तिलकोनिया), उत्तर मे टेमर, दक्षिण मे बकी, चिलवा और भेलमपुर, कालान, फुलवरिया (भारी बसीरे मे) तथा रामगढ।

छोटे जंगल (Groves) 1973 मे जनपद मे 13729 हेक्टेयर भूमि पर छोटे–छोटे जगल थे। इनमे सबसे बडा क्षेत्र गोरखपुर तहसील मे है। यह क्षेत्र 5277 हेक्टेयर मे है। फरेन्दा मे 2673 हेक्टेयर, महराजगज मे 1568 हेक्टेयर तथा बासगॉव मे 4211 हेक्टेयर भूमि मे छोटे जगल हैं। इनमे मुख्यतया आम, ऑवला, नीबू, जामुन इत्यादि के पेड है।

जनसंख्या

1991 की जनगणना के अनुसार जिले की कुल जनसख्या 3066002 है। इसमे 1593355 पुरुष तथा 1472647 महिलाये है[143]। ग्रामीण जनसख्या 2490726 तथा नगरीय 575276 है। अनुसूचित जाति की जनसख्या 675662 है। इस प्रकार 1981 की तुलना मे, वर्ष 91 की जनसख्या मे 23 44 प्रतिशत की वृद्धि हुयी है।

गोरखपुर जिले का क्षेत्रफल प्रदेश के क्षेत्रफल का कुल 1.185 प्रतिशत है, जबकि उत्तरप्रदेश की जनसख्या का लगभग 2 20 प्रतिशत इस जनपद मे निवास करता है। उत्तर प्रदेश मे प्रति वर्ग किलोमीटर 473 व्यक्ति निवास करते है, जबकि इस जिले में प्रति वर्ग किलोमीटर 880 व्यक्ति निवास करते है। राष्ट्रीय स्तर पर प्रति वर्ग किमी0 जनसख्या का घनत्व 274 है।

1991 की जनगणना के अनुसार जनपद की जनसख्या का लिगानुपात प्रति एक हजार पुरुष की तुलना मे 924 महिलाये है। प्रदेश मे यह अनुपात प्रति एक हजार पर 870 है, तथा राष्ट्रीय स्तर पर प्रति एक हजार पर 927 महिलाये है।

1991 की जनगणना के अनुसार अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगो की जनसख्या 67653 है, जो कुल जनसख्या का 22 05 प्रतिशत है।

1991 की जनगणना के अनुसार जिले मे कर्मकारो की सख्या 880620 है। इसमे 34086 कृषक, 248963 किसान मजदूर, पशुपालन तथा वृक्षारोपड जैसे कार्यों मे, 4902 तथा 13549 लोग पारिवारिक धन्धो में लगे है। 272344 लोग अन्य विविध कार्यों से रोजगार प्राप्त कर रहे है। कुल जनसंख्या का 28.72 प्रतिशत कर्मकारो की सख्या है।

जिले की साक्षरता प्रतिशत 43 30 है। जिले मे 60 62 प्रतिशत पुरुष तथा 24 49 प्रतिशत स्त्रियॉ साक्षर है। ग्रामीण अचल मे 37 22 प्रतिशत लोग साक्षर है, जिसमे 56 09 प्रतिशत पुरुष तथा 17 22 प्रतिशत महिलाये है। नगर क्षेत्र मे 68 59 प्रतिशत लोग साक्षर है, जिसमे पुरुष 78 52 तथा 56 74 प्रतिशत महिलाये है।

प्रदेश का साक्षरता प्रतिशत 41 60 है, जिसमे पुरुष 55.72 तथा महिलायें 25 19 प्रतिशत साक्षर है।

सन्दर्भ :

1 वर्मा, राधाकान्त *क्षेत्रीय पुरातत्त्व*, 2000 ई0, पृष्ठ 3

2 *विकास पुस्तिका*, गोरखपुर मण्डल 1996–97 (सूचना एव जनसम्पर्क कार्यालय, गोरखपुर), पृ0 1

3 *उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स*, गोरखपुर 1987, पृष्ठ 1

4 बनर्जी, ए0 के0 *द नाथ योगी सम्प्रदाय एण्ड द गोरखपुर टेम्पुल*, पृष्ठ 12

5 *उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स*, गोरखपुर, 1987, पृष्ठ 1

6 *बाल्मीकि रामायण*, उत्तरकाण्ड, श्लोक–102, पाण्डेय, राजबलि, *गोरखपुर जनपद का इतिहास और उसकी क्षत्रिय जातियॉ*, पृष्ठ 4

7 त्रिपाठी, आर0 एस0, *हिस्ट्री ऑफ ऐशिएण्ट इण्डिया*, पृष्ठ 41

8 *विकास पुस्तिका* (गोरखपुर मण्डल), *पूर्वोद्धृत*, पृ0, 2

9 पार्जिटर, एफ0 ई0, *ऐन्शिएन्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीसन*, पृष्ठ 257,
मैकडोनेल, ए0 ए0 एण्ड कीथ, ए0 बी0 *वैदिक इण्डेक्स आफ नेम एण्ड सबजेक्ट*, पृष्ठ 109

10 मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुसलकर, ए0 डी0 (सम्पादक), *दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि इण्डियन पीपुल*, वाल्यूम I, पृष्ठ 276

11 *वाल्मीकि रामायण*, उत्तरकाण्ड, श्लोक 108

12 *डिस्ट्रिक्ट सेसस हैण्डबुक, यू0 पी0, देवरिया डिस्ट्रिक्ट,* पृष्ठ 1

13 *रघुवश,* 16–25

14 पाठक, विशुद्धानद, *हिस्ट्री आफ कोशल अप टू दि राइज आफ दि मोर्याज,* पृष्ठ 276–278

15 *महाभारत* सभा पर्व, श्लोक 30, पृष्ठ 3

16 पाण्डेय राजबलि, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 56

17 तत्रैव

18 पाण्डेय, आर0 एन0 *प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास,* पृष्ठ 54

19 *रामायण,* 2, 49, 11–12, 50–1, 7,104,15

20 *प्रा0 रा0 इ0,* पृष्ठ 78 (राय चौधरी, हेमचन्द्र, *प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास*)

21 1, 4–1–1 (*शतपथ ब्राह्मण*)

22 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 41

23 पाण्डेय, आर0 एन0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 56

24 तत्रैव

25 *अथर्ववेद,* 10, 2, 32

26 *अष्टाध्यायी,* 4, 1, 171

27 पाठक, विशुद्धानन्द, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 35

28 तत्रैव, पृष्ठ 35–36

29 जैन, जे0 सी0, *लाइफ इन ऐन्श्येन्ट इण्डिया,* पृष्ठ 303

30 पाठक, विशुद्धानन्द, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 34

31 पार्जिटर, एफ0 ई0 *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 257 मैकडोनल, ए0 ए0 एण्ड कीथ, ए0 बी0 *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 109; पाठक, विशुद्धानद, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ–47

32 पाठक विशुद्धानन्द, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 94–96

33 पाठक, विशुद्धानद, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 238, राय चौधरी, एच0 सी0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ–155

34 राय चौधरी, एच0 सी0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 138

35 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 4

36 डेविड्स, आर0 *बुद्धिस्ट इण्डिया,* पृष्ठ 13–14, पाठक विशुद्धानद, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 247

37 डेविड्स, आर0 *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 1

38 पाठक, विशुद्धानन्द, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 269

39 फ्यूहरर, ए0, *मान्यूमेण्टल एण्टीक्विटीज एण्ड इन्सक्रिप्सन्स इन दि नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध,* पृष्ठ 237–38

40 पाठक, विशुद्धानद, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 274–75, पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 73

41 लॉ, बी0 सी0, *हिस्टारिकल ज्यागर्फी आफ इण्डिया,* पृष्ठ 117

42 श्रीवास्तव, के0 एम0 *डिस्कवरी आफ कपिलवस्तु,* पृष्ठ 48

43 लाक0 सीट मैप 11, पृष्ठ 444–5, सी0 एफ0 पी0 एच0 ए0 आई, पृष्ठ 195, एफ0 एन0 4

44 राय चोधरी, एच0सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 143–144, पाठक, विशुद्धानद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 70

45 *दिव्यावदान*, पृष्ठ 528

46 *महाभारत*, 111, 84–31 (तीर्थ यात्रा खण्ड)

47 *बुद्ध चरित*, भाग–1, श्लोक–2

48 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 68

49 पाण्डेय, आर0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 78

50 *महावस्तु* 1, 352–55

51 *कुणाल जातक* (जातक 219 और आगे)

52 पाठक, विशुद्धानद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 268

53 *जातक* 1,337, 1,207

54 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 68

55 पाठक, विशुद्धानद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 367

56 लॉ, बी0 सी0, *प्राचीन भारत का राजनीतिक भूगोल*, पृष्ठ 202

57 पाठक, विशुद्धानद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 266

58 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 70

59 तत्रैव, पृष्ठ 69

60 ला, बी0सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 119

61 पाण्डेय राजबलि द्वारा उद्धृत, पृष्ठ 70

62 *ए0 जी0 आई0*, पृष्ठ 267

63 माथुर, बी0 कुमार, *ऐतिहासिक स्थानावलियॉ*, पृष्ठ 447

64 राय चौधरी, हेमचन्द्र, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 144

65 राकहिल, *'दि लाइफ आफ दि बुद्धा'*, पृष्ठ 12

66 हिन्दुस्तान टाइम्स, 17 अप्रैल 1964 (श्री कृष्णानद त्रिपाठी से ज्ञात)

67 पाठक विशुद्धानद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 267

68 *थेरगाथा*, ह्वीयस 529 और *कुणाल जातक*, फौस वाल्स द्वारा सम्पादित, पृष्ठ 413

69 मजूमदार, आर0 सी0 एण्ड पुसलकर ए0 डी0, *दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि इण्डियन पीपुल*, वाल्यूम II, पृष्ठ 8

70 *उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स, गोरखपुर* (1918), पृष्ठ 8

71 पाठक, विशुद्धानद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 285–86

72 पाण्डेय, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 81

73 पाठक, विशुद्धानद, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 365

74 तत्रैव, पृष्ठ 213

75 पाण्डेय, आर0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 88

76 राय चौधरी, हेमचन्द्र, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 150

77 इति निश्चित्य नन्दस्य भूपते कटक वयम्।
अयोध्यास्थमगच्छाम त्रय सब्रह्मचारिण ।। 1 4 97 ।।
(*कथासरित्सागर*)

78 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 114–115

79 तत्रैव, पृष्ठ 177

80 (ı) एक आलोचक के अनुसार 'वह अतुल धनराशि का स्वामी' था (देखिए, विल्सन *विष्णु पुराण*, वाल्यूम IX, 184 n)
(ıı) *महाभारत* (VII 553 1) के अनुसार महापद्मपुर नामक एक स्थान का पता चलता है।

81 *कलियुग राजवृत्तात*, भाग–3, अध्याय–2

82 *विष्णु पुराण*, 4 24, 20–22

83 *मत्स्य पुराण*, 272 13–17, द्रष्टव्य, वी0 एस0 अग्रवाल, *मत्स्यपुराण ए स्टडी*, पृष्ठ 375

84 कथासरित्सागर, 1 4 135

85 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 117

86 राय चौधरी, हेमचन्द्र, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 197

87 तत्रैव, पृष्ठ 198–99

88 *मुद्राराक्षस*, अक 3, श्लोक 19

89 *कार्पस*, 4/2, पृष्ठ 389

90 नियोगी रोमा *हिस्ट्री ऑफ दि गाहडवाल डाइनेस्टी*, पृष्ठ 69–71

91 पाण्डेय, जगत नारायण, *ससाधन उपयोग और सरक्षण*, पृष्ठ 12–13

92 लम्बाई उत्तर मे महराजगज जनपद के खनुआ नामक स्थान से दक्षिण मे बडहलगज तक, तथा चौडाई पश्चिम मे मगहर से पूरब मे जगदीशपुर तक ली गयी है।

93 भारत के महासर्वेक्षक के आज्ञानुसार, भारत सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित, मिश्र, रामसहाय *मानचित्रावली तथा भौगोलिक वर्णन गोरखपुर जनपद*, 1972, पृष्ठ 18,

94 *अवदानशतक* 163, 260 पाणिनि *अष्टाध्यायी* 5, 3, 119, हार्डी *मैनुअल आफ बुद्धिज्म*, पृष्ठ 15–17

95 वाटर्स, *आन युवान–च्वाग*, 1398–99

96 लॉ, बी0 सी0, *प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल*, पृष्ठ 103, श्रावस्ती की पहचान सहेत–महेत से किया जा चुका है, जो गोण्डा और बहराइच जिलो की सीमा पर अवस्थित है।

97. न सुकरम् उदकस्स पत्राणम गणेतु– *सयुक्त निकाय* 5, 401

98 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 8

99 *विनयपिटक*, 3, 63

100 *उदान कामेन्ट्री*, पृष्ठ 336

101 *धम्मपद कामेन्ट्री* 3, पृष्ठ 10, *अटठारसकोटि–धनम्*

102 पाण्डेय, जगत नारायण, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 17

103 सिह, यू0 एव पाण्डेय जे0 एन0 *चेजेज इन दि कोर्स आफ रिवर राप्ती एण्ड देयर इफेक्ट्स ऑन ऐटिलमेण्ट्स*, यू0 जी0 सी0 प्रोजेक्ट, गोरखपुर (1973)

104 भारत के महासर्वेक्षक के आज्ञानुसार, भारत सर्वेक्षण मानचित्र पर आधारित

105 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 9

106 *जातक*, कावेल, 5, 219 और आगे

107 *थेरगाथा* 5, 529 और 56

108 *जातक* 1, 327, 4, 207

109 लॉ0, बी0 सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 202–03

110 मुखर्जी, पूर्णचन्द्र, *ऐन्टिक्विटीज इन दि तराई आफ नेपाल*, पृष्ठ 4

111 कनिघम, *ऐन्श्येन्ट जिओग्रफी आफ इण्डिया*, पृष्ठ 423

112 लॉ0, बी0 सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 111

113 *कुशीनगर का इतिहास*, पृष्ठ 58

114 उपाध्याय, भरतसिह, *बुद्धकालीन भारतीय भूगोल*, पृष्ठ 133

115 *धम्मपद कामेन्ट्री* 1, 85

116 *डिस्ट्रिक्ट गजेटियर ऑफ गोरखपुर* 1909, पृष्ठ 12

117 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 10

118 मिश्र, राम सहाय, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 20

119 पाण्डेय, जगतनारायण, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 15

120 *ऋग्वेद*, 43018, 10649, 5539

121 आदिकाण्ड, 11वॉ सर्ग, श्लोक 1–2

122 *महाभारत*, 84, 70

123 *अष्टाध्यायी* 6, 4, 174

124 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 7

125 लॉ0, बी0 सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 79

126 *विष्णु स्मृति*, 85, 32

127 *रिलिजन्स ऑफ इण्डिया*, पृष्ठ 34

128 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 10

129 तत्रैव, पृष्ठ 11

130 लॉ0, बी0 सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 54

131 तत्रैव

132 *पद्मपुराण*, अध्याय 21

133 *योगिनी तत्र*, 211, पृष्ठ 112–13

134 लॉ0, बी0 सी0, *पूर्वोदधृत*, पृष्ठ 129

135 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोदधृत*, पृष्ठ 12

136 तत्रैव पृष्ठ 13

137 तत्रैव

138 जनदरी–फरवरी मे सर्वेक्षण के दौरान रामगढ ताल के किनारे की ऊँची भूमि पर मैने स्वय धान की फसल देखा था।

139 पाण्डेय, राजबलि, *पूर्वोदधृत*, पृष्ठ 12

140 उत्तर–प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स गोरखपुर, 1987, पृष्ठ 11

141 तत्रैव, पृष्ठ 10

142 तत्रंव, पृष्ठ 9

143 *विकास पुस्तिका*, 1995–96, पृष्ठ 13

अब तक किये गये कार्यो का विवरण

पुरातत्व, मानव को अपनी अतीत कालीन अस्मिता का बोध कराने का एक सशक्त माध्यम है। ऐतिहासिक ज्ञान के लिए यह सर्वाधिक विश्वसनीय स्रोत है। यह विषय मानव इतिहास को एक नवीन आयाम प्रदान करता है। सभ्यता की प्रगति के इतिहास मे मानव–जाति को अनेक उतार–चढावो के दौर से गुजरना पडा है। इस सुदीर्घ यात्रा मे उसके जीवन मे मानवेतर, मानव–सम और विकसित मानव के विभिन्न पडाव आए है। इस क्रम मे उसने अपनी जीविका के लिए विविध उपकरण प्रकारो से साक्षात्कार किया है। धरती के गर्भ मे लम्बे समय से छिपे हुए उसके ये शरीरेतर अवशेष मानव–जाति के बौद्धिक विकास की कहानी कहते है। ध्यातव्य है कि इन पुरावशेषो का अध्ययन पुरातत्त्व के अन्तर्गत किया जाता है।

भारतीय पुरातत्व के आरिम्भक चरण मे एक अतिरिक्त रोचकता का अभाव लक्षित होता है। लेकिन पुरातत्त्व के क्षेत्र मे अब तक जो प्रयास हुए है, उनसे उक्त अभाव की पूर्ति हुयी है। सन् 1861 मे पुरातत्त्व विभाग की विधिवत् स्थापना के लगभग 77 वर्ष पूर्व ही ऐसे कुछ कार्य आरम्भ हो गये थे जिनसे तत्कालीन अग्रेजी शासन को इस ओर ध्यान देना पडा। सन् 1783 ई0 मे विलियम जोन्स (William Jones) कलकत्ता उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति होकर भारत आये। अपने भारत आगमन के एक वर्ष के अन्दर ही 15 जनवरी 1784 ई0 को रायल एशियाटिक सोसायटी (Royal Asiatic Society) की स्थापना मे उन्होने सक्रिय भूमिका निभायी[1]। इस सस्था के घोषित उद्देश्य थे एशिया महाद्वीप के पुरावशेषो, कलाओ, विज्ञानो तथा साहित्यो के इतिहास के सम्बन्ध मे अनुसधान करना। विलियम जोन्स से पहले भी इस दिशा मे अध्येताओ ने पहल की थी, किन्तु विलियम जोन्स को इस प्रकार के प्रयासो के मध्य तालमेल बैठाने तथा उन्हे एक सुनियोजित एव सुव्यवस्थित दिशा देने का श्रेय दिया जा सकता है। अनुसधित्सुओ की खोजो को प्रकाशित करने के लिए सन् 1788 ई0 मे 'एशियाटिक रिसर्चेज'[2] (Asiatic Researches) नामक पत्रिका के प्रकाशन के साथ–साथ सग्रहीत पुरावशेषो के रखरखाव हेतु 1814 ई0 में एक सग्रहालय की स्थापना की गयी[3]। जोन्स के प्रयासो के परिणामस्वरूप भारत के दूसरे भागो में साहित्यिक सभाओं की स्थापना आरम्भ हो गयी[4]।

यद्यपि एशियाटिक सोसायटी का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक था, तथापि इसके सदस्यो का रुझान प्राचीन साहित्य की ओर विशेष रूप से था। स्वय विलियम जोन्स ने यूनानी साहित्य मे वर्णित सैण्ड्रोकोट्टस (Sandrokottos) का प्राचीन भारतीय साहित्य के चन्द्रगुप्त मौर्य से तथा पालिबोथ्रा (Polybothra) नामक नगर का गगा और सोन के संगम पर स्थित पाटलिपुत्र से तादात्म्य स्थापित किया था। विलियम जोन्स के एक सहयोगी चार्ल्स विलकिन्सन (Charles Wilkinson) के द्वारा गुप्त एव कुटिल लिपियो का सफलतापूर्वक उद्वाचन किया गया और ताजमहल, कुतुबमीनार आदि उत्तरी भारत के मध्यकालीन स्मारकों एव एलोरा (Ellora), एलीफैण्टा (Elephanta) तथा कन्हेरी आदि पश्चिमी भारत मे स्थित प्राचीन काल के स्मारको का अत्यन्त काल्पनिक वर्णन प्रस्तुत किया गया था। जोन्स के बाद एशियाटिक सोसायटी के अध्यक्ष एच0 टी0 कोलब्रुक (H. T Colebrook) हुए। इस सस्था के अगले अध्यक्ष एच0 एच0 विल्सन (H. H. Wilson) का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

ध्यातव्य है कि सन् 1800 ई0 के पूर्व जो पुरातात्त्विक प्रगति हुयी, उसे व्यक्तिगत प्रयासो का परिणाम कहा जा सकता है। शासकीय स्तर पर सन् 1800 ई0 मे फ्रासिस बुकनन को मार्क्विस वेलेजली ने मैसूर के कृषि सम्बन्धी सर्वेक्षण के लिए नियुक्त किया। उनके कार्यों की महत्ता तब परिलक्षित हुयी, जब उन्होने कृषि सम्बन्धी विवरणो के साथ-साथ पुरासम्पदाओं (Antiquities) तथा विभिन्न प्रजातियो के सम्बन्ध मे महत्त्वपूर्ण सूचनाए प्रस्तुत की। डॉ0 बुकनन के पुरातात्त्विक जिज्ञासा से प्रेरित होकर 1807 ई0 में उन्हे फोर्ट विलियम प्रेसीडेसी (Fort William Presidencey) के अधीनस्थ एवं समीपवर्ती क्षेत्रो के भौगोलिक, (Topography) ऐतिहासिक एव पुरावशेषो के सर्वेक्षण का दायित्व सौपा गया[5]। दीनाजपुर, रंगपुर, पूर्णिया, भागलपुर, बिहार, इलाहाबाद, गोरखपुर और आसाम का उन्होने 8 वर्षों मे सर्वेक्षण कार्य पूरा किया। इस सर्वेक्षण का विवरण सैतीस जिल्दों मे प्रस्तुत किया गया, जिनमे से अधिकाश का प्रकाशन नहीं हो सका। इनमें वे चार जिल्दे सम्मिलित नही है, जिनमें लगभग पॉच हजार स्मारको एवं मूर्तियों (Sculptures) के रेखाचित्रों (Drawings) तथा बासठ (62) अभिलेखो की प्रतिकृतियों (Copies) का विवरण प्रस्तुत किया गया था। उनके द्वारा सर्वेक्षित प्रातो की श्रृखला मे गोरखपुर क्षेत्र भी एक था। इस प्रकार गोरखपुर क्षेत्र मे पुरातात्त्विक स्थलो के सर्वप्रथम सर्वेक्षण का श्रेय डॉ0 बुकनन का जाता है[6]।

डॉ0 बुकनन द्वारा प्रस्तुत विवरण पर 1838 ई0 तक किसी का ध्यान नही गया, फलत. ये विवरण अप्रकाशित रहे। 1838 ई0 मे मान्टगोमरी मार्टिन ने डॉ0 बुकनन के अप्रकाशित विवरण के उपलब्ध अंश 'ईस्टर्न इण्डिया' नामक ग्रन्थ के रूप मे प्रकाशित किया। इस पुस्तक के खण्ड दो मे गोरखपुर जनपद से सम्बद्ध विवरण उपलब्ध है, जिसमे यहॉ की भू-सरचना, नदियो की प्रकृति, झीले, खानो इतिहास, जनसंख्या

रीति–रिवाज, प्राकृतिक उत्पादकता, जगली जानवरो, घरेलू जानवर, कला के क्षेत्रो और वाणिज्य आदि विषयो के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम आधिकारिक विवरण प्रस्तुत किया गया[7]। 'इस्टर्न इण्डिया' इस क्षेत्र की जीवन–पद्धति को रामझने के लिए महत्त्वपूर्ण पुस्तक है। इस ग्रन्थ मे गोरखपुर जनपद के सम्बन्ध मे विविध सूचनाओ के साथ प्राचीन अवशेषो एव पुरास्थलो के विवरण भी प्राप्त है। पूर्वी उत्तर–प्रदेश के अनुसधित्सुओ के लिए यह प्रथम मूल स्रोत है।

डॉ0 बुकनन के पश्चात् लगभग दो दशको तक शासकीय स्तर पर कोई पुरातात्त्विक सर्वेक्षण नही हुआ। सन् 1833 ई0 मे कलकत्ता टकसाल के निकष–अधिकारी (Assay-Master) जेम्स प्रिसेप के एशियाटिक सोसायटी का सचिव नियुक्त होने पर पुरातत्त्व सम्बन्धी कार्यो मे एक बार पुन तेजी आयी। जेम्स प्रिसेप वैज्ञानिक दृष्टिकोण के पक्षधर थे। सन् 1834 और 1837 के मध्य प्रिसेप ने प्राचीन भारत की ब्राह्मी एव खरोष्ठी लिपियो का सफलतापूर्वक उद्वाचन (Decipherment) किया। इससे सम्राट प्रियदर्शी (पियदसि) के अनेक अभिलेख पढे जा सके। प्राचीन लिपियो के अतिरिक्त, प्रिसेप मुद्राशास्त्र के ज्ञाता भी थे। जेम्स प्रिसेप से भारतीय पुरातत्त्व को बडी–बडी आशाएँ थी, किन्तु चालीस वर्ष की अल्प–आयु मे ही 20 अप्रैल 1840 ई0 मे उनके आकस्मिक निधन से इस कार्य की अपूर्णीय क्षति हुयी।

जेम्स प्रिसेप के पश्चात् कई उत्साही अध्येता अपने व्यक्तिगत स्तर पर भारत के पुरातात्विक वैभव का मथन करते रहे। ऐसे अध्येताओ मे जेम्स फर्ग्युसन, (James Fergusson) मार्कम किट्टो, (Markham Kittoe) एडवर्ड थॉमस (Edward Thomas) और अलेक्जेण्डर कनिघम, उत्तर भारत मे, वाल्टर इलियट (Walter Eliate) दक्षिण भारत मे, तथा कर्नल मीडोज टेलर, डॉ0 स्टीवेशन एव भाउदाजी (Bhou Daji) आदि पश्चिम भारत मे कार्यरत् थे[8]। सन् 1829 से 1847 ई0 के बीच फर्ग्यूसन ने भारतीय वास्तुकला से सम्बन्धित सुरक्षित स्मारको का विस्तृत सर्वेक्षण किया। उन्होने सर्वेक्षण के अतिरिक्त भारतीय वास्तुकला के स्मारको के वर्गीकरण की जो रूपरेखा प्रस्तुत किया, वह आने वाले कई वर्षो तक मानदण्ड के रूप मे प्रचलित रही।

भारतीय पुरातत्त्व के इतिहास मे सन् 1861 का वर्ष विशेष महत्त्व रखता है, क्योकि इसी वर्ष शासकीय स्तर पर इस देश की पुरानिधियो एवं पुरावशेषो की ओर ध्यान दिया गया था। 1861 ई0 से लेकर आजतक कुछ अपवादो को छोडकर केन्द्रीय शासन, पुरातत्त्व सम्बन्धी गतिविधियो का प्रमुख सूत्रधार रहा है। प्रो0 एच0 डी0 सॉकलिया ने सन् 1861 ई0 से 1960 ई0 के मध्य के भारतीय पुरातत्त्व के इतिहास को तीन कालो मे विभाजित किया है -

प्रथमकाल - 1861 से 1902 ई0 तक

द्वितीय काल . 1902 से 1944 ई0 तक

तृतीयकाल . 1944 से 1960 ई0 तक

इस विभाजन को कुछ सशोधन एवं परिवर्द्धन के साथ अब चार प्रमुख कालों में विभाजित किया गया है।

1 प्रथमकाल 1861 से 1902 ई0 तक,

2 द्वितीयकाल . 1902 से 1944 ई0 तक,

3 तृतीयकाल 1944 से 1961 ई0 तक,

4 चतुर्थकाल . 1961 से अद्यावधि।

प्रथम काल को 'कनिघम युग' भी कहा जाता है, क्योकि इस काल की पुरातात्त्विक गतिविधियो का केन्द्र कनिंघम ही थे। सन् 1861 ई0 मे जनरल कनिंघम ने तत्कालीन गर्वनर–जनरल, लार्ड केनिंग (Lard Canning) के समक्ष भारत की पुरातात्विक धरोहर के सुव्यवस्थित अध्ययन के लिए एक स्मरण–पत्र (Memorandum) दिया, जिसे गवर्नर–जनरल ने अपनी स्वीकृति प्रदान कर दिया। इस सर्वेक्षण के दायित्व को इस प्रकार व्याख्यायित किया गया था : महत्त्वपूर्ण स्मारको की रूपरेखा, नापजोख, रेखाचित्रो तथा छायाचित्रो एव अभिलेखो के माध्यम से यथासम्भव तथ्यपरक वर्णन तैयार करना एवं उनके इतिहास एवं परम्पराओ का निरूपण एव सकलन करना। कनिघम को जब सर्वेयर नियुक्त किया गया, उसी वर्ष चीनी यात्रियो, फाह्यान और ह्वेनसॉग के यात्रा विवरण प्रकाशित हुए थे। अतः कनिघम ने इस यात्रा विवरण को अपने पथ–प्रदर्शक के रूप मे स्वीकार किया। 1861 से लेकर 1865 तक, उन्होने पूर्व मे गया से लेकर पश्चिम मे सिन्धु तट तक और उत्तर में कालसी (देहरादून) से लेकर दक्षिण मे नर्मदा नदी के मध्यवर्ती क्षेत्रो के प्राचीन स्थलो की यात्रा एवं स्मारको का सर्वेक्षण किया। साथ ही ऐतिहासिक महत्त्व के स्थलो की विस्तृत आख्याए (Reports) भी तैयार किया। दुर्भाग्य से कनिंघम को अपना यह महत्त्वपूर्ण कार्य सन् 1866 ई0 मे अचानक बन्द कर देना पडा, क्योंकि गवर्नर–जनरल लार्ड लारेन्स ने इसी वर्ष पुरातत्त्व विभाग को समाप्त कर दिया। उसके बाद शासन की ओर से कुछ वर्षों तक यत्र–तत्र पुरातात्त्विक अध्ययन का कार्य चलता रहा, किन्तु नियमित और व्यवस्थित न होने के कारण उनके परिणाम सतोषजनक नही हुए[1]। जिस वर्ष कनिंघम ने सर्वेक्षण कार्य आरम्भ किया, उसी वर्ष गोरखपुर के कमिश्नर ए0 स्वीट्न ने 1861 मे गोरखपुर का इतिहास लिखा, जिसका अनुवाद 'गोरखपुर दर्पण' के नाम से प्रकाशित हुआ। पुरावशेषो मे रूचि होने के कारण स्वीटन ने अपनी पुस्तक में इनका विवरण दिया है।

11 जनवरी, 1870 ई0 को ई0 सी0 बेली (E.C. Bayley) नामक गृह सचिव (Secretary to the home Department) ने तत्कालीन भारत सरकार से पुरावशेषो एव पुरानिधियो की ओर ध्यान देने का आग्रह किया। फलत इसी वर्ष भारत सरकार ने 'भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण' नामक स्वतत्र विभाग की स्थापना की और जनरल कनिघम को उसका महानिदेशक (Director General) नियुक्त किया। ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण एव अन्य स्मारको की देशव्यापी खोज एव लेखा–जोखा (Record) तैयार करने की महत्त्वाकाक्षी योजना बनायी गयी। फरवरी 1871 मे कनिघम ने अपना कार्य भार सँभाला। सबसे पहले कनिघम ने मुगल साम्राज्य की महत्त्वपूर्ण दो राजधानियो, दिल्ली एव आगरा का सर्वेक्षण किया। सन् 1873 से 1877 ई0 के मध्य का अपना समय कनिघम ने सयुक्त प्रात (वर्तमान उत्तर प्रदेश), बुदेलखण्ड एव मालवा के क्षेत्रो के सर्वेक्षण मे व्यतीत किया। इसी दौरान उन्होने भरहुत के अवशेषो की खोज भी की।

भारतीय पुरातत्व के अध्ययन का व्यवस्थित क्रम अलेक्जेण्डर कनिघम (Alexarder Canningham) से प्रारम्भ होता है। कनिघम ने पुरातत्त्व की प्रासगिकता एव उपादेयता को ऐतिहासिक स्रोत के रूप मे स्वीकार किया। अतएव पुरातत्त्व अब एक स्वतत्र विषय का स्वरूप ग्रहण करने लगा। उनकी यात्रा का मुख्य प्रयोजन–स्मारको, पुरावशेषो, प्राचीन स्थलो का सर्वेक्षण, सिक्को, अभिलेखो, मूर्तियो एव पुरासम्पदाओ को प्रकाश मे लाना था। इस बात का उल्लेख पहले किया जा चुका है कि कनिघम के सर्वेक्षण का आधार चीनी–यात्रियो के विवरण थे। उन्ही के पदचिन्हो को ध्यान मे रखते हुए कनिघम पुरातात्त्विक अवशेषो एव पुरास्थलो की खोज मे निकल पडे[10]। इस प्रकार वे मात्र पुरावशेषो की खोज तक सीमित न होकर उन बौद्ध केन्द्रो की खोज एव पहचान के प्रति भी सजग हुए जिनका सम्बन्ध भगवान बुद्ध एवं महावीर से था। उनके सर्वेक्षण का क्रम मात्र उत्तर एव उत्तर–पूर्व भारत तक ही सीमित रह गया[11]। कनिघम के प्रयास से ही लोगो मे पुरावशेषो के प्रति रूझान पैदा हुयी। इसके अतिरिक्त ये मात्र संग्रहालयो के अलकरण–साधन न रहे, अपितु इन्हे इतिहास के मूल स्रोत के रूप में स्वीकार किया गया।

गोरखपुर परिक्षेत्र में किए गए प्रारम्भिक कार्य

कनिघम ने गोरखपुर जनपद मे प्रवेश के पहले सीमावर्ती स्थलो का सर्वेक्षण किया। गोरखपुर और बस्ती जनपदो मे सर्वप्रथम पुरातात्त्विक खोज कार्य 1874–75 और 1875–76 मे ए0सी0एल0 कार्लायल (A C L Carlleyle) ने जनरल कनिंघम के निर्देशन मे प्रारम्भ किया[12]। इसी क्रम मे उन्होने अचिरावती (आधुनिक राप्ती) के दक्षिण श्रावस्ती (आधुनिक सहेत महेत) के कुछ टीलो का उत्खनन प्रारम्भ किया। श्रावस्ती छठी शताब्दी ई0 पू0 मे कोसल जनपद का एक महत्त्वपूर्ण नगर था। हवेनसॉग ने अचिरावती को

अचिलो कहा है। 1876 ई0 मे कनिघम ने दुबारा उत्खनन कार्य किया, जिसमे उन्हे 16 स्तूपादि के भग्नावशेष मिले। कोसम्ब कुटी के उत्तर मे प्राप्त इमारत के खण्डहर की पहचान उन्होने गन्ध कुटी से की, जिसमे भगवान बुद्ध स्वय रहे थे[13]। कनिंघम ने बुद्ध से सम्बन्धित बौद्ध–स्थलो को खोजने का प्रयत्न किया और इस प्रसग मे बुद्ध के जीवन की घटनाओ से सम्बन्धित अनेक स्थलो की पहचान करने की चेष्टा की। ऐसे स्थलो मे कपिलवस्तु, रामग्राम, पिप्पलिवन तथा कुसीनारा, प्रमुख थे। कनिघम के पूर्व इन स्थलो के सम्बन्ध मे कोई प्रामाणिक विवरण उपलब्ध नही था।

श्रावस्ती के पश्चात् कनिघम ने गोरखपुर जनपद से सम्बद्ध एवं निकटवर्ती पुरास्थलो की ओर ध्यान दिया। इस क्रम मे उन्होने सर्वप्रथम कपिलवस्तु की पहचान भुइलाताल से किया। किन्तु कालातर मे यह प्रमाणित नही हो सका[14]। स्मिथ, कपिलवस्तु को वर्तमान बस्ती जिले के पिपरहवा (पिपरावा) से, पर रिज डेविड्स, मुकर्जी, राहुल साकृत्यायन, भरत सिह उपाध्याय, तथा बी0सी0 लॉ प्रभृति विद्वान इसे पिपरहवा से लगभग 16 किमी, उत्तर–पश्चिम स्थित तिलौराकोट के भग्नावशेषों से समीकृत करते है[15]। मोरियनगर को भी उन्होने अपने कार्य क्षेत्र मे लिया। मोरियनगर की पहचान उन्होने राजधानी नामक टीले से की[16]।

मोरियनगर के पश्चात् कनिघम डोमिनगढ की ओर बढे। यह पुरास्थल गोरखपुर जनपद मे प्रवाहित होने वाली नदियो, राप्ती तथा रोहिन (ऐहिन) के सगम पर स्थित है। ह्वेनसॉग ने इसे 'डाकुओ की बस्ती' कहा है। कनिघम की मान्यता है कि यहॉ के निवासी लुटेरे डोम थे[17]। इनके मुखिया को डोमकटार कहा जाता था। जैसे, भरो के मुखिया को राजभर[18]। मि0 कुक (गोरखपुर जनपद के ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट) ने यूरोप के जिप्सियो की तुलना गोरखपुर के डोमकटारो के साथ की है[19]।

गोरखपुर जनपद के प्रमुख पुरास्थलो के सर्वेक्षण के पश्चात् कनिघम ने बताया कि मीठाबेल, भोपा, निग्रोधवन या मोरियनगर, राजधानी, डीह–घाट, उपधौलिया डीह, सहनकोट, बसवी और गुनेसरा, अवराताल एव पियराताल तथा डोमिनगढ का विशेष पुरातात्त्विक महत्त्व है।

लगभग एक वर्ष के अतराल पर कनिघम ने जनपद के बासगॉव तहसील एव महराजगज जनपद का भी सर्वेक्षण किया, जिससे कुछ नवीन पुरास्थल प्रकाश मे आये[20]। ये पुरास्थल है – गगहा, कोटरवा, असुरन का पोखरा, रामगढ, मोरियगढ, बैतालगढ, मोलाकल और पटवल, सेखुई, भीटा, राजाबारी, कानापार और गानापार, काख–खूरी, सरहरीडीह, चिलुआताल और उसके आसपास नरकटहाडीह, मटिहनियॉ, बेरइया और भटकोपा, भौवापार, मगहर, बरांव और बैरिया आदि।

कनिघम के पश्चात् उनके सहयोगी ए0 सी0 एल0 कार्लायल ने भी इस क्षेत्र में सर्वेक्षण एव उत्खनन का कार्य किया। कुशीनगर मे उन स्तूपो को ढूँढ निकालने का कार्य भी कार्लायल ने किया जिनके उल्लेख ह्वेनसॉग ने अपने यात्रा विवरण मे दिया है। यहा स्थित माथाकुँवर के कोट के गर्भ मे परिनिर्वाण मदिर तथा स्तूप को, 1876–77 मे प्रकाश मे लाने का श्रेय कार्लायल को है[21]।

प्रारम्भ मे कुशीनारा के तादात्म्य मे काफी मतभेद था। किन्तु अब इसका तादात्म्य निर्विवादत देवरिया से लगभग 34 किमी0 उत्तर, कसया और विशेषकर उसके निकट स्थित अनुरूधवा गॉव के टीले से किया जाता है। यहाँ से एक ताम्रपत्र भी मिला है 'जिस पर' *'परिनिर्वाण चैत्य ताम्रपट्ट इति'* लेख उत्कीर्ण है। यहॉ से प्राप्त कुछ मुद्राओ पर *'श्री महापरिनिर्वाण विहारे भिक्षुसघस्य'* लेख भी मिलता है। फाह्यान ने कुशीनगर को वैशाली से 25 योजन दूर बताया है[22]।

प्रारम्भ मे मल्लो की दूसरी राजधानी पावा की पहचान के विषय मे भी मतभेद था। कनिघम ने पडरौना के निकट छावनी नामक टीले के पावा होने की सम्भावना व्यक्त की[23]। कार्लायल ने सठियावडीह जो आधुनिक फाजिलनगर बाजार से लगभग 1 किमी0 दक्षिण–पश्चिम दिशा मे अवस्थित है, पावा होने की सम्भावना व्यक्त की[24]।

गोरखपुर जनपद मुख्यालय से लगभग 40 किमी0 दक्षिण बडहलगज मार्ग पर अवस्थित गगहा नामक पुरास्थल का सर्वेक्षण भी कार्लायल महोदय ने किया। यह स्थल राप्ती नदी से पश्चिम स्थित है। यहॉ से उन्होने दो ताम्रपत्र अभिलेख उपलब्ध किया, जिन्हें सर्वप्रथम गोरखपुर के तत्कालीन कलेक्टर मि0 लक्सडन ने प्राप्त किया था। इसी क्रम मे आगे बढते हुए उन्होने राप्ती के उस पार गगहा से पूरब मीठाबेल नामक स्थल का भी सर्वेक्षण किया, जहॉ उन्हे ईंटों के दो शक्वाकार ढेर मिले। उनका मत है कि ये ढेर स्तूपो के अवशेष हो सकते है[25]। गोरखपुर जनपद मुख्यालय से उत्तर बढ़ते हुए उन्होने कपिलवस्तु का सर्वेक्षण किया। कपिलवस्तु के निकटवर्ती दो पुरास्थलों, सरकुइयॉ और हाथीगढ का भी उन्होने पता लगाया। इन दोनों स्थलो का उल्लेख फाह्यान एवं ह्वेनसॉग ने भी किया है। आज भी ये स्थल इसी नाम से ख्यात है[26]।

गोरखपुर जनपद मुख्यालय से दक्षिण–पूर्व मे अवस्थित मीठाबेल के अतिरिक्त कार्लायल ने खुन्दवली (खुन्दौली), रूद्रपुर, दुबौली, राजधानी, हरपुर आदि अनेक स्थलों का अवलोकन किया। राजधानी के टीलो की पहचान उन्होंने पिप्पलिवन से की है। तरकुलहा देवी स्थान का भी उन्होंने अवलोकन किया। इसी क्रम मे भोपा मे उन्हें तीन शक्वाकार टीलों के अवशेष मिले। कार्लायल का अनुमान है कि ये टीले स्तूप हो सकते है। रूद्रपुर और राजधानी के मध्य अवस्थित, पुरास्थलों के अतिरिक्त उन्होंने निकटवर्ती नदी–नालो एवं जंगलो के

साथ ही इस क्षेत्र की भू–सरचना को भी समझने का प्रयास किया है। उन्होने इस क्षेत्र मे बहने वाली नदियो एव नालो, गोर्रा, फरेन और मझने का वर्णन किया[27]। कार्लायल कोलियो (छठी शताब्दी ई0पू0 के) की राजधानी रामग्राम की पहचान वर्तमान रामपुर (देवरिया जिला) से करते है। बी0सी0 लॉ ने भी इसका समर्थन किया है[28]। कार्लायल के पूर्ववर्ती कनिघम ने कोलियो के रामग्राम को कुशीनगर एव कपिलवस्तु के बीच स्थित मानकर आधुनिक देवकली ग्राम से समीकृत करते है। वस्तुत कार्लायल की सर्वेक्षण यात्रा का उद्देश्य जहॉ एक ओर पुरातात्विक मथन था, वही दूसरी ओर सम्बन्धित क्षेत्र के भौगोलिक परिवेश का परिचय प्राप्त करना भी था।

गोरखपुर के सीमावर्ती जनपदो, गोण्डा एव बहराइच की सीमारेखा पर अवस्थित सहेत–महेत (प्राचीन श्रावस्ती) के पुरावशेषो को उजागर करने का श्रेय जनपद के तत्कालीन कलक्टर डॉ0 हुई को है। 1875–76 ई0 मे उन्होने यहॉ उत्खनन कराया[29]। उत्खननोपरात उन्हे कई जैन तीर्थंकरो की प्रतिमाए मिली।

उत्खनन कार्य 1884–85 मे भी जारी रहा। परिणामस्वरूप उन्हे 34 प्राचीन इमारतो के अवशेष मिले[30]। यहॉ से कई शिलालेख, मिट्टी की मुहरे, मूर्तियॉ तथा ताम्रमुद्राए प्राप्त हुयी है, जिन्हे लखनऊ तथा कलकत्ता के सग्रहालयो मे रक्खा गया है।

1895 ई0 मे जनपद के ग्राम पाली से स्थानीय जमीदार श्री पृथ्वीपाल राय से डॉ0 हुई को एक अभिलेख प्राप्त हुआ[31]। यह अभिलेख लखनऊ सग्रहालय मे सुरक्षित है। डॉ0 हुई को धुरियापार परगना के कहला नामक ग्राम से कलचुरि शासक सोढ़देव का अत्यत महत्त्वपूर्ण अभिलेख, जनवरी 1895 मे मिला[32]। यह अभिलेख भी राज्य सग्रहालय लखनऊ मे सुरक्षित है। क्षेत्र के जमीदारो ने भी डॉ0 हुई से प्रेरणा लिया। फलत उन्होने स्थानीय पुरावशेषो को सुरक्षित रखने का प्रयास किया। कुछ जमीदारो ने तो प्राचीन लिपियो को पढने की भी कोशिश की। सोहगौरा के जमींदार पडित सर्वजीत राम त्रिपाठी ने सोहगौरा का प्रसिद्ध ताम्रलेख प्राप्त किया था, जिसे उन्होने डॉ0 हुई को दिया था[33]। डॉ0 हुई द्वारा इस क्षेत्र से प्राप्त कुछ मूर्तियॉ उनके नाम पर स्थापित, 'हुई पार्क' मे आज भी सुरक्षित हैं, जिनमे पालयुगीन विष्णु की मूर्ति (छायाचित्र स0–1) अवलोकनीय है। गोरखपुर महानगर में अवस्थित विष्णु मदिर में भी पूर्व मध्ययुगीन विष्णु की एक मूर्ति (छायाचित्र स0–2) स्थापित की गयी है।

1898 ई0 में डॉ0 हुई ने जनपद मे सर्वेक्षण कार्य प्रारम्भ किया। डॉ0 हुई के अनुसार बघेल का पूर्वी तप्पा, जिसे बघौर भी कहा जाता है, सम्भवत व्याघ्रपुर रहा हो। परसी बाजार से लगभग 6 कि0मी0 दक्षिण–पूरब, उन्होने एक बिल्कुल सुरक्षित स्तूप का पता लगाया। परसी से 4 मील उत्तर नदी के छोडने मे उन्हे एक स्तम्भ का मुख्य भाग मिला, जिसका व्यास 3 5 से 4 फुट तक था। यह स्तम्भ टेढा था[34]।

डॉ0 हुई के पश्चात् गोरखपुर जनपद मे जिन विद्वानो ने पुरातात्विक सर्वेक्षण किया, उनमे डॉ0 फ्यूहरर का नाम उल्लेखनीय है। फ्यूहरर एव स्मिथ ने 1886–87 मे अयोध्या एव सहेत–महेत का मुख्य रूप से सर्वेक्षण किया। डॉ0 फ्यूहरर ने 1896 ई0 मे लुम्बिनी के अशोक स्तम्भ का पता लगाया और इस स्थान की पहचान बुद्ध के जन्म स्थान से की[35]। उन्होने कपिलवस्तु की पहचान तिलौराकोट (नेपाल मे स्थित) से की है।

डॉ0 फ्यूहरर ने सरयू से लेकर सदानीरा तक व्यापक पैमाने पर (लगभग सम्पूर्ण भूखण्ड की) सर्वेक्षण कर भौगोलिक पृष्ठभूमि के आधार पर अपना विवरण प्रस्तुत किया। इस दौरान उन्हे पदयात्रा भी करनी पडी। अकेले गोरखपुर जनपद मे उन्होने 33 पुरास्थलो को खोज निकाला, जिसे उन्होने *'मान्यूमेण्टल एन्टिक्विटीज एण्ड इन्सक्रिप्सन्स ऑफ नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज एण्ड अवध'* नामक ग्रन्थ मे प्रकाशित किया। कनिघम ने सीमित पैमाने पर सर्वेक्षण किया, फलत. इनकी सूची में कुछ महत्त्वपूर्ण पुरास्थलो का ही उल्लेख हुआ है। डॉ0 फ्यूहरर ने तराई मे स्थित सगरवा ग्राम का भी उत्खनन कराया, किन्तु यह उत्खनन सफल नही हो सका। डॉ0 पी0सी0 मुकर्जी ने उस स्थल को नष्ट करने का श्रेय फ्यूहरर तथा नेपालियो को दिया[36]। डॉ0 फ्यूहरर ने न केवल बुद्ध से सम्बन्धित पुरास्थलो को ही सर्वेक्षण एव उत्खनन के लिए लिया, बल्कि गोरखपुर जनपद के बौद्धेतर पुरास्थलो का भी सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण के दौरान पुरास्थलो का पुरातात्त्विक महत्त्व तो दर्शाया ही गया, साथ ही उनके भौगोलिक स्वरूप एव इतिहास का भी विस्तृत विवरण तैयार किया गया। ह्वीलर के पूर्व जान मार्शल आदि ने जो उत्खनन कार्य करवाये थे, उन उत्खनन कार्यों मे स्तरीकरण के सर्वविदित सिद्धातो को नही अपनाया गया था[37]।

विन्सेन्ट स्मिथ, जो एक आइ0 सी0 एस0 अधिकारी थे, का भारतीय इतिहास लेखन मे महत्त्वपूर्ण योगदान है। उ0प्र0 मे सेवाकार्य करते हुए उन्होने कमिश्नर के प्रतिष्ठित पद को प्राप्त किया। इस अवधि मे उन्होने गोरखपुर जिले के महत्त्वपूर्ण पुरास्थलों की ओर भी ध्यान दिया। पुरातत्त्व एव इतिहास मे रूचि होने के कारण उन्होने जनपद के पुरास्थलो मे सुरक्षित ऐतिहासिक धरोहरो का अध्ययन भी किया। अवकाश ग्रहण करने के पूर्व इनके दो महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो के अतिरिक्त मुद्राशास्त्र, पुरातत्त्व एव इतिहास से सम्बन्धित अनेक शोध–पत्र प्रकाशित हो चुके थे। हिन्दुकाल का क्रमबद्ध इतिहास लिखने का भी इन्होने प्रयास किया, जिसका प्रतिफल, *''अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया''* नामक प्रसिद्ध कृति थी। इसका प्रथम सस्करण 1904 मे प्रकाशित हुआ[38]। अवकाश के 20 वर्षों में दो अन्य महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो *''हिस्ट्री ऑफ फाइन आर्ट इन इण्डिया एण्ड सिलोन (1911)''* तथा *''आक्सफोर्ड हिस्ट्री ऑफ इण्डिया (1910)''* के अतिरिक्त कुछ अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए। स्मिथ के अनुसार ''इतिहास क्रम का ज्ञान आधुनिक समस्याओ के समाधान मे सहायक होता है[39]।''

डब्लू0 सी0 पेप्पे, पिपरहवा स्तूप का पता लगा रहे थे। पेप्पे महोदय के इस अनुसधान में स्मिथ का सहयोग भी सराहनीय हैं। इस क्षेत्र के पुरातत्त्व के विषय मे अपने महत्त्वपूर्ण विचारो को पेप्पे एव स्मिथ ने "दी पिपरहवा स्तूप कन्टेनिग रैलिक्स आफ बुद्ध" शीर्षक लेख मे व्यक्त किया है[40]। कुशीनगर के तादात्म्य के विषय मे कार्लायल के विचारो के प्रति स्मिथ ने शका व्यक्त की है[41]। कसिया के सम्बन्ध मे कनिघम के विचारो को भी स्मिथ ने अस्वीकार किया[42]। उनका कथन था कि कुशीनगर नेपाल मे स्थित था, जहॉ छोटी राप्ती और गडक का सगम था[43]। महापरिनिव्वानसुत्त के अनुसार मल्लो का शालवन तथा कुशीनारा का उपवतन हिरण्यवती नदी के समीप थे[44]। स्मिथ ने इस नदी की पहचान गडक नदी से की थी[45]। बाद के उत्खननो से कनिघम का तादात्मय "कुशीनगर नेपाल मे न होकर कसया के निकट" (सम्प्रति कुशीनगर जनपद, उ0प्र0) निश्चित हुआ।

कपिलवस्तु की पहचान के सम्बन्ध मे उन्होने पी0सी0 मुकर्जी के विचारो से सहमति व्यक्त करते हुए दो कपिलवस्तु होने की घोषणा की। उनकी मान्यता थी कि पिपरहवा, फाह्यान की कपिलवस्तु है, जबकि तिलौराकोट ह्वेनसाग की। इस पहचान से कपिलवस्तु के तादात्म्य की समस्या कुछ और जटिल हो गयी[46]।

स्मिथ ने सरयूपार के बौद्ध केन्द्रो के पहचान की दिशा मे जो प्रयास किये, वे सभी सही सिद्ध नही हुए, तथापि उनके पुरातात्त्विक जिज्ञासा एव अन्वेषी दृष्टि ने सबको आकर्षित किया। रिज डेविड्स के अनुसार तिलौराकोट ही प्राचीन कपिलवस्तु है। पेप्पे द्वारा पिपरहवा अन्वेषण के आधार पर इसे नवीन कपिलवस्तु होने की सम्भावना व्यक्त की गयी। उनका कथन है कि नये कपिलवस्तु का निर्माण, विड्डूभ द्वारा प्राचीन कपिलवस्तु के नष्ट किये जाने के बाद किया गया[47]।

पी0सी0 मुकर्जी, फ्यूहरर के उत्तराधिकारी थे। पूर्वी उत्तर–प्रदेश मे सर्वेक्षण एव पुरावशेषो को प्रकाशित करने मे इनका योगदान उल्लेखनीय है। 23 जनवरी, 1899 मे विन्सेण्ट स्मिथ, कमिश्नर फैजाबाद तथा मि0 सी0 डब्लू0 ओडलिंग सी0 यस0 आई0, सेक्रेटरी एण्ड चीफ इजीनियर टू गवर्नमेण्ट नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज एण्ड अवध, से निर्देश प्राप्त करने के बाद मुकर्जी तौलिहवा पहुँचे[48]। उन्होने अनेक स्थलो यथा, तौलिहवा, चित्रादेयी, सगरवा, विकुली, निगाली, अरौराकोट, गुटिबा, लोरी, कुदान, सिसैनियॉ आदि के सर्वेक्षण के पश्चात् विवरण तैयार किया। अशोक के रूम्मिनदेई स्तम्भलेख को उन्होने प्राप्त किया। कपिलवस्तु का तादात्म्य उन्होने तिलौराकोट से स्थापित किया। मुकर्जी ने पिपरहवा का भी अवलोकन किया। यद्यपि मुकर्जी के पूर्ववर्ती फ्यूहरर ने भी इस क्षेत्र के सम्बन्ध मे अपना विवरण प्रस्तुत किया था, लेकिन यह विवरण यथेष्ट नही था। फ्यूहरर ने अपने विवरण में साहित्यिक विवरणो के अतिरिक्त दिशा और दूरी जैसे महत्त्वपूर्ण बिन्दुओ

की उपेक्षा की थी। वस्तुत यूरोपीय पुरातत्त्ववेत्ताओ का मुख्य उद्देश्य बुद्ध की जन्मस्थली और राजधानी कपिलवस्तु की खोज करना था। ध्यातव्य है कि पी0 सी0 मुकर्जी ने मात्र बुद्ध की जन्मभूमि और उनकी राजधानी कपिलवस्तु को ही अपने सर्वेक्षण का आधार नही बनाया, बल्कि उन्होने बडे पैमाने पर पुरास्थलो का सर्वेक्षण किया। साथ ही सर्वेक्षित पुरास्थलो का छायाचित्र एव रेखाचित्र भी तैयार करवाया। मुकर्जी ने अन्य पुरातत्त्ववेत्ताओ की अपेक्षा कही अधिक वैज्ञानिक एव व्यवस्थित विवरण प्रस्तुत किया, जो उनकी पुस्तक मे उपलब्ध है[49]।

इस अध्याय का वाछित पुरातात्त्विक विवरण डॉ0 बुकानन के विस्तृत विवरण का एक अश मात्र है। भारत मे पुरातत्त्व का अध्ययन डॉ0 बुकानन से प्रारम्भ होता है। उन्होने भारत मे अपने पुरातात्त्विक मथन के द्वारा पुरातत्त्व के अध्येताओ मे एक नयी चेतना का सचार किया। उनके सर्वेक्षण के परिणाम स्वरूप जमीन मे चिरकाल से दबे हुए पुरावशेष, इतिहास के ऊपर समय के धुँधलके को मिटाने मे महत्त्वपूर्ण उपादान सिद्ध हुए है।

भारत के पुरातात्त्विक वैभव के सर्वप्रथम मथन का श्रेय कनिघम एव उनके सहयोगी कार्लायल को है। भारतीय पुरातत्त्व के इतिहास के प्रथम चरण के नायक कनिघम ही थे। कनिघम चीनी यात्रियो के यात्रा–वृत्तात को आधार बनाकर उन पुरास्थलो से बँधे रहे, जिनका सम्बन्ध किसी न किसी रूप मे बुद्ध से था। प्रारम्भ मे (19 वी शती) श्रावस्ती, कुसीनारा, कपिलवस्तु, लुम्बिनी जैसे पुरातात्त्विक महत्त्व के स्थल अज्ञात थे। अतएव कनिघम ने यदि इन पुरास्थलो को केन्द्र बनाकर सर्वेक्षण किया, तो इसे अन्यथा नही लिया जाना चाहिए। उन्होने जिन पुरास्थलो का तादात्म्य स्थापित किया, उनमे से कुछ प्रमाणित नहीं हो सके, ऐसी दशा मे उनकी पहचान निरापद नही मानी जाती, लेकिन ध्यातव्य है कि उस समय उन साक्ष्यों एव सूत्रो का पूर्णतया अभाव था, जिनके सहारे पुरावेत्ता अपनी पुरातात्त्विक यात्रा पूरी करने की कोशिश करता है। बौद्ध–स्थलो के अतिरिक्त जो पुरास्थल अथवा पुरावशेष ज्ञात हुए, उनके विवरण भी कनिघम लिखते रहे। प्राय कनिघम के ऊपर यह आरोप लगाया जाता है कि उनके अध्ययन के केन्द्र बिन्दु, बुद्ध से सम्बन्धित पुरास्थल ही रहे। उन्होने प्रागैतिहासिक एव आद्यऐतिहासिक पुरास्थलों के पुरातात्त्विक अवशेषो एव तत्सम्बन्धी विवरणो को नजरअदाज किया। यहाँ यह उल्लेख किया जा सकता है कि उन्हे हडप्पा से कुछ मुद्राए मिली थी। चूँकि उस समय तक भारतीय इतिहास की प्राचीनता के विषय मे संदेह था। इसी सदेह के पृष्ठाधार मे कनिघम हडप्पा से प्राप्त मुद्राओ के महत्त्व का ऑकलन नही कर सके। कनिघम के कार्यों के समीक्षको का आरोप है कि उन्होने जहाँ एक ओर भौतिक अवशेषों की ओर अपने को केन्द्रित रक्खा, वहीं दूसरी ओर इतिहास की उपेक्षा भी की। उन्होंने उत्खनन की व्यापक एवं वैज्ञानिक विधियो को नही अपनाया। यहाँ

उल्लेखनीय है कि कनिघम का युग भारतीय पुरातत्त्व के इतिहास का पहला चरण था, जिसमे पुरातत्त्व अभी अपने शैशवकाल मे था। साहित्य से ज्ञात महत्त्वपूर्ण प्राचीन स्थलो की पहचान लुप्त हो चुकी थी। अतएव कनिघम के लिए ऐतिहासिक भूगोल का अध्ययन प्राथमिक आवश्यकता थी, जिसमे उनके योगदान को नजरअदाज नही किया जा सकता।

पूर्वी उत्तर–प्रदेश मे कनिघम के कार्य को आगे बढाने वाले लोग भी बौद्ध स्थलो के प्रति आकर्षित होते रहे। पी0सी0 मुकर्जी तक जिन लोगो ने भी इस क्षेत्र के पुरातत्त्व मे रूचि ली, उनके लिए बौद्ध स्थलो का अध्ययन ही मुख्य रहा।

डॉ0 फ्यूहरर को उत्तर–पश्चिम प्रान्त और अवध के शासन ने इस क्षेत्र के स्थलो, विशेष रूप से बौद्ध स्थलो के सर्वेक्षण, अध्ययन, मानचित्र निर्माण और कतिपय स्थलो के उत्खनन का कार्य सौंपा। फ्यूहरर की कार्य–पद्धति अत्यत दोषपूर्ण थी। उनके विवरण और मानचित्रो की अशुद्धता की ओर उसी समय ध्यान गया। विन्सेण्ट स्मिथ ने पिपरहवा स्तूप सम्बन्धी उनके विवरण की अशुद्धता का उल्लेख किया है[50]। उन्होने मानचित्रो के निर्माण और स्थलो के बीच दूरियो का भी वास्तविक वर्णन नही किया है। उनके विवरण भ्रामक तो थे ही, कही–कही असत्य भी थे। उनके द्वारा कराये गये अव्यवस्थित उत्खनन के प्रमाण, सगरवा के निकट उत्खनन के निमित्त एक साथ लगाए गये 200 मजदूर है। कल्पना की जा सकती है कि यह उत्खनन कैसा रहा होगा। उत्खनन मे प्राप्त स्तूपो के नीचे अस्थि-अवशेषो को प्राप्त करने के लिए समूल खोद डाला गया[51]।

फ्यूहरर के बाद पी0सी0 मुकर्जी को यह कार्य सौपा गया। उन्होंने बडी योग्यता और कुशलता से तराई क्षेत्र के पुरावशेषों का अध्ययन किया। मानचित्रों एवं छायाचित्रो की ओर भी उन्होने विशेष ध्यान दिया। आधुनिक पुरातत्त्व की दृष्टि से उनकी कार्य पद्धति को दोषमुक्त नही कहा जा सकता, फिर भी अपने दायित्व का निर्वाह बडी निष्ठा के साथ उन्होने किया। इस बात का प्रमाण उनकी पुस्तक *"ए रिपोर्ट आन ए टूर ऑफ एक्सप्लोरेशन आफ दी ऐन्टिक्विटीज आफ कपिलवस्तु, तराई आफ नेपाल (1899)"* है।

विन्सेण्ट स्मिथ ने भी बौद्ध स्थलो की पहचान सम्बन्धी अनेक समस्याओ पर सुविस्तृत विचार किया। साथ ही पुरातात्विक सर्वेक्षण एव उत्खनन में पर्याप्त रूचि ली। कुसीनारा के पहचान के सम्बन्ध मे उनका मत कनिघम से भिन्न था और वे मानते थे कि यह स्थान नेपाल में होना चाहिए। श्रावस्ती के सम्बन्ध मे भी वे कनिघम से असहमत थे। कपिलवस्तु के सम्बन्ध में उनका एक अलग विचार था। उनके अनुसार, फाह्यान द्वारा वर्णित कपिलवस्तु की पहचान पिपरहवा तथा ह्वेनसांग के कपिलवस्तु की पहचान तिलौराकोट से की

जानी चाहिए। अन्य स्थलो की पहचान के विषय मे भी उन्होने अपने विचार प्रस्तुत किए। फ्यूहरर और पूर्णचन्द्र मुकर्जी के कार्यों के सम्बन्ध मे फैजाबाद के कमिश्नर के रूप ने वे निर्देश देते रहे[52]। पूर्वी उत्तर प्रदेश के अधिकाश स्थलो के विषय मे स्मिथ द्वारा प्रस्तावित मत असिद्ध हो चुके है तथापि स्मिथ का योगदान महत्त्वपूर्ण है।

वायसराय लार्ड कर्जन (Viceroy Lord Curzon) ने 23 सितम्बर, 1899 ई0 के अपने एक कार्यवृत्त विवरण (Minutes) मे भारत मे पुरातत्त्व के क्षेत्र मे व्याप्त अव्यवस्था एव विसगतियो के सम्बन्ध मे अपनी तीव्र प्रतिक्रिया व्यक्त की। 20 दिसम्बर, 1900 ई0 मे उन्होने भारत सचिव के समक्ष कुछ अत्यन्त ठोस एव रचनात्मक सुझाव रखे। इन सुझावो मे पुरातत्त्व के क्षेत्र मे 'तत्कालीन गैरजिम्मेदारी और अव्यवस्था को समाप्त करने' के साथ ही साथ पुरातत्त्व के महानिदेशक के पद को फिर से बहाल (Rivival) करने की पेशकश की गयी थी। 6 फरवरी, 1900 मे एशियाटिक सोसाइटी आफ बगाल के समक्ष आभिलेखिकी के सम्बन्ध मे बोलते हुए लार्ड कर्जन ने पुरातत्त्व सम्बन्धी दायित्व को इस प्रकार स्पष्ट किया– "उत्खनन और खोज करना, वर्गीकरण, प्रतिलिपि और विवरण तैयार करना, प्राचीन लिपियों की अनुकृति बनाना, पढना तथा इन सबकी यादगार बनाये रखने के लिए उन्हे सुरक्षित रखना हमारा दायित्व है।" भारत सचिव ने कर्जन के प्रस्तावो को स्वीकार किया और 22 फरवरी, 1902 ई0 मे जान मार्शल भारत के पुरातत्त्व महानिदेशक बन कर आये।

मार्शल के कार्यभार सभालने के एक वर्ष के अन्दर ही उत्खनन और जीर्णोद्धार या सरक्षण (Conservation) के सम्बन्ध मे स्पष्ट नीति एव निश्चित सिद्धान्तो का निर्धारण किया गया। मार्शल उत्खनन के क्षेत्र मे अवैज्ञानिक (Unscientific) तरीको से कार्य करने के विरूद्ध थे। प्राचीन स्मारको के रख–रखाव एव सरक्षण के निश्चित नियम निर्धारित किये गये। महानिदेशक की वार्षिक आख्याओ (Annual Reports of the Archaeological Survay of India) को वे केवल सरकारी रिकार्डों की सूची मात्र बनाने के पक्षधर नही थे। इन आख्याओ मे वे सामान्य अध्येता के लिए भी कुछ पाठ्य–सामग्री प्रदान करना चाहते थे, ताकि वह भारतीय पुरातत्त्व की नवीन शोधों की प्रगति से अवगत हो सके। इसके अतिरिक्त वास्तुकला के महत्त्वपूर्ण स्मारको के जीर्णोद्धार (Restoration) तथा प्राचीन स्थलो (Sites) के परिरक्षण (Preservation) पर जोर दिया गया। महत्त्वपूर्ण उत्खनन कार्यों के सचित्र प्रकाशन को भी बरीयता प्रदान की गयी। मार्शल की महत्त्वपूर्ण भावी योजनाओ मे पुरातत्त्व संग्रहालयो एव भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के लिए एक सुसज्जित पुस्तकालय की स्थापना का कार्य विशेष उल्लेखनीय था। सन् 1903–04 के भारतीय पुरातत्त्व के बजट मे पुस्तकालय के लिए 4000 रूपयों का प्रावधान किया गया था[53]। 28 अप्रैल, 1906 को भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग को

स्थायी बना दिया गया। 6 सितम्बर, 1928 मे अवकाश लेने के बाद भी वे विशिष्ट कार्य के लिए पुन नियुक्त किये गये और अतत 1934 मे उन्होने भारत से प्रस्थान किया[54]।

मार्शल यूनान के क्लासिकल (Classical) पुरातत्त्व के मर्मज्ञ एव विशेषज्ञ थे। इसलिए प्राचीन भारतीय पुरावशेषो मे यूनानी तत्त्वो की खोज मे उनकी विशेष दिलचस्पी थी। इसके लिए उन्होने वर्तमान पाकिस्तान के रावलपिण्डी जिले मे स्थित तक्षशिला के टीलो (Mounds) का सन् 1913 ई0 से लेकर 1934 ई0 के मध्य विस्तृत पैमाने पर उत्खनन करवाया[55]। इसके अतिरिक्त इस अवधि मे नालदा, साची, सारनाथ और भीटा का भी उत्खनन किया गया। इन उत्खननो से बहुमूल्य पुरासम्पदाए प्रकाश में आयीं। 1915 मे इन कार्यों की सारगर्भित आख्या उनके द्वारा प्रस्तुत की गयी[56]। उन्ही के कार्यकाल में सैधव सभ्यता प्रकाश मे आयी।

जहाँ तक पूर्वी उत्तर प्रदेश का प्रश्न है, मार्शल के कार्यकाल मे 1904 और 1912 के मध्य कुशीनगर का उत्खनन तथा 1907–8 और 1908–9 के मध्य श्रावस्ती का उत्खनन किया गया। इन दोनो सुप्रसिद्ध बौद्ध स्थलो के उत्खनन मे अनेक सरचनाए और पुरावशेष प्राप्त हुए। इस उत्खनन ने कुसीनारा की पहचान के सम्बन्ध मे सारे भ्रम समाप्त कर दिये। इन स्थलो के उत्खनन का कार्य श्री दयाराम साहनी और श्री हीरानद शास्त्री ने सम्पादित किया। उल्लेख्य है कि श्री दयाराम साहनी ने गोरखपुर जनपद के अनेक स्थलो का सर्वेक्षण भी किया था। यथा सोहगौरा, रूद्रपुर इत्यादि[57]। आज जिस रूप में श्रावस्ती और कुशीनगर के अवशेष उपलब्ध है, उसका श्रेय इन्ही के प्रयत्नों को है।

उन्नीसवी शताब्दी के अतिम तथा बीसवी शताब्दी के आरम्भिक वर्षों मे गोरखपुर क्षेत्र के पुरातत्त्व मे रूचि लेने वाले कुछ प्रशासनिक अधिकारी और स्थानीय जमींदार भी थे। गोरखपुर के कलक्टर, डॉ0 हुई के कार्यों का उल्लेख इस अध्याय के आरम्भ मे ही किया जा चुका है। इनके अतिरिक्त गोरखपुर के जिलाधिकारियो, डब्लू0 वोस्ट तथा पी0एम0 खरेघाट के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इनके कार्यो का विस्तृत विवरण तो उपलब्ध नही हो सका है, किंतु इन लोगों के पत्र स्थानीय जमीदार परिवारो मे अवश्य सुरक्षित है, जिनसे इनकी पुरातत्त्व मे रूचि का परिचय मिलता है[58]। इन जमींदारो, में दो लोगो के नाम विशेष रूप से स्मरणीय है वर्डपुर के जमीदार, डब्लू0 सी0 पेप्पे तथा सोहगौरा के प0 सर्वजीत प्रसाद राम त्रिपाठी। पेप्पे ने 1897 मे पिपरहवा के टीले का उत्खनन किया और वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि उसमे बौद्ध स्तूप के अवशेष दबे हुए है। अगले वर्ष उन्होने इस टीले का विस्तृत उत्खन्न किया, जिसमे अनेक वस्तुओ के अतिरिक्त सुप्रसिद्ध पिपरहवा मजूषा प्राप्त हुआ[59]। इसी लेख के आधार पर स्मिथ ने पिपरहवा की पहचान कपिलवस्तु से की थी। ध्यातव्य है कि यह भारत का प्राचीनतम अभिलेख है। पुरातत्त्व में रूचि लेने वाले दूसरे व्यक्ति प0

सर्वजीत राम त्रिपाठी थे, जिन्हे सोहगौरा का सुविख्यात अभिलेख प्राप्त हुआ था। पुरातत्त्व मे उनकी रूचि का ज्ञान उनक परिवार मे सुरक्षित डॉ0 हुइ, डब्लू. वोस्ट, तथा पी0एम0 खरेघाट के अतिरिक्त दयाराम साहनी के पत्रो म हाना है।

भारतीय पुरातत्त्व क इतिहास मे सन् 1944 का विशष महत्त्व ह। इसी वर्ष चार वर्ष क अनुबन्ध पर आर0 ई0 मार्टीमर ह्वीलर (R E Mortimer Wheeler) ने रायबहादुर के0 एन0 दीक्षित के उत्तराधिकारी के रूप मे भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग के महानिदेशक का पद ग्रहण किया। ह्वीलर उत्खनन कार्य मे वैज्ञानिक विधियो के प्रबल पक्षधर थे। प्रो0 हॅसमुख धीरज लाल साकलिया के शब्दो मे "ह्वीलर के व्यक्तित्व मे पुरातत्त्व के सैद्धान्तिक एव व्यवहारिक पक्षो का मणि–काचन योग था। पुरातत्त्व सम्बन्धी कार्यों के अनुभवी, अनुशासनप्रिय एव नियोजन सम्बन्धी नैसर्गिक प्रतिभा के धनी ह्वीलर ने भारत मे पुरातत्त्व सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण परिवर्तनो तथा उसकी सर्वांगीण प्रगति के लिए अनेक कार्य किए"। 1945 ई0 मे केन्द्रीय पुरातत्त्व सलाहकार परिषद् का गठन किया गया, जिसका उददेश्य, पुरातत्त्व सम्बन्धी आवश्कताओ एव भावी योजनाओ के विषय मे केन्द्रीय शासन को परामर्श देना था। ह्वीलर, स्तर–विन्यास एव त्रिविमित्तीय नाप–जोख पद्धति (Three dimensional Recording) के प्रबल हिमायती थे[51]।

19 वी शताब्दी के पश्चात् लगभग छ (6) दशको तक गोरखपुर परिक्षेत्र महत्त्वपूर्ण पुरातात्त्विक अनुसधानो से वचित रहा। स्वतत्रता प्राप्ति के पश्चात् इस परिक्षेत्र मे 1959 मे पहली बार वैज्ञानिक विधि से श्रावस्ती का उत्खनन करने का श्रेय काशीहिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो0 कृष्णकुमार सिन्हा को है[52]। इस उत्खनन के मूलत दो प्रयोजन थे– प्रथम, स्थल की प्राचीनता एव सास्कृतिक क्रम का ज्ञान तथा द्वितीय, सरचनाओ का विवरण अर्थात् विशाल भवनो के निर्माण के इतिहास का ज्ञान।

श्रावस्ती के उत्खनन से तीन कालो के अवशेष प्रकाश मे आये[53]। यहॉ के प्रथम काल से उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्डो के साथ चित्रित धूसर मृद्भाण्डो के टुकडे प्राप्त हुए। यहा से प्राप्त चित्रित धूसर मृद्भाण्डो के टुकडे हस्तिनापुर के समान, स्वतत्र रूप से अलग स्तर मे न प्राप्त होकर उत्तरी कृष्ण मार्जित मृद्भाण्डो के साथ प्राप्त हुए है, जिसका काल 600–300 ई0 पू0 निर्धारित है। इसके अलावा पशुओ की मृण्मूर्तियो के साथ मिट्टी की अनेक तश्तरियॉ भी प्राप्त हुयी है। कॉच की चूडियो के साथ–साथ ताबे एव लोहे की उपस्थिति भी इस काल मे अवलोकनीय है।

द्वितीय काल से अत्यत उपयोगी बर्तनो, यथा–छोटे कटोरे, गर्दन–युक्त जार आदि प्राप्त हुए है, जिन पर अलकरण का अभाव परिलक्षित होता है। इस काल से मानव मृण्मूर्तियॉ भी प्राप्त हुयी हैं। इनमे मिथुन

मूर्तियॉ तथा हाथी की अलकृत मूर्ति महत्त्वपूर्ण है। इन सभी मूर्तियो का विशेष धार्मिक महत्त्व ह। इसके अतिरिक्त अनेक प्रकार के मटके भी प्राप्त हुए है। इस काल के सबसे निचले स्तर से प्रचुर मात्रा मे बाणाग्र भी प्राप्त हुए है। इस काल मे भवनो का निर्माण किया गया। कच्ची मिट्टी की दीवारो के ऊपर, पकी ईटो से दुर्ग बनाये जाने के प्रमाण भी मिले है, जो कई चरणो मे निर्मित किये गये थे। इस काल से तीन प्रकार के सिक्के प्रकाश मे आये, अलिखित ढले हुए सिक्के, आहत सिक्के तथा अयोध्या के शासको के सिक्के।

तृतीय काल मे नगर के वीरान् होने के प्रमाण मिले है। प्राचीन भवनो के ऊपर (यत्र–तत्र) लोगो ने अपने गृह निर्मित कर लिये। इस काल से उपयोगी पात्रो के अवशेष भी मिले है। इसके अतिरिक्त मृण्मूर्तियॉ भी प्रकाश मे आयी है।

1961–62 मे पहली बार गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से राप्ती एव आमी नदियो के सगम पर स्थित सोहगौरा के टीले का उत्खनन किया गया। टीला लगभग 150 एकड क्षेत्र मे फैला हुआ था। यह उत्खनन सरयूपार परिक्षेत्र के पुरातत्त्व के लिए एक अतिरिक्त प्रेरणा साबित हुआ। इतिहासकार प्रो0 गोविन्दचन्द्र पाण्डेय के निर्देशन एव डॉ0 एस0 एन0 चतुर्वेदी तथा डॉ0 दयानाथ त्रिपाठी के सहयोग से प्रथम बार गोरखपुर जनपद मे सोहगौरा नामक पुरास्थल का सर्वेक्षण एव पूर्ण वैज्ञानिक विधि से सीमित पैमाने पर उत्खनन कार्य किया गया[54]। सोहगौरा के टीले के उत्खनन से ताम्रपाषाणिक सस्कृति के अस्तित्व का उदघाटन हुआ। इसकी पहचान सफेद रग से चित्रित काले एव लाल रग के पात्रो से होती है। पुन इस पुरास्थल का सम्पूर्ण सास्कृतिक अनुक्रम, टीले के उत्तरी पश्चिमी भाग मे 5 वर्ग मीटर की खन्ती खोदकर प्राप्त किया गया। यह उत्खनन 1974–75 मे किया गया। सम्पूर्ण सास्कृतिक अनुक्रम को छ कालो मे विभक्त किया गया है,जो नवपाषाण काल से लेकर मध्ययुगीन सॅस्कृतियो का प्रतिनिधित्व करते है। यहॉ जो उत्खनन कार्य हुआ उसका मुख्य उद्देश्य था[55]–

(1) यहॉ के सास्कृतिक अनुक्रम का निर्धारण करना।

(2) विभाग के पोस्टग्रेजुएट विद्यार्थियो को मैदानी पुरातत्व या क्षेत्रीय पुरातत्त्व (Field Archaeology) के क्षेत्र मे निष्पक्ष एव व्यवहारिक प्रशिक्षण देना।

भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग की ओर से डॉ0 डी0 मित्रा के नेतृत्व मे नेपाल तराई के मध्य क्षेत्र के सर्वेक्षण हेतु 1962 मे एक सर्वेक्षक दल आया। इस दल ने कोदान का व्यापक तथा तिलौराकोट का आशिक उत्खनन किया, लेकिन तिलौराकोट से ऐसा कुछ नहीं प्राप्त हुआ जिससे इस स्थल को कपिलवस्तु

स्वीकार किया जा सके। उन्होने यह अनुशसा की कि, पिपरहवा निग्रोधाराम है तथा उसके निकट के टीले कपिलवस्तु सम्भव है, न कि तिलौराकोट[66]।

गोरखपुर जनपद मे ही पूर्व ऐतिहासिक स्थल, बनरसिहा के सर्वेक्षण के दौरान उन्हे ईंटो से निर्मित अवशेष प्राप्त हुए। भूरे एव लाल पात्र, कैरीनेटेड हाडी तथा भोजन पकाने के बर्तनो के अतिरिक्त कुषाण सिक्के (तॉबे के), मिट्टी के मनके एव मृण्मूर्तियॉ प्राप्त हुयी है[67]।

बी0 एच0 यू0 (बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी) के प्रो0 ए0 के0 नारायण ने 1962–63 मे अपने सहयोगी श्री पी0 सी0 पत के साथ गोण्डा, बस्ती एव देवरिया जनपदो के अनेक पुरास्थलो का सर्वेक्षण किया[68]।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एव सस्कृति विभाग के डॉ0 आर0 बी0 सिह ने 1963–64 मे बस्ती, देवरिया एव गोरखपुर की कुछ तहसीलो का सर्वेक्षण किया, जिसमे महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रकाश मे आयी[69]। गोरखपुर जनपद मे उन्होने बासगॉव एव फरेन्दा तहसीलो का सर्वेक्षण किया। बासगॉव तहसील के बहुत से स्थलो से काले–लाल मृद्भाण्डो के टुकडे मिले। इसके अलावा एन0बी0पी0 (उत्तरी काली चित्रित) मृद्भाण्ड से सम्बन्धित बहुत से स्थल प्रकश मे आये। इसी क्रम मे उन्हे परसा दयाराम एव राजधानी नामक पुरास्थलो से चॉदी की आहत मुद्राए प्राप्त हुयी। गोरखपुर जनपद मे खडखोडा एव सहजनवा मे उन्हे स्तूप एव चैत्य के अवशेष मिले। उन्हे मध्ययुगीन ग्लेज्डवेअर के टुकडे (ठीकरे) भी बहुत से पुरास्थलो से मिले। पात्रो के ठीकरो के अतिरिक्त मानव एव पशुओ की बहुत सी (गुप्त–युग एव मध्य–युग की) मृण्मूर्तियॉ भी उपलब्ध हुयी। कुछ पुरास्थलो से कुषाण सिक्के भी पाये गये।

जनवरी 1971 मे श्री के0 एम0 श्रीवास्तव, पुरातत्त्व अधीक्षक पटना सर्किल, ने पिपरहवा का उत्खनन प्रारम्भ किया, जिसका मूल प्रयोजन कपिलवस्तु की पहचान करना था। इस उत्खनन से जहॉ कपिलवस्तु की पहचान सम्भव हुयी, वही अनेक पुरावशेष भी प्रकाश मे आए। यथा अनेक प्राचीन, सरचनाओ के अवशेष, मुद्राछाप, मृण्मूर्तियॉ, सिक्के एव मनके आदि[70]।

गेनवरिया (यह पुरास्थल पिपरहवा के निकट है) के उत्खनन से विभिन्न सास्कृतिक कालो की जानकारी हुयी[71]। यहॉ के प्रथम काल से भूरे रग के पात्र, लालरग के पात्र, लाल लेपित, चाकलेट लेपित तथा काले चमकीले–पात्रो के टुकडे प्राप्त हुए।

यहॉ के द्वितीय काल से मुख्य रूप से उत्तरी कृष्ण मार्जित टुकडो के अतिरिक्त काले चमकीले पात्रो के टुकडे प्राप्त हुए।

तृतीय काल से भी भूरे मृदभाण्डो के साथ ही कृष्ण लेपित पात्रो के टुकडे प्रकाश मे आए। किंतु इनका रग एव आकार पूर्णतया परिवर्तित हो चुका था।

चतुर्थकाल से लाल बर्तनो के अवशेष प्राप्त हुए है। इस काल से लाल, चमकीला गेहुँआ तथा लाल पात्रो के अनेक कटोरे प्राप्त हुए है। चाकलेट लेपित पात्रो के टुकडे भी इस काल मे मिलते है।

पिपरहवा उत्खनन से अनेक स्तूप, विहार तथा अन्य सरचनाए प्रकाश मे आयी। स्तूप के पूर्वी किनारे से वह मुद्राछाप प्राप्त हुआ, जिस पर "*देवपुत्र बिहारे कपिलवस्तु भिक्खु सघस*" "लेख अकित था[72]। सरयूपार क्षेत्र की पुरासम्पदा एव बौद्ध पुरास्थलो की पहचान की दिशा मे उक्त मुद्रा प्राप्ति से अभिनव प्रकाश पडा। कपिलवस्तु की स्थिति निर्धारित हो जाने के बाद अब अन्य महत्त्वपूर्ण स्थलो को प्रकाश मे लाने के लिए भी एक प्रेरणा मिली साथ ही साथ नेपाल की तराई के सास्कृतिक कालक्रम का ज्ञान सम्भव हो गया।

1975–76 मे गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्रो0 शैलनाथ चतुर्वेदी एव सग्रहालयाध्यक्ष (क्यूरेटर) श्री कृष्णानन्द त्रिपाठी ने सरयूपार क्षेत्र, विशेषत बस्ती जनपद के पुरास्थलो यथा, लहुरादेवा, सूसीपार, रामनगर घाट, बडगो तथा गेडार से लघु पाषाण उपकरण उपलब्ध किया। श्री त्रिपाठी के पुरातात्त्विक मथन के फलस्वरूप सरयूपार क्षेत्र के पुरातत्त्व मे एक नवीन अध्याय का श्री गणेश हुआ । 1977–79 मे प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी तथा उनके सहयोगियो सर्वश्री कृष्णानन्द त्रिपाठी, टी0 एन0 दूबे एव चन्द्र मौलि शुक्ल ने सरयूपार क्षेत्र के देवरिया, गोरखपुर एव बस्ती जनपदो मे उत्खनन तथा सर्वेक्षण कार्य किया[73]।

जनपद के बासगॉव तहसील मे भी सर्वेक्षण कार्य किया गया। यहॉ के प्रमुख पुरास्थलो मे कुरी बाजार, कोठा एव नरहन का विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान है। कुरी बाजार से जो अवशेष प्राप्त हुए है,उनमे लाल, काले एव लाल, कृष्ण लेपित, भूरे एव उत्तरी कृष्णमार्जित बर्तनो के पुरावशेष प्राप्त हुए।

बासगाँव तहसील के अन्तर्गत राप्ती के तट पर स्थित कोठा नामक पुरास्थल से ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर, ब्लैक-स्लिप्ड वेअर, रेड–एण्ड ग्रे–वेअर, के पुरावशेष मिले है।

बस्ती जनपद मे बडगो, सूसीपार, गेडार आदि स्थलो से कार्डेड वेअर, ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर, ब्लैक स्लिप्ड–वेअर, ग्रे–वेअर एव रेड–वेअर के टुकडो के साथ लघु पाषाण उपकरण भी मिले, जिनमे कोर, प्लेट, प्लेट के टुकडे, चैल्सिडनी, क्वार्टज, क्रिस्टल और चर्ट उल्लेखनीय हैं[74]।

गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एव सस्कृति विभाग की ओर से 1974–75 के दौरान व्यापक रूप से सर्वेक्षण कार्य किया गया जिसमे लगभग 50 स्थलो को खोजा गया। यह खोज कार्य सरयू नदी के किनारे बासगॉव तहसील मे हुआ[75]। ये स्थल तालिका स0 1 मे वर्णित हैं

तालिका न० 1 बासगॉव तहसील, गोरखपुर जनपद के पुरास्थलों की सूची

जनपद	ग्राम / पुरास्थल	सास्कृतिक अवशेष
गोरखपुर	बघौरा (Baghaura)	मध्यकालीन पात्र
″	बहपुर (Bahpur)	″
″	[illegible] (Bala Banıtı)	″
″	बनवल डीगार (Banaval Deegar)	″
	बडदादई (Baıadadeı)	″
″	बडगां (Baragaon)	″
गोरखपुर	बडानगर (Baıanagaı)	एन0वी0पी0, प्रारम्भिक ऐतिहासिक पात्र
	बडहलगज	मध्यकालीन–पात्र
	बाडपुर	″
″	वेलसरहा	″
″	बीउरी (Beuıı)	″
″	भरौली	″
″	भील्टा	″
	विसुनपुरा	प्रारम्भिक ऐतिहासिक पात्र
″	चरन पुदुका (Chaıan Puduka)	मध्यकालीन पात्र
″	चडहाहर (Chaıhahaı)	″
″	छितौना	ग्रे–वेअर
″	छोटी वीउरी	मध्यकालीन पात्र
″	धुरियापार	प्रारम्भिक ऐतिहासिक, मध्यकालीन पात्र
″	दुघवा (Dughava)	ग्रे वेअर, प्रारम्भिक–ऐतिहासिक, पात्र एव कुषाण सिक्के
″	गोपालपुर	मध्यकालीन पात्र
″	कहला	″
″	खुटहन	″
″	कौरर (Kaorar)	″
″	कुकरहवा	″
″	कुकुरभुक्का (Kukuıbhukka)	″

क्रमश .

जनपद	ग्राम/पुरास्थल	सांस्कृतिक अवशेष
गोरखपुर	कुरहवा ऐम (Kurhawa Am)	मध्यकालीन पात्र
"	मदरिया	मध्यकालीन पात्र व सिक्के
"	मेहरा (Mehara)	मध्यकालीन पात्र
"	मजुआपार (Majuapar)	"
"	मकदवार	ग्रे-वेअर, प्रारम्भिक ऐतिहासिक, पात्र एवं कुषाण सिक्के
"	मकरमपुर (Makrampur)	मध्यकालीन पात्र
"	माया बाब्ला का भीटा (Maya Babla ka Bhita)	"
"	नरहन	ग्रे-वेअर, प्रारम्भिक ऐतिहासिक, पात्र
"	नरहपुर	मध्यकालीन पात्र
	नारायनपुर	मध्यकालीन पात्र
"	नवदा	"
"	नेउरा-देउरा (Neura-Deura)	"
"	ओझौली	"
"	पडौली के समय का थाना (Padaulee-Kesamai-ka-Thana)	"
"	पुष्कर	"
"	राजा साहेब का कोट	"
"	रमामन (Ramaman)	"
"	रानीपुर	"
"	रसुलपुर	"
"	सहदौली	एन0 बी0 पी0
"	सहसौली	प्रारम्भिक ऐतिहासिक पात्र
"	सनीचरा	"
"	शाहपुर	ग्रे वेअर
"	योगीवीर	मध्यकालीन पात्र

क्षेत्र मे किए गए अन्य खोज कार्य

गोरखपुर जनपद मे स्थित नरहन नामक पुरास्थल का उत्खनन 1983 से 1988–89 तक अनवरत चलता रहा। यह उत्खनन कार्य बी0एच0यू0 (बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय) के प्रो0 पुरूषोत्तम सिह के विशेष निर्देशन मे चला। इस उत्खनन मे पॉच सास्कृतिक कालो के अवशेष मिले, जिनका विस्तृत विवरण तृतीय एव चतुर्थ अध्याय मे दिया गया है। उत्खनन के दौरान प्रो0 सिह एव उनके सहयोगियो के मन मे इस सस्कृति के विस्तार को जानने की नैसर्गिक जिज्ञासा उत्पन्न हुयी। फलत कुआनो और घाघरा (सरयू) नदियो के किनारे बसे गॉवो का व्यापक सर्वेक्षण किया गया। सर्वेक्षण के दौरान नरहन सस्कृति से सम्बन्धित लगभग एक दर्जन पुरास्थल प्रकाश मे आए[76], जिनका सक्षिप्त परिचय निम्नलिखित पक्तियो मे दिया जा रहा है

तुलसीडीह/ डीघा :

यह पुरास्थल गोरखपुर जनपद मे सिकरीगज से 12 किमी0 उत्तर–पश्चिम दिशा मे स्थित है। टीला लगभग 10 एकड के क्षेत्र मे विस्तृत है। यहॉ से ब्लैक एण्ड रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर और रेड वेअर के ठीकरे प्राप्त हुए है। टीले से गुप्तकाल तक के आवासीय साक्ष्य उपलब्ध हुए हैं।

अम्मादेई :

यह पुरास्थल बस्ती जनपद मे मुखालिसपुर से 2 किमी0 पूरब स्थित है। टीले का लगभग दो तिहाई भाग कुआना नदी की धारा मे विलीन हो चुका है। यद्यपि यहॉ से ब्लैक स्लिप्ड वेअर और रेड वेअर के ठीकरे प्राप्त हुए है, तथापि यहॉ पर मुख्यत ब्लैक स्लिप्ड वेअर ही मिलते है। ब्लैक स्लिप्ड वेअर मे अच्छे कटोरे और कलश प्राप्त हुए है। इसके अतिरिक्त यहॉ से कुछ नए प्रकार के बर्तनो के अवशेष भी खोजे गए है। यहॉ से लाल रग के नोकदार तसले (Lipped basines) भी प्राप्त हुए है। यह पुरास्थल कुषाणो और गुप्तो के समय बहुत ही समृद्ध था, जिसका प्रमाण इनके भवनो के अवशेष है।

गायघाट :

यह टीला बस्ती जनपद मे स्थित मुखालिसपुर से 3 किमी0 पूरब, लगभग 10 एकड के क्षेत्र मे फैला हुआ है। यहॉ से डिस आन स्टैण्ड/पेडस्टल बाउल ऑफ ब्लैक एण्ड रेड वेअर भी मिले हैं। वर्तमान समय मे यहॉ पर कृषि–कार्य किया जा रहा है तथा ग्रामीणो के द्वारा इसे चौरस या समतल बना दिया गया है।

कोडवट

यह पुरास्थल 5 एकड के क्षेत्र मे विस्तृत है। ऐसा प्रतीत होता है कि यह टीला करूही (Karuhı) के निकटवर्ती टीले का एक भाग है। टीले पर कृषि-कार्य हो रहा है। ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर तथा रेड वेअर के ठीकरे यहॉ से प्राप्त हुए है, जिनकी समानता अहिच्छत्र के ऊपरी सतह से प्राप्त 10 A प्रकार से की जा सकती है।

सिकरीडीह .

यह टीला गोरखपुर-गोला मार्ग पर स्थित सिकरीगज के निकट है, जो लगभग 10 एकड के क्षेत्र मे फैला हुआ है। यहॉ से एक पृथक (एकल) सस्कृति के सकेत मिलते है, जिनकी तुलना नरहन से बहुतायत से मिले, ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के ठीकरो से की जा सकती है। यहॉ के अन्य महत्त्वपूर्ण मृद्भाण्ड उद्योगो मे ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, रेड–स्लिप्ड–वेअर और रेड–वेअर है। ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर (बी0आर0डब्लू) के कुछ चित्रित टुकडे भी यहॉ से प्राप्त हुए है। वर्तगान सगय गे यहॉ पर कृषि–कार्य किया जा रहा है। इस टीले को ग्रामीणो के द्वारा समतल बना दिया गया है।

इमलीडीह :

यह पुरास्थल गोला–गोरखपुर मार्ग पर अवस्थित है। टीला लगभग 15–20 एकड के क्षेत्र मे विस्तृत है। वर्तमान समय मे इमलीडीह गॉव, टीले के पूर्वी छोर पर बसा हुआ है। यहॉ से नरहन और सिकरीडीह के समान पुरावशेष उपलब्ध हुए है। सिकरीडीह के समान यहॉ भी पृथक सस्कृति के साक्ष्य मिलते है। यहॉ का सास्कृतिक जमाव 3 5 मीटर से अधिक नही है। यहा से ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के ठीकरे बहुतायत से मिले है। पात्रो मे पेडस्टल बाउल, तसले और कलश (Vases) प्राप्त हुए है। ये सभी पात्र ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के स्तर से प्राप्त हुए है। ब्लैक-स्लिप्ड पात्रो मे मुख्य रूप से कटोरे तथा थालियॉ मिली है। इसके अतिरिक्त कुछ चित्रित, बी0 एस0 डब्लू0 (ब्लैक स्लिप्ड वेअर) भी खोजे गए है। यह पुरास्थल पूरी तरह सुरक्षित है, तथा बाद मे कोई जमाव नही हुआ है।

धुरियापार :

यह टीला गोरखपुर जनपद मुख्यालय से 46 किमी0 की दूरी पर कुआनो नदी के बाम–तट अवस्थित है। इस पुरास्थल के इतिहास के विषय मे कहा जाता है कि कौशिक राजा धूरचन्द्र ने यहॉ पहली बार

आक्रमण किया था। परम्परा के अनुसार धूरचन्द्र ने अपने नाम के आधार पर इस स्थान का नामकरण धुरियापार किया और एक लम्बे समय तक यहॉ कौशिको की स्थिति बहुत मजबूत रही।

यह टीला लगभग 20 एकड के क्षेत्र मे विस्तृत है। अनुमान है कि यहॉ का सास्कृतिक जमाव लगभग 6 मीटर है। मृण्पात्रो मे मुख्यतया ब्लैक-एण्ड रेड वेअर, ब्लैक-स्लिप्ड वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर और लाल रग के पात्र है। ब्लैक-स्लिप्ड पात्रो मे कटोरे और थालियॉ तथा ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर मे कलश मुख्य पात्र है। मध्यकाल तक के आवासीय साक्ष्य इस टीले से प्राप्त हुए है। टीले के कटान से कुषाण और गुप्त कालो की पकी हुयी ईटो से बनी इमारतो के साक्ष्य दिखायी पडते है।

मदरहा :

यह टीला घाघरा नदी के बाम तट पर नरहन से लगभग 3 किमी0 की दूरी पर स्थित है। टीला लगभग 3 एकड के क्षेत्र मे फैला हुआ है। यहाँ से प्राप्त मृद्भाण्डो मे मुख्यतया ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड–स्लिप्ड वेअर और रेड–वेअर प्राप्त हुए है। ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर मे मुख्यत डिसेज आन स्टेण्ड/पेडस्टल बाउल मिलते है। ब्लैक–स्लिप्ड वेअर मे कटोरे भी विशेष रूप से मिलते है। पेन्टेड ब्लैक-स्लिप्ड के कुछ ठीकरे सतह से प्राप्त किये गए है।

उपर्युक्त पुरास्थलो के अतिरिक्त कुछ अन्य पुरास्थल भी हाल के वर्षो मे प्रकाश मे आए है।

खैराडीह :

यह पुरास्थल घाघरा नदी के ***वाम*** तट पर अवस्थित है, जहॉ पर आजमगढ,देवरिया और बलिया की सीमाए मिलती है। यह पुरास्थल तकनीकी दृष्टि से बलिया जनपद मे अवस्थित है। इस पुरास्थल का उत्खनन बी0एच0यू0 के प्रो0 के0 के0 सिन्हा एव वीरेन्द्र प्रताप सिह ने 1980–86 के दौरान किया है, लेकिन ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर का जमाव अतिम दो सत्रो के उत्खनन के दौरान ही मिला है। इस पुरास्थल के सभी लक्षण 'नरहन सस्कृति' से मिलते है। मुख्य अतर मात्र इतना है कि श्वेत–चित्रित– ब्लैक–स्लिप्ड वेअर अधिक भारी है। श्वेत चित्रित काले एव लाल रग के पात्रो का प्रतिशत अपेक्षाकृत कम है। खैराहीह के प्रथम काल से तीन रेडियो कार्बन (C^{14}) तिथियॉ मिली है, जो निम्नलिखित है 1120±90 बी0सी0, 1030±160 बी0सी0 और 940±150 बी0सी0। ये तिथियॉ नरहन की रेडियो कार्बन तिथियो (C^{14}) 1100±110 बी0सी0 तथा 1160±110 बी0सी0 से समानता रखती हैं। ये तिथियॉ सोहगौरा की दो तिथियो · 1335±113बी0सी0 और 1235±134 बी0सी0, से भी समानता रखती है।

ब्रह्मपुर :

आजमगढ जनपद मे सरयू नदी के पुराने तट पर (नदी के प्रारम्भिक मार्ग) दो प्राचीन बस्तियॉ है। इनमे सबसे महत्त्वपूर्ण स्थल, ब्रह्मपुर है, जो लटघट (Latghat) से 2 किमी0 पश्चिम, राष्ट्रीय उच्च मार्ग पर स्थित है। यह मार्ग आजमगढ और गोरखपुर को जोडता है। इस पुरास्थल से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर, कार्डेड वेअर, ग्रे–वेअर और रेड–वेअर उपलब्ध हुए है[77]।

लालमनपुर :

यह पुरास्थल विकास खण्ड कोयलसा (Koylsa) मे बुरहानपुर (Burhanpur) जो कि आजमगढ–फैजाबाद उच्चमार्ग पर स्थित है, से 4 किमी0 उत्तर–पश्चिम दिशा मे अवस्थित है। यहॉ पर प्राचीन सरयू नदी जनपद आजमगढ और फैजाबाद के बीच एक विभाजक रेखा बनाती है। प्राचीन बस्ती (आबादी) प्राचीन नदी के दोनो किनारो पर फैली हुयी है। प्राचीन नदी का तल कई एकड मे विस्तृत है। इस पुरास्थल का कुछ भाग फैजाबाद जनपद मे पडता है। वर्तमान समय मे ग्रामीणो के द्वारा इस पुरास्थल पर ईंट क निमित्त भट्ठा बनाया गया है। फलत यह पुरास्थल नष्ट हो चुका है। यहॉ से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक स्लिप्ड वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर, ग्रे–वेअर और रेड–वेअर उपलब्ध हुए है।[78]

कुछ पुरास्थलो से बाद के काल के अवशेष, यथा एन0 बी0 पी0 वेअर तथा इससे जुडे हुए अन्य मृण्पात्रो के साथ ही कुषाण एव गुप्त काल की पकी हुयी ईटो की इमारतो के अवशेष तथा अन्य पुरावशेष, इस बात के सकेत देते है कि कुछ स्थलो पर 'नरहन सस्कृति' के बासिन्दो के बाद भी अनवरत रूप से बस्तियॉ बसती रही। इन स्थलो को बस्ती और गोरखपुर जनपदो मे कुआनो और घाघरा नदियो के किनारे खोज लिया गया है, जिनका उल्लेख निम्न तालिका मे किया जा रहा है

तालिका संख्या 2

गोरखपुर जनपद में खोजे गये पुरास्थलों की सूची

(प्राग्धारा अक 1, 1990–91, पृ0 77–79 के आधार पर)

न0	स्थल का नाम	तहसील	मृण्पात्र उद्योग	अन्य अवशेष	प्रा0 सदर्भ	विशेष (Remarks)
1	अरांन जगदीश	बॉसगॉव	ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा रेड वेअर	मिट्टी का लोढा (Pestle)		टीले पर निर्माणाधीन ट्यूब–बेल का साक्ष्य
2	असोंजी	गोला	ब्लेक–एण्ड–रेड वेअर, तथा रेड–वेअर			
3	बनकटी		बी0एस0डब्लू0 और अहिच्छत्र का 10 A	गुप्त और कुषाण काल की ईंटे		
4	भरवलिया (Bharwalia)	खजनी	ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, और रेड वेअर			
5	धुरियापार	गोला	ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर रेड–स्लिप्ड वेअर और एन0 बी0 पी0 वेअर।	मिट्टी की बनी मानव और पशु मूर्तियॉ, मिट्टी का बना लोढा, मिट्टी के मनके एव बिम, (Pottery disc) पत्थर की बनी विष्णु की मूर्ति, कुषाण, गुप्त और मध्यकाल के भवनो के अवशेष।		टीले पर एक बडे शहर के ध्वसावशेष (साक्ष्य) मिले है।
6	दुघरा (Dughara)	गोला	ग्रे वेअर, एन0बी0पी0 वेअर, रेड वेअर।			अन्य पुरास्थलो की अपेक्षा पूरी तरह सुरक्षित पुरास्थल है।
7	दुरूई (Durui)	गोला	बी0 एस0 डब्लू, जी0 डब्लू0, आर0 डब्लू0, और रस्सी की छाप वाले मृण्पात्र	टेराकोटा या मिट्टी की बनी मानव मूर्तियॉ, मिट्टी का बना हुआ लोढा, तॉबे के सिक्के, कुषाण और गुप्तकाल के भवन।		टीला लगभग 20 एकड मे फैला हुआ है यह टीला पूरी तरह क्षत–विक्षत हो चुका है, क्योकि यहॉ से नदी का पानी नहर मे बहाया गया है। यह टीला कुआनो और घाघरा नदियों के सगम पर स्थित है। टीले पर एक बडे कस्बे के अवशेष या साक्ष्य विद्यमान है।
8	गोपालपुर	गोला	ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा रेड वेअर	टूटी हुयी मानव मृण्मूर्ति।		
9	इमलीडीह	खजनी	प्लेन–एण्ड–पेन्टेड ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, प्लेन–एण्ड–पेन्टेड ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर,	मिट्टी के बने गेद और परित्यक्त पत्थर के फलक।		एक ताम्रपाषाणिक पुरास्थल। बर्तनो का आकार नरहन के बर्तनो के समान है। एक आधुनिक मस्जिद टीले पर है।

क्रमश –

			रेड–स्लिप्ड वेअर, एन0बी0पी0 वेअर, तथा एसोसिएटेड रेड–वेअर			टीले का आधा भाग मानव निवास मे प्रयुक्त।
10	जद्दूपट्टी	खजनी	ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ग्रे वेअर, ब्लेक–स्लिप्ड–वेअर, रेड वेअर।			वर्तमान समय मे यह गॉव (जददूपट्टी) टीले पर स्थित है।
11	झोन (Jhaun)		रेड वेअर।			प्रारम्भिक ऐतिहासिक स्थल
12	काटवा	खजनी	ब्लक–स्लिप्ड–वेअर, रेड–वेअर			
13	मदरहा	गोला	ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड वेअर।			
14	मलोली (Malauli)		रेड वेअर			प्रारम्भिक ऐतिहासिक स्थल
15	मकन्दवार	गोला	रेड वेअर	छोटे आकार की मिट्टी की मानव मूर्ति।		एक बडा शहर होने की सम्भावना। टीले पर मकदवार गॉव बसा हुआ है।
16	राजधानी		ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड वेअर।	पाषाण निर्मित शिव की मूर्ति।		कृषि–कार्य के कारण टीला बुरी तरह क्षत–विक्षत हो चुका है।
17	रसूलपुर		रेड वेअर	पशु–मृण्मूर्ति		प्रारम्भिक ऐतिहासिक स्थल।
18	सिकरीडीह	खजनी	प्लेन एण्ड पेन्टेड ब्लेक एण्ड रेड वेअर प्लेन एण्ड पेन्टेड ब्लेक स्लिप्ड वेअर।			टीले का आधा हिस्सा लोगो के आवास के रूप मे है।
19	तुलसीडीह / डीहवा	खजनी	ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–सिल्पड वेअर, एन0बी0पी0, रेड वेअर, रस्सी के छाप वाले मृण्पात्र तथा अच्छित्र 10A।	लोढा तथा मिट्टी के बर्तन के बिम या चक्रिका (Pottery disc)		ताम्रपाषाणिक स्थल
20	त्रिलोकपुर	बासगॉव	रेड वेअर।			
21	उरूवा–डिहवा	गोला	ग्रे वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड वेअर	मिट्टी का बना लोढा।		टीले पर वर्तमान समय मे उरूवा नामक गॉव बसा हुआ है।
22	उसरैन	खजनी	ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड वेअर, मुस्लिम काल के ग्लैज्ड वेअर।	मिट्टी के मनके		

1990–91–92 मे उत्तर प्रदेश राज्य पुरातत्त्व सगठन की ओर से इस परिक्षेत्र मे किए गये सर्वेक्षण मे लगभग 400 पुरास्थल (ग्राम) प्रकाश मे आए[79]। यह सर्वेक्षण दो चरणो मे सम्पादित हुआ। प्रथम चरण का सर्वेक्षण 1990–91 मे दिसम्बर से लेकर मार्च तक चला। पुन दूसरे चरण का सर्वेक्षण कार्य अगस्त 1992 से

सितम्बर 1992 तक चला। फलत जो पुरास्थल प्रकाशित हुए उनमे गोरखपुर जनपद मे अवस्थित स्थलो की चर्चा यहाँ निम्न पक्तियो मे की जा रही है–

अतर सिगारी

अतर सिगारी गाव, खजनी के निकट स्थित है। स्थानीय रूप से यह 'उजार मौजा' के नाम से जाना जाता है। प्रारम्भ मे जब यह गाँव अस्तित्व मे आया, उसी समय से 'राजस्व विभाग के रिकार्ड मे इस नाम का प्रयोग किया जा रहा है। सर्वेक्षण के दौरान यहाँ से रेड–वेअर और कृष्ण मार्जित बर्तनो के ठीकरे प्राप्त हुए है।

ग्रामवासियो ने यह जानकारी दी कि बरसाती कटाव के कारण प्राचीन काल मे निर्मित ईटे भी इस पुरास्थल से मिलती है। वर्तमान समय मे यहाँ पर तेजी से कृषि–कार्य हो रहा है।

बाँसपार (Lat 26°, 43', 48" N, Long 83° 14' 49" E)

यह पुरास्थल गोरखपुर मुख्यालय से 15 कि0मी0 की दूरी पर खजनी मार्ग पर जैतपुर (Jaitpur) के निकट स्थित है। यहाँ की मुख्य मृद्भाण्ड परम्परा रेड वेअर की है, जिसमे कटोरे, थालियाँ और पानी के पात्र, (Watei vessels) मुख्य पात्र-प्रकार हैं। यहाँ से एक ऐसे बर्तन का ठीकरा भी प्राप्त हुआ है, जिस पर पकाने के बाद खरोच के निशान (Sciatches) है। यह विशेष महत्त्वपूर्ण पात्र है।

भीटी-खोरिया (Lat 26°, 41', 13" N, Long 83° 16' 36" E)

यह गाँव गोरखपुर जनपद मे सहजनवा से लगभग 1 किमी0 की दूरी पर स्थित है। इस गाँव का यह टीला अपने समीपवर्ती तल से लगभग 1 मीटर ऊँचा है। यह पुरास्थल लगभग 10 एकड के क्षेत्र मे फैला हुआ है, जो गोरखपुर से लखनऊ की ओर जाने वाले राष्ट्रीय उच्चमार्ग के द्वारा दो भागो मे विभक्त हो चुका है। यहाँ से निम्नलिखित मृद्भाण्ड परम्पराए उपलब्ध हुयी है .

(1) ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर

(2) ब्लैक-स्लिप्ड वेअर

(3) रेड वेअर

यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर का एक ऐसा ठीकरा प्राप्त हुआ है, जिसके आकार (Shape) की पहचान नही हो सकी है। ठीक इसी तरह ब्लैक–स्लिप्ड वेअर का भी एक ठीकरा उपलब्ध हुआ, जिसकी पहचान नही हो सकी है।

रेड वेअर इस पुरास्थल का मुख्य मृद्भाण्ड है। इसमे से कुछ चट्टाई की छाप से युक्त (Mat-impressed) और कुछ साधारण कोटि के है। चट्टाई की छाप वाले अथवा कार्डेड वेअर के जो टुकडे (ठीकरे) मिले है, उन्हे देखने से ज्ञात होता है कि इन बर्तनो को आग मे अच्छी तरह पकाया गया होगा। इन बर्तनो का आन्तरिक अनुभाग (Core) मोटा है, लेकिन आकार (Shape) स्पष्ट नही है।

सामान्य रेड वेअर (Simple red ware) के मृद्भाण्डो मे कुछ चौडे बारी वाले कटोरे, कुछ आकारहीन बारी वाले कटोरे, (Bowl with featurless rim) छोटे गर्दन वाले पानी के बर्तन, हैन्डिलयुक्त बर्तन, चाकलेटी लेपयुक्त कोखदार हांडी, (Carinated Handi), चौडे कालर वाले पात्र (Wide Collared Pot) जो कि गर्दनरहित (Without neck) है, तथा कुछ मुडे हुए कालर से युक्त बारी वाले (Folded collared rim) पात्र है।

इस स्थल पर एन० बी० पी० सस्कृति से लेकर प्रारम्भिक मध्यकाल तक के आवासीय साक्ष्य मिले है।

चॉदबारी (Lat 26°, 48', 19" N, Long 83° 7' 33" E)

यह गॉव मगहर से लगभग 13 किमी० की दूरी पर अवस्थित है, जहॉ सेमारी (Semari) गॉव से होते हुए पहुँचा जा सकता है। यह पुरास्थल लगभग 6 एकड के क्षेत्र मे फैला हुआ है तथा समीपवर्ती तल से लगभग 4 मीटर ऊँचा है।

यहॉ की मुख्य मृद्भाण्ड परम्परा रेड वेअर की है, जिसमे पानी के बर्तन, कोखदार हाडी तथा सग्रह–पात्र (Storage Pot) उपलब्ध हुए है। इसके अतिरिक्त मिट्टी की एक छोटी मूर्ति भी, जो आग में पकी हुयी है, इस पुरास्थल से मिली है। इन पुरावशेषो से प्रतीत होता है कि यहॉ गुप्तोत्तर काल से लेकर प्रारम्भिक मध्यकाल तक के लोग निवास किये थे।

हरदीडीह (Lat 27°, 35', 21" N, Long 82° 39' 71") :

यह गॉव गोरखपुर जनपद के तहसील खजनी से 3 कि० मी० की दूरी पर स्थित है। यह प्राचीन टीला 20 एकड के क्षेत्र मे फैला हुआ है, जो बिल्कुल समतल है। यहॉ तेजी से कृषि–कार्य हो रहा है। टीले के एक भाग पर ग्रामीणो के द्वारा आवास बना लिया गया है। इसके अतिरिक्त टीले पर ईंट–भट्ठा भी स्थापित किया गया है, जिससे टीला बुरी तरह क्षत–विक्षत हो चुका है।

यहॉ से निम्नलिखित मृद्भाण्ड परम्पराओ के साक्ष्य मिले है –

1 ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर (प्लेन)

2 ग्रे–वेअर

3 रेड–वेअर

ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर और ग्रे–वेअर के बर्तनो का आकार स्पष्ट नही है। रेड वेअर मे कटोरे, टोटीदार पात्र और पानी के पात्र (Water Vessels) मिले है।रेड वेअर के कुछ ऐसे ठीकरे भी मिले है, जिनसे प्रतीत होता है कि बर्तन की बारी (Rim) पर काली रेखाये खीची गयी है।

कुसाहा ताल (Lat 26°, 33', 37" N, Long 83° 24' 42" E)

कुसाहा ताल जयन्तीपुर (Jayantipur) गॉव के समीप स्थित है, जो कि कौडीराम और बॉसगॉव के मध्य आमी नदी के दाहिने किनारे पर अवस्थित है। सम्भव है कि यहॉ का टीला बाढ के कारण नष्ट हो गया हो।

इस पुरास्थल की मुख्य की मृद्भाण्ड परम्पराये निम्नवत् है–

1 ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर (प्लेन)

2 ग्रे–वेअर

3 रेड–वेअर

ठीकरे अत्यन्त छोटे आकार मे मिले है, जिससे बर्तनो के आकार स्पष्ट नही हो सके है।

लालपुर (Lat 27°, 3', 5" N, Long 82° 46' 4" E)

यह गॉव, बासगॉव मार्ग पर कौडीराम से लगभग 3–4 किमी0 की दूरी पर स्थित है। यह टीला अपने समीपवर्ती तल से लगभग 10 मी0 ऊँचा है, जो कि आमी नदी के दाहिने किनारे के समीप है। टीला 5 एकड के क्षेत्र मे फैला हुआ है, जो बिल्कुल समतल है। वर्तमान समय मे इस टीले पर कृषि–कार्य हो रहा है।

रेड–वेअर इस स्थल की मुख्य मृद्भाण्ड परम्परा है, जिसमे मुख्यत टोटीदार (Spouted) बर्तन और पानी के पात्र (Water Vessels) है।

नगवा (Lat 26°, 43', 4" N, Long 83° 16' 12" E)

यह गॉव गोरखपुर खजनी मार्ग पर जैतपुर क्रासिग से 2 कि0मी0 की दूरी पर स्थित है। यह टीला आमी नदी के बहुत ही समीप है। खेती के उद्‌देश्य से इसे बहुत समतल बना दिया गया है। यहॉ की मुख्य मृद्‌भाण्ड परम्परा निम्नवत्‌ है

1 हस्त निर्मित (हैण्ड–मेड) कार्ड इम्प्रेस्ड पोट्री

2 ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर

3 ब्लैक–स्लिप्ड वेअर

4 एन0 बी0 पी0 वेअर

5 ग्रे वेअर

6 रेड वेअर

हस्तनिर्मित मृद्‌भाण्डो एव रस्सी की छाप वाले पात्रो के ठीकरो मे कुछ ऐसे भी है, जिनका आकार स्पष्ट नही है। ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के पात्र सादे है। ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के मुख्य पात्रो मे कटोरे और मोटे गढन के पानी के पात्र (Water Vessels with thick fabric) है। ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर मे मुख्यतया उन्नतोदर थालियॉ (Convex sides dishes), खडे पार्श्व वाले कटोरे (Straight sided bowls), और सपाट आधार वाली थालियॉ (Flat based dises) मिली है। यहॉ से एन0 बी0 पी0 पात्रो के जो ठीकरे उपलब्ध हुए है, वे इतने छोटे है कि बर्तन का आकार स्पष्ट नही हो सका है।

रेड वेअर के पात्रो मे मुख्य रूप से उन्नतोदर थालियॉ, कटोरे, गर्दन रहित और गर्दन युक्त पानी के पात्र, नोकदार कटोरे (Lipped bowls), सपाट बारी वाले कटोरे (Bowls with flatted rim), तसले, छोटे आकार के बर्तन (Miniature pots), दावातनुमा ढक्कन, बटननुमा नाब वाले ढक्कन (Button Knobbed lids), अन्दर की ओर घूमी हुयी बारी वाले कटोरे (bowls with inturned rim) या कोखदार कटोरे (Carinated bowls) और छिद्र युक्त ढक्कन (Perforated lids) उपलब्ध हुए है।

इसके अतिरिक्त यहॉ से घडे के आकार का मिट्‌टी का एक मनका तथा पत्थर के कुछ उपकरण भी प्राप्त हुए है। पत्थर के उपकरणो मे से एक त्रिभुजाकार है, जिसके किनारे बुरी तरह घिसे हुए है, जबकि दूसरा प्रस्तर उपकरण टूटा हुआ है।

परमेशरपुर (Lat 26°, 42', 54" N, Long 83° 7' E)

यह गॉव मगहर से लगभग 7 कि0मी0 दक्षिण अवस्थित है। यह पुरास्थल लगभग 4 एकड के क्षेत्र मे विस्तृत है, और समीपवर्ती तल से 2 मीटर ऊँचा है। वर्तमान समय मे यहॉ पर कृषि–कार्य हो रहा है।

यहॉ मुख्य रूप से रेड वेअर के पात्र मिले है, जिनमे हस्तनिर्मित तथा चाक पर बने हुए, दोनो प्रकार के पात्र हैं। मुख्य पात्रो मे पानी के बर्तन, कोखदार हाडी और कालरयुक्त बारी वाले बर्तन है। ये पुरावशेष गुप्तोत्तर युग से लेकर प्रारम्भिक मध्यकाल तक के है।

सरया तिवारी (Lat 26°, 38', 17" N, Long 83° 16' 34" E)

यह गॉव गोरखपुर-बासगॉव सडक पर स्थित खजनी से लगभग 3 किमी0 की दूरी पर एक प्राचीन टीले के ऊपर अवस्थित है। टीले का अधिकाश भाग आवासीय उद्देश्य (Residential purpose) से और शेष भाग कृषि–कार्य के लिए पूरी तरह समतल किया जा चुका है।

यहॉ से मटमेले श्वेत रग की बलुए प्रस्तर (Buff sand stone) की एक मूर्ति मिली है, जिसके आधार के रूप मे कमल हे। मूर्ति ललितासन मुद्रा मे बैठी हुयी है। यह मूर्ति किसी देवता की प्रतीत होती है। इसे उदरबध, बाजूबध तथा कगन (Kankana) जैसे आभूषणो से अलकृत किया गया है। इसके कधे से 'यज्ञोपवीत' (Yajnopavita) लटक रहा है। मूर्ति अभय मुद्रा मे है, जिसके दाहिने हाथ मे अक्षमाला तथा बॉये हाथ मे कमण्डल धारण कराया गया है। देवता की दाढी काफी लम्बी दर्शायी गयी है। निचला हिस्सा भेडे जैसा प्रतीत होता है। सम्भवत भेडे का अकन देवता के वाहन के रूप मे किया गया है। उपर्युक्त विवरणो के आधार पर मूर्ति की पहचान अग्नि–देवता के रूप मे की गयी है। मूर्ति के दोनो ओर अग्नि की लपटे दर्शायी गयी है। बनावट की विशेषताओ के आधार पर मूर्ति परवर्ती मध्ययुगीन प्रतीत होती है। इस प्रतिमा के पास किसी सरचना का एक त्रिशाखायुक्त टुकडा रखा हुआ मिला है।

गॉव के सीमाप्रात पर सहस्रो लिगो का एक ढेर, एक अठ पहलू भवन के ढॉचे के ऊपर मिला है। लिग की ऊँचाई 76 सेमी0 और अर्द्ध व्यास (Radius) 33 सेमी0 है।

सठियांव - फाजिलनगर का उत्खनन

सठियाव–फाजिलनगर का टीला देवरिया जिले (सम्प्रति कुशीनगर जनपद) मे अवस्थित है[80]। यह टीला कुशीनगर से 18 किमी0 दक्षिण–पूर्व मे स्थित है। यह पुरास्थल लम्बे समय से पुराविदों और

इतिहासकारो (Historians) का ध्यान आकर्षित करता रहा है। कार्लायल ने पहली बार यह स्पष्ट किया कि फाजिलनगर–सठियाव का जुडवा पुरास्थल प्राचीन पावा का प्रतिनिधित्व करता है। प्राचीन समय मे पावा मल्लो की राजधानी थी। यह स्वीकार किया जाता है कि इसी पवित्र–स्थल पर चौबीसवे जैन तीर्थंकर महावीर ने निर्वाण प्राप्त किया था। इस मत के प्रतिपादक विद्वानो मे डॉ0 राजबली पाण्डेय, बी0सी0 लॉ, भिक्षुधर्मरक्षित, योगेन्द्र मिश्र, विजयेन्द्र सूरी तथा अन्य बहुत से इतिहासकारो का नाम लिया जा सकता है। साहित्यिक साक्ष्यो से भी इसका कुछ समर्थन होता है।

कुशीनगर से इस पुरास्थल (पावा) की दिशा और दूरी की जानकारी पालि साहित्य से भी मिलती है। इस जानकारी के पृष्ठाधार मे उक्त पुरास्थल के प्राचीन पावा होने की प्रबल सम्भावना की ओर सकेत मिलता है। तथापि फाजिलनगर–सठियॉव को अतिम रूप से पावा केवल उसी परिस्थिति मे स्वीकार किया जा सकता है, जब, पुरातात्त्विक खोजो के द्वारा असदिग्ध रूप से इसकी (फाजिलनगर–पावा) पहचान पावा के साथ कर लिया जायेगा। इस बात को ध्यान मे रखते हुए गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एव सस्कृति विभाग ने सठियॉव–फाजिलनगर मे उत्खनन करने का निर्णय लिया।

कार्लायल का विचार था कि सठियॉव का टीला प्राचीन पावा नामक कस्बे का प्रतिनिधित्व करता है, जो कि वर्तमान फाजिलनगर से 1/2 किमी0 उत्तर–पूर्व दिशा मे स्थित था। यहॉ पर मल्लो ने एक स्तूप बनाया था, जिसमे बुद्ध के अस्थि-अवशेष रखे गये थे। सठियॉव के निचले टीले पर, उत्तर–पूर्व मे एक छोटे से भाग को छोडकर शेष भाग का उपयोग आवास के रूप मे हो रहा है। गॉव के अन्दर और उसके इर्द–गिर्द, मडल–कूपो (Ring-wells) के साक्ष्य मिले है। पूरे गॉव मे पकी हुयी ईटो के दीवाल (burnt brick walls) के साक्ष्य मिले है। गॉव के चारो ओर की निचली (Low lying Land) भूमि से सकेत मिलता है कि यह पुरास्थल चारो ओर से सरोवरो से घिरा हुआ था। वर्तमान समय मे दो बडे बारहमासे सरोवर (Perennial Ponds) अस्तित्व मे है। इनमे पहला, गाव के उत्तर–पश्चिम और दूसरा दक्षिण दिशा मे है।

फाजिलनगर का टीला सम्भवत सठियॉव नामक पुरास्थल का एक भाग था। समीपवर्ती तल से टीले की ऊँचाई 9 मीटर से भी अधिक है। वास्तव मे यहॉं पर दो टीले मिलते है, जो आपस मे मिले हुए (Fused togethers) है। प्रथम टीले (निचले टीले) की ऊँचाई कुछ कम है, जबकि दूसरा टीला अधिक ऊँचा है। निचला टीला, उत्तर–पूर्व दिशा मे है, जिस पर एक मजार बना हुआ है। दूसरा टीला पश्चिम दिशा मे है। यह टीला उत्तर से दक्षिण 80 मीटर और पूरब से पश्चिम 120 मीटर है। टीला मानव और प्रकृति के द्वारा बहुत हद तक प्रभावित (Heavily suffered) हुआ है। सम्पूर्ण टीला घने जगल और घासो से आच्छादित हो चुका है।

सठियॉव

खोज–कार्य के इस क्रम मे सठिगॉव की निचली भूमि का जमाव कम्पोस्ट खाद के निमित्त बनाये गए गर्त के रूप मे मिला, जिसे तराशने (Scrapping) के लिए लिया गया। तराशने (Scrapping) के दौरान् यहॉं से पकी हुयी ईंटो से निर्मित दीवाल के अवशेष प्रकाश मे आए, जो कुछ समय पहले ही तोड डाले गए थे।

ईटो की माप 42 सेमी0 X 26 सेमी0 X 6 सेमी0 के अनुपात मे मिला। यहा के सयुक्त पर्तो से रेड वेअर, कुछ ब्लैक-स्लिप्ड के ठीकरे तथा एन0बी0पी0 वेअर उपलब्ध हुए है। यहॉ से उपलब्ध अन्य पुरावशेषो मे मृण्मूर्तियॉ, मनके, एक टूटा हुआ मुहुर-छाप (Sealing) तथा लोहे के कुछ उपकरण है। सतह से उपलब्ध पुरावशेषो मे ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के ठीकरे तथा स्क्रेपिग से उपलब्ध अन्य अवशेष स्पष्ट रूप से सकेत देते है कि यह पुरास्थल मौर्यों के पहले से आबाद रहा है, जो मध्यकाल तक के इतिहास की निरन्तरता (Continuous history up to the medieval period) का सूचक है।

फाजिलनगर :

ऊपरी टीले (Higher Mound) के शीर्ष भाग (Flat Top) एव उत्तरी ढलान पर उत्खनन कार्य किया गया। उत्खनन के दौरान सतह की मिट्‌टी को हटाते ही बहुतायत से प्राचीन भवनो के अवशेष प्राप्त हुए। इन अवशेषो के आकार को देखकर ऐसा लगा कि ये सयुक्त आवास के उद्‌देश्य से बनाए गये थे। चूँकि यह उत्खनन बहुत सीमित दायरे मे हुआ था, अतएव इन भवनो की निश्चित योजना के बारे मे पता नही लगाया जा सका। इन भवनो को दो युगो से सम्बद्ध किया जा सकता है। प्रथम युग का सम्बन्ध गुप्तकाल से और दूसरे युग का मध्यकाल से स्थापित किया जा सकता है।

गुप्तकाल :

यहॉ से एक विशाल समकोण चतुर्भुज के आकार का सीढीयुक्त प्लेटफार्म मिला है, जिसकी माप 14 40 x 17 80 है। यह प्लेटफार्म इस क्षेत्र से उपलब्ध अन्य भवनो की तुलना मे कुछ विशिष्टता लिए हुए है। इसको पूरी तरह उद्‌घाटित नही किया गया था। इसका निर्माण तत्कालीन टीले के ऊपर किया गया था।

प्लेटफार्म के चारो ओर एक रक्षात्मक दीवाल (Retaining Wall) बना हुआ है, जो बिल्कुल अखण्ड है। प्लेटफार्म के पूर्वी दीवाल की चौडाई 1 मीटर है, जो अच्छी तरह सुरक्षित है। दीवार के ऊपरी

भाग पर बढते हुए क्रम मे सजावट किया गया है। यह सजावट ईंटो की तीन श्रेणियो मे है। सबसे ऊपरी भाग की सजावट मे किनारे घुमावदार हैं। मुख्य दीवार पर सजावट की इस श्रेणी मे क्रमश गिरावट आती गयी है। यह दीवार गहराई मे मात्र 70 सेमी0 था।

पुरावशेष :

यहॉ से प्राय ईट–निर्मित इमारतो के पुरावशेष बहुतायत से मिले है। इसके अतिरिक्त कुछ पुरावशेष शीर्ष तल (Top levels) से भी प्राप्त किए गए है। इनमें से सभी गुप्त काल से सम्बन्धित है। इनमे मृण्मूर्तियॉ, मुहरे (Seals) एव मुहरछाप (Sealings) विशेष महत्त्वपूर्ण पुरावशेष है।

यहॉ से मृण्मूर्तियॉ भी बहुतायत से मिली है, जिनमे पुरूष, स्त्री और पशुओ की मृण्मूर्तियॉ विशेष महत्त्वपूर्ण है। मानव मृण्मूर्तियॉ मध्यम दर्जे की है, तथा सॉचे मे बनायी गयी (Mould made) है। मूर्तियॉ आकार मे छोटी और अच्छी मिट्टी की बनी हुयी है। इन मूर्तियो मे गुप्तकाल की आदर्शभूत विशेषताऍ अतर्निहित है।

पशु मूर्तियो मे घोडे की कुछ ऐसी मूर्तियॉ मिली है, जिन पर घुडसवार बैठा हुआ है। यद्यपि ये पूरी तरह से ध्वस्त है, फिर भी इससे इनकी उत्कृष्टता का आभास होता है। घोडे की मूर्ति सम्मवतः दौडते हुए रूप मे बनी है।

गुप्तकाल से सम्बन्धित मिट्टी की बनी सात मुहरे एव मुहर छाप उपलब्ध हुए हैं। इन मुहरो पर पॉचवी शताब्दी ई0 की गुप्तकालीन ब्राह्मी लिपि मे लेख उत्कीर्ण है। इनमे से एक मुद्रा–छाप पर गुप्त कालीन ब्राहमी लिपि मे *'श्रेष्ठिग्राम अग्रहारस्य'* लेख उत्कीर्ण है। उक्त लेख से आबादी की प्रकृति एव स्थल के नाम की जानकारी मिलती है, जो विशेष महत्त्वपूर्ण है। इस पर फनयुक्त सर्प (Hooded Snake) की आकृति भी उत्कीर्ण है। मुद्रा–छाप के पृष्ठ भाग पर मुद्रा को निर्गत करने वाले व्यक्ति का नाम भी उत्कीर्ण है, लेकिन उचित रख रखाव के अभाव मे यह अच्छी अवस्था मे नहीं है। अतएव नाम स्पष्ट रूप से पढा नही जा सका है। पौराणिक कथाओ मे इस पुरास्थल के विषय मे दो महत्त्वपूर्ण जानकारियॉ मिलती है। प्रथम, सठियॉव ग्राम 5 वी शताब्दी ई0 मे श्रेष्ठि–ग्राम के नाम से जाना जाता था और द्वितीय, यह स्थल 'अग्रहार' नामक भूमि का प्रतिनिधित्व करता है। 'अग्रहार', भूमि का एक ऐसा प्रकार था, जो कि विद्वान ब्राह्मणों को दान के रूप मे दिया जाता था। इस भूमि से जो आय होती थी उस पर इन विद्वान ब्राह्मणो का अधिकार था। इसी आय से उनकी जीविका चलती थी। यह आबादी शिक्षा–केन्द्र के रूप मे एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती थी। मुद्रा–छाप से स्पष्ट रूप से यह द्योतित होता है कि गुप्त काल मे यह स्थल शिक्षा का केन्द्र था

जो कि 'श्रेष्ठिग्राम' के नाम से जाना जाता था। यही श्रेष्ठि–ग्राम आधुनिक सठियॉव है, जिसके निकट आधुनिक फाजिलनगर अवस्थित है।

मध्ययुग :

ऐसा प्रतीत होता है कि मध्य–युग मे यह स्थल मुस्लिम आक्रमणकारी सेना के अधीन था। इस सेना का उद्‌देश्य आक्रमण करना था। इस क्षेत्र का उच्चतम स्थल आक्रमणकारियो के लिए विशेष सुविधाजनक रहा होगा। टीले के शीर्ष भाग पर मुस्लिम सेना के द्वारा एक छोटे किले का निर्माण किया गया था।

नए बासिन्दो (Occupants) के आने के बाद यहा के प्रारम्भिक भवनो को तोड दिया गया। उन्होने किले के निर्माण मे ईंट के टुकडो का उपयोग किया था। ईंट के टुकडे यहॉ बहुतायत से उपलब्ध थे। मध्य काल की इमारते पूरी तरह नष्ट हो चुकी है। केवल भिन्न–भिन्न जगहो पर कुछ दीवालों के अवशेष बचे हुए है। पूर्ववर्ती सरचना के ऊपर निर्मित गोलाकार मीनारो के प्रमाण उत्तर–पूर्व और दक्षिण–पश्चिम कोनो से प्राप्त हुए है, जो इस बात का सकेत करते है कि इस तरह की मीनारे चारो किनारो पर निर्मित थी।

इस स्थल पर ऊपरी सतह से बहुतायत से उपलब्ध लोहे की बनी हुयी तीर की नोको (Arrow heads) के साक्ष्य, यहॉ पर मध्यकालीन बस्ती की प्रकृति और उद्‌देश्य की कहानी कहते है।

संदर्भ :

1 पाण्डेय, जे0एन0, 1983, *पुरातत्त्व विमर्श*, पृष्ठ 36

2 तत्रैव

3 तत्रैव

4 *ऐन्श्येन्ट इण्डिया* न0 9, पृष्ठ 5, साहित्यिक सभा बाम्बे (1804) तथा मद्रास (1818) की स्थापना हुयी

5 पाण्डेय, जे0एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 37

6 1801 की सन्धि मे गोरखपुर जिला कम्पनी को नवाब से प्राप्त हुआ था।

7 *इस्टर्न इण्डिया*, पृष्ठ 291–581

8 पाण्डेय, जे0एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 38

9 ऐन्श्येन्ट इण्डिया न0 9, पृष्ठ 11–12

10 घोष, ए0, *इ0 आर्क0*, पृष्ठ 3

11 तत्रैव

12 कार्लायल, ए0 सी0 एल0, *आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, ए रिपोर्ट*, वाल्यूम 8

13 *ए0 एस0 आई0 आर0*, वाल्यूम 11, पृष्ठ 78 तथा आगे, वाल्यूम 1, पृष्ठ 330 तथा आगे।

14 *ऐन्श्येन्ट इण्डिया* न0 9, पृष्ठ 6

15 पाण्डेय, आर0 एन0 *प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास*, पृष्ठ 76

16 *ए0 एस0 आई0 आर0*, वाल्यूम 18, पृष्ठ 31–33

17 तत्रैव वाल्यूम 22, पृष्ठ 41

18 तत्रैव, वाल्यूम 18, पृष्ठ 41

19 तत्रैव, वाल्यूम 18, पृष्ठ 41

20 दन्त नलिनाक्ष एव बाजपेयी, कृष्णदत्त *उत्तर प्रदेश मे बौद्ध धर्म का विकास*, पृष्ठ 262

21 तत्रैव, पृष्ठ – 364

22 गाइल्स *ट्रवेल्स ऑफ फाहियान*, पृष्ठ 40–41

23 *ए0 एस0 आई0 आर0*, 1962–63, वाल्यूम 1, पृष्ठ 74–75, कनिघम *ऐन्श्येन्ट जागर्फी ऑफ इण्डिया*, पृष्ठ 366–77, (पुनर्मुद्रित, वाराणसी, 1963)

24 कार्लायल ए0 सी0 एल0 *रिपोर्ट आफ टूर्स इन गोरखपुर सारन एण्ड गाजीपुर*, वाल्यूम 22, पृष्ठ 29–31 (1877–80), (वाराणसी- 1966)

25 *ए0एस0आई0आर0*, वाल्यूम 22, पृष्ठ 50

26 फाह्यान एवं ह्वेनसॉग के यात्रा विवरण

27 *ए0 एस0 आई0 आर0*, जिल्द 18 पृष्ठ 31–33

28 लॉ0 बी0 सी0 *हिस्टारिकल ज्यागर्फी आफ इण्डिया*, पृष्ठ 119

29 दत्त एव बाजपेयी, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 273

30 तत्रैव

31 *ए0 इ0*, वाल्यूम 5, पृष्ठ 113

32 तत्रैव, पृष्ठ 85

33 शुक्ल चन्द्रमौलि *युग – युगीन सरयूपार*, पृष्ठ 16–18, 1987 (उ0प्र0 इतिहास सकलन समिति द्वारा प्रकाशित)

34 मुखर्जी, पी0सी0, *एन्टीक्विटीज आफ कपिलवस्तु आफ नेपाल*, 1899, पृष्ठ 2, स्मिथ, *प्रीफरेटरी नोटस*, पृष्ठ 18 (पायनियर 25 मार्च 1898)

35 श्रीवास्तव, के0 एम0 *डिस्कवरी आफ कपिलवस्तु*, पृष्ठ 26

36 मुकर्जी, पी0 सी0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 3

37 पाण्डेय जयनारायण, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 55

38 वाशम, ए0एल0, *स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर*, पृष्ठ 201

39 *आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया*, वाल्यूम 23 एव 24

40 *जे0 आर0 ए0 एस0*, 1898, पृष्ठ 573

41 *ए0 एस0 आई0 ए0 आर0*, 1904–05, पृष्ठ 43

42 स्मिथ, द *रिमेस नियर कसया*, इलाहाबाद 1896, *जे0 आर0 ए0 एस0* 1902, पृष्ठ–139। इस प्रसग मे डॉ0 हुई का लेख भी द्रष्टव्य है। देखे, *जे0ए0एस0बी0*, वाल्यूम यल0–19, प्लेट 175, एफ0 एफ0 और एल0 20

43 स्मिथ, विन्सेण्ट, *अर्ली हिस्ट्री ऑफ इण्डिया*, पृष्ठ 159 (तृतीय सस्करण), नोट : हिरण्यवती वास्तव मे छोटी गण्डक है।

44 *दीर्घ निकाय* 2, 137, *जे0 आर0 ए0 एस0*, 1906, पृष्ठ 659

45 दत्त एव बाजपेयी, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 257

46 मुकर्जी पी0 सी0, *पूर्वोद्धृत*, न0 26, पार्ट 1, 1890, *ए0 एस0 आई0 आर0*, इम्पीरियल सीरीज (रिप्रिन्टेड, वाराणसी 1969), स्मिथ, *प्रीफरेटरी नोट*, पृष्ठ 10

47 रिज, डेविडस, *बुद्धिस्ट इण्डिया* (लन्दन 1903), पृष्ठ 15 एन

48 मुकर्जी, पी0 सी0, *इण्ट्रोडक्शन*, *नरेटिव आफ माई टूर*, पृष्ठ 3 (1899)

49 तत्रैव

50 तत्रैव, प्रीफेस, पृष्ठ 1

51 तत्रैव, पृष्ठ 3

52 तत्रैव, स्मिथ, *प्रीफरेटरी नोट*, पृष्ठ 1–22

53 पाण्डेय, जयनारायण, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 47

54 *एन्श्येन्ट इण्डिया*, न0 9, पृष्ठ 38

55 पाण्डेय, जयनारायण, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 49

56 *इण्डियन आर्क्योलाजिकल पालिसी*, 1915 (कलकत्ता 1916), विशेष के लिए द्रष्टव्य, तत्रैव, पृष्ठ 35, पाद टिप्पणी 4

57 साहनी, दयाराम, *ए0 एस0 आई0 ए0 रि0*, 1906–07, पृष्ठ 193–94

58 शुक्ल, चन्द्रमौलि, *युग–युगीन सरयूपार*, पृष्ठ 15–18, 1987 (उ0प्र0 इतिहास सकलन समिति द्वारा प्रकाशित)

59 पेप्पे, डब्लू0 सी0, पिपरहवा स्तूप कन्टेनिग रैलिक्स आफ बुद्ध, *जर्नल ऑफ दी रायल एशियाटिक सोसायटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड*, 1898 पृष्ठ 575

60 शुक्ल, चन्द्रमौलि, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 15–18

61 पाण्डेय जयनारायण, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 54–56

62 सिन्हा, के0 के0, *एक्सकेवेशन ऐट श्रावस्ती*, 1959 प्रीफेस

63 तत्रैव, पृष्ठ 7–12

64 चतुर्वेदी एस0 एन0, एडवास ऑफ विन्ध्यन नियोलिथिक एण्ड चैल्कोलिथिक कल्चर्स टू दि हिमालयन तराई, एक्सकेवेशन एण्ड एक्सप्लोरेशन्स इन दि सरयूपार रिजन ऑफ उत्तर प्रदेश, *मैन एण्ड एनवर्नमेण्ट*, वाल्यूम 9, 1985 पृष्ठ 101–103

65 *इण्डियन आर्क0*, ए रिव्यू, 1974–75, पृष्ठ 46–47

66 मित्रा, डी0 *बुद्धिस्ट मान्यूमेटस*, कलकत्ता 1972, पृष्ठ 253

67 *इ0 आर्क0*, 1961–62, पृष्ठ 103–104

68 तत्रैव, 1962–63, पृष्ठ 33

69 तत्रैव 1963–64 पृष्ठ 45

70 श्रीवास्तव के0 यम0 *पूर्वोद्धृत* पृष्ठ 42–48

71 तत्रैव पृष्ठ 247–256

72 तत्रैव पृष्ठ 48

73 चतुर्वेदी एस0 एन0, एक्सकेवेशन ऐट सठियाव–फाजिलनगर, डिस्ट्रिक्ट देवरिया एण्ड एक्स्प्लोरेशन्स इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ गोरखपुर एण्ड बस्ती ऑफ उत्तर–प्रदेश, *हिस्ट्री एण्ड आर्क्यालाजी*, वाल्यूम 1, न0 1–2, 1980, पृष्ठ 333–340

74 त्रिपाठी कृष्णानन्द, *ई0 आर्क0 ए रिव्यू*, 1983–84, पृष्ठ 87

75 *इडियन आर्क्यालजी, ए रिव्यू*, 1974–75, पृष्ठ 45–46

76 सिह पुरूषोत्तम, सिह, अशोक कुमार और सिह, इन्द्रजीत, एक्सप्लोरेशस एलाग दि कुआना रिवर, इन डिस्ट्रिक्ट गोरखपुर एण्ड बस्ती, *प्राग्धारा*, अक 1, 1990–91, पृ0 72–79

77 सिह, डी0पी0 और सिह, जे0 के0, 1986, आजमगढ जनपद का मूलभूत इतिहास, अग्रगामी अध्ययन, *भारतीय इतिहास सकलन समिति*, पत्रिका, वाराणसी, पृष्ठ 350

78 तत्रैव, पृष्ठ 350

79 तिवारी आर0 एव श्रीवास्तव, आर0के0, एक्सप्लोरेशन्स एलाग द आमी रिवर एण्ड इन इट्स नियरबाइ एरियाज इन डिस्ट्रिक्ट्स सिद्धार्थनगर, बस्ती एण्ड गोरखपुर, *प्राग्धारा*, अक–4, 1993, पृष्ठ 14

80 चतुर्वेदी, एस0एन0, 1980, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 333–340

तृतीय अध्याय

वर्तमान अध्ययन (सर्वेक्षण) और सांस्कृतिक अनुक्रम

नवपाषाण कालीन संस्कृति

मानव की सास्कृतिक प्रगति के इतिहास मे नवपाषाण या नूतन पाषाण काल का बहुआयामी महत्त्व है, क्योकि जहॉ एक ओर नवपाषाणिक मानव के द्वारा कृषि एव पशुपालन के क्षेत्र मे एक ऐसी परम्परा की शुरूआत की गयी जिसका अनुकरण थोडे बहुत अतर के साथ हम आज भी कर रहे हैं, वहीं दूसरी ओर इस युग की अर्थव्यवस्था ने कास्यकाल की सभ्यताओ के उदय एव विकास के लिए उपयुक्त पृष्ठभूमि प्रदान की। नूतन पाषाण काल की इस महत्त्वपूर्ण भूमिका को दृष्टिगत रखते हुए गार्डन चाइल्ड ने इस परिवर्तन को 'नूतन पाषाणकाल की क्रान्ति' कहा है।

भारत मे कर्नाटक प्रान्त के लिगसुगुर नामक पुरास्थल से सन् 1842 ई0 मे सर्वप्रथम नूतन पाषाणिक उपकरण मैसूर रियासत के पुरातत्त्व अधिकारी एम0 एच0 कृष्ण द्वारा प्रतिवेदित किये गये थे[1]। सन् 1860 ई0 मे ले मेसुरिये (Le Mesurier) को इलाहाबाद जिले मे स्थित टोस घाटी से नूतन पाषाणिक कतिपय उपकरण प्राप्त हुए थे। तदनन्तर इस प्रकार के पाषाण उपकरणो का प्रतिवेदन, बुन्देलखण्ड, दक्षिण तथा पूर्वी भारत के अनेक क्षेत्रो से समय–समय पर होता रहा। ब्रूस फूट नामक पुराविद् ने दक्षिण भारत के कई स्थानों पर स्थित राख के ढेरो को नूतन पाषाणिक बतलाया[2]।

सन् 1947 ई0 मे मार्टीमर ह्वीलर ने कर्नाटक प्रात के चीतलदुर्ग जिले के मोलकालमुरू तालुका मे स्थित ब्रह्मगिरि नामक पुरास्थल का उत्खनन कराया, जिससे दक्षिण भारत की नूतन पाषाणिक सस्कृति के सास्कृतिक उपादानो के साथ ही साथ उसके सम्भावित कालानुक्रम के विषय मे जानकारी प्राप्त हुयी। तब से लेकर आज तक भारत के विभिन्न क्षेत्रो मे स्थित अनेक नूतन पाषाणिक पुरास्थलो का उत्खनन हो चुका है। कालानुक्रम की दृष्टि से भी भारत के विभिन्न क्षेत्रो की नूतन पाषाणिक सस्कृतियॉ समकालिक या एक दूसरे के थोडा आगे पीछे विकसित हुयी, ऐसा प्रतीत होता है। समकालिक होते हुए भी इन सस्कृतियो मे

उल्लेखनीय क्षेत्रीय–विभेद दृष्टिगोचर होता है। बी0डी0 कृष्णस्वामी ने सन् 1960 ई0 मे भारत की नूतन पाषाणिक सस्कृतियो का विभाजन चार क्षेत्रो मे किया था। 1964 ई0 मे बी0के0 थापड ने उत्तरी, दक्षिणी और पूर्वी इन तीन प्रमुख क्षेत्रो मे विभाजन किया था। 1968 ई0 मे अल्चिन दम्पति ने भारत की विभिन्न नूतन पाषाणिक सस्कृतियो को निम्नलिखित पॉच वर्गों मे विभाजित किया– (1) उत्तरी वर्ग कश्मीर घाटी (2) दक्षिणी वर्ग गोदावरी के दक्षिण का क्षेत्र, (3) पूर्वी वर्ग असम का क्षेत्र (4) मध्यवर्ती वर्ग गगा के दक्षिण का पठारी क्षेत्र (5) पूर्वी मध्य वर्ग बिहार, उडीसा और छोटा नागपुर का पर्वतीय क्षेत्र।

सन् 1975 ई0 मे बी0 के0 थापड ने अल्चिन दम्पित्त के वर्गीकरण को सशोधित करके उपर्युक्त पॉच वर्गों मे उत्तरी–पश्चिमी एक छठॉ वर्ग और जोड दिया। इस छठे वर्ग मे पाकिस्तान के बलूचिस्तान एव सिध प्रात की नूतन पाषाणिक सस्कृति को भी जोडा गया। लेकिन डॉ0 जे0 एन0 पाण्डेय[3] के अनुसार पाकिस्तान के नूतन पाषाणिक क्षेत्र को भारत के नूतन पाषाणिक विवेचन मे सम्मिलित करना यथेष्ट नही है। ऐसी स्थिति मे उपलब्ध पुरातात्त्विक साक्ष्यो के आधार पर भारत की नूतन पाषाणिक सस्कृतियो को अधोलिखित छ वर्गों मे विभाजित किया जा सकता है–

1 उत्तरी भारत की नूतन पाषाणिक सस्कृति

2 विन्ध्य क्षेत्र की नूतन पाषाणिक सस्कृति

3 दक्षिण भारत की नूतन पाषाणिक सस्कृति

4 मध्य गगा घाटी की नूतन पाषाणिक सस्कृति

5 मध्य–पूर्वी नूतन पाषाणिक सस्कृति

6 पूर्वोत्तर भारत की नूतन पाषाणिक संस्कृति

गोरखपुर जनपद मध्यगगा घाटी मे अवस्थित है। जनपद एव सीमावर्ती जनपदो के विविध पुरास्थलों से उपलब्ध प्राचीनतम पुरावशेषो का सम्बन्ध नवपाषाण काल से जोडा जा सकता है। इस प्रकार यहॉ का सास्कृतिक अनुक्रम नवपाषाण काल से प्रारम्भ होता है। प्रश्न उठता है कि जनपद मे नवपाषाणिक मानव का आगमन कहॉ से हुआ? इस प्रश्न के उत्तर मे प्रो0 जी0 आर0 शर्मा की मान्यता है कि विन्ध्य क्षेत्र का मानव इस काल मे हिमालय की तराई तक पहुँच चुका था[4]। प्रो0 शर्मा ने जनपद मे प्रवाहित सरयू एव कुआनो के तटवर्ती पुरास्थलो से उपलब्ध लघुपाषाणिक उपकरणो के आधार पर यहॉ की प्राचीनतम सस्कृति की तुलना नवपाषाण काल से की है। ध्यातव्य है कि विन्ध्य क्षेत्र के पाषाण खण्डो से निर्मित लघु उपकरण प्रायः जनपद

के दक्षिणी भाग से उपलब्ध हुए है। ऐसी दशा मे प्रतीत होता है कि सम्भवत विन्ध्य मानव ने सरयू नदी को पारकर तटवर्ती क्षेत्रो को अपना प्रथम आवास बनाया होगा[४]।

जनपद के विभिन्न पुरास्थलो से नवपाषाणिक उपकरणो के अतिरिक्त कोई अन्य पुरावशेष न मिलने के कारण इन सीमित पुरावशेषो के आधार पर नवपाषाणिक मानव के बहुआयामी जीवन के विषय मे निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है।

19वी शदी से लेकर बीसवी शदी के प्रारम्भ तक (स्वतन्त्रता प्राप्ति के पूर्व तक) इस क्षेत्र मे अग्रेज पुरातत्त्वविदो ने पुरातात्त्विक खोजो मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी। इनमे बुकनन, कनिघम, कार्लायल, फ्यूहरर, स्मिथ, पेप्पे, तथा डॉ0 हुई जैसे अग्रेज पुराविद् एव प्रशासनिक अधिकारियो का प्रयास स्तुत्य है। लेकिन ये पुराविद् बुद्ध से सम्बन्धित पुरास्थलो एव कलावशेषो की सीमाओ मे सीमित रहे। सन् 1959 मे प्रो0 के0 के0 सिन्हा ने श्रावस्ती[5] का उत्खनन किया, जहाँ उन्हे बुद्ध से कुछ पहले के अवशेष मिले। लेकिन इन अवशेषो का सम्बन्ध बौद्धकाल के प्रारम्भिक चरण से कुछ ही पहले का है। इसी क्रम मे सत्तर के दशक के प्रारम्भ मे (1961–62) गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से सोहगौरा के टीले का पहली बार उत्खनन किया गया। ध्यातव्य है कि इस उत्खनन मे पुराविदो का फावडा **सोहगौरा** की सास्कृतिक सीमाओ तक नही जा सका। यह उत्खनन ताम्रपाषाणिक स्तर तक ही सीमित रहा, क्योकि इसके नीचे प्राकृतिक मिट्टी मिली थी। यहाँ के अवशेषो मे मुख्यत ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर (सादे एव चित्रित), तथा भूरे रग के पात्र (सादे एव चित्रित) मिले है। भूरे रग के जिन मृद्भाण्डो पर चित्रण है, वे हस्तिनापुर के भूरे रग के चित्रित मृद्भाण्डो से भिन्न है।

सम्पूर्ण जनपद मे सर्वेक्षण के दौरान धरातल से उपलब्ध मृद्भाण्डो के सम्यक् विश्लेषण के पश्चात् मैने महसूस किया कि मृद्भाण्डो के ये ठीकरे जनपद को दो भागो में विभक्त करते है– 1. उत्तरी और 2 दक्षिणी। जनपद के प्राचीनतम पुरावशेषो का सम्बन्ध दक्षिणी भाग से जोडा जा सकता है। दक्षिणी भाग के अन्तर्गत उस भू–भाग को सम्मिलित किया जा सकता है, जो कि दक्षिण मे सरयू या घाघरा, उत्तर मे आमी, पूर्व मे राप्ती (अचिरावती) और पश्चिम मे कुआनो से घिरा हुआ है।

यह स्पष्ट हो चुका है कि गोरखपुर जनपद मे सास्कृतिक अनुक्रम का प्रारम्भ नवपाषाण काल से होता है।[6] इसके साथ ही प्रश्न उठता है कि इस क्षेत्र मे ऐसी कौन सी भौगोलिक विशेषता थी, जिससे प्रेरित होकर नवपाषाणिक मानव ने यहाँ अपना प्रथम अधिवास बनाया। मानव जीवन के लिए नदियो का बहुआयामी महत्त्व प्राचीनकाल से ही स्वीकार किया जाता रहा है। यही कारण है कि प्राचीनतम मानव बस्तियाँ प्राय. नदियो के किनारे ही मिलती है। पूरे जनपद मे नदियो का जाल फैला हुआ है। इन नदियों के प्रवाह के

कारण उर्बर कछार का निर्माण होता रहता है, जो कृषि कार्य के निमित्त अत्यन्त उपयोगी होता है। इसके अतिरिक्त नदियो के तटवर्ती ऊँची भूमि, सुरक्षा की दृष्टि से भी उपयुक्त रही होगी।

मानव अधिवास के निमित्त उत्तम एव उपयोगी जलवायु का होना अति आवश्यक है, जिसके विविध कारक है। जलवायु का उत्तम होना, समुद्र से स्थल की ऊँचाई एव दूरी पर निर्भर करता है। सम्पूर्ण जनपद समुद्रतल से लगभग 316 फीट ऊँचा है। यह समुद्र से बहुत दूर भी है। अतएव यहॉ न तो अधिक सर्दी रहती है और न गर्मी। सर्दी और गर्मी सामान्य होने के कारण भी यहॉ नवपाषाणिक मानव का आगमन हुआ होगा।

1974 मे गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एव सस्कृति विभाग ने गोरखपुर, बस्ती एव देवरिया जनपदो मे व्यापक पैमाने पर सर्वेक्षण कार्य किया[7]। यह सर्वेक्षण विभाग के प्रो0 शैलनाथ चतुर्वेदी के नेतृत्व मे श्रीकृष्णानद त्रिपाठी (क्यूरेटर) तथा कुछ विभागीय शोध छात्रो ने किया, जिसका प्रकाशन इण्डियन आर्क्यालाजीकल रिव्यू, 1974–75 के अक मे प्रकाशित है। इसी बीच 1974 मे ही प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी के निर्देशन मे श्रीकृष्णानद त्रिपाठी ने सोहगौरा मे उत्खनन कार्य किया। इस उत्खनन के दौरान, विभाग के ही प्रो0 प्रेमसागर चतुर्वेदी भी अध्ययन–अध्यापन की व्यस्तता के बावजूद बीच–बीच मे आते रहे। इस उत्खनन मे कई ट्रेन्चस (खन्तियॉ) लगाए गये। कुछ ट्रेन्चो मे प्राकृतिक मिट्टी तक उत्खनन किया गया, लेकिन वहॉ स्पष्ट रूप से सॉस्कृतिक स्वरूप का निर्धारण नही हो पाया। इन ट्रेन्चो से प्राप्त अवशेष वैसे ही मिले जैसे पूर्व के उत्खनन मे प्राप्त हुए थे। सयोगवश टीले के सबसे ऊँचे जगह पर लगाए एक बडे ट्रेच को प्राकृतिक मिट्टी तक खोदा गया, जिसमे पहली बार मध्यगगाघाटी के इस पुरास्थल से नवपाषाणकालीन हस्तनिर्मित कार्डेड वेअर के टुकडे स्वतत्र स्तरो से प्राप्त हुए (रेखाचित्र सख्या–3)। इस प्रकार यहॉ नवपाषाणकाल से लेकर मध्यकाल तक, छ सास्कृतिक कालो के अवशेष लगभग 4 5 मी0 के जमाव मे प्राप्त हुए।

प्रथम– नवपाषाणकाल

द्वितीय– उत्तरनवपाषाणकाल एव प्रारम्भिक ताम्र पाषाणकाल

तृतीय– ताम्रपाषाणकाल

चतुर्थ– बुद्धकाल, मौर्यकाल, शुगकाल, एन0बी0पी0वेअर

पचम– कुषाण एव गुप्तकाल

षष्टम् –पूर्व मध्य एव मध्यकाल

1975 से लेकर 1982–83 के मध्य तक श्री कृष्णानद त्रिपाठी (सग्रहालयाध्यक्ष) ने सोहगौरा के प्रथम एव द्वितीय काल के सास्कृतिक विस्तार के अनेक स्थलो का पता लगाया। इस प्रकार मध्य गगाघाटी के इस क्षेत्र मे नवपाषाण एव ताम्रपाषाणकालीन अनेक स्थलो के उद्घाटन से इस परिक्षेत्र की ओर देश के विभिन्न क्षेत्र के पुराविदो का ध्यान, आकर्षित हुआ। अब सोहगौरा ही नही अपितु अनेक ऐसे स्थल प्रकाश मे आ चुके है, जिनमे से कुछ स्थलो पर बनारस हिदू विश्वविद्यालय के विद्वान, प्रो0 पुरूषोत्तम सिह ने पुनर्सर्वेक्षण कर उत्खनन कार्य भी किया है। इसमे नरहन का उत्खनन रिपोर्ट प्रकाशित हो चुका है। श्री कृष्णानन्द त्रिपाठी ने 1974–75 मे जिन तीन स्थलो का खोज किया था, उनमे प्रथम लहुरादेवा (सतकबीर नगर जनपद मे) है। यहॉ से नवपाषाणकालीन कार्डेड वेअर के साथ कुछ माइक्रोलिथ्स के टुकडे एव ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, ग्रे वेअर, तथा रेड वेअर के अवशेष मिले। ये सभी मृद्भाण्ड प्लेन एव पेन्टेड है, जो कि धरातल से प्राप्त हुए है। इन्ही के साथ सेलखडी के मनके, माइक्रोलिथ्स के टुकडे, प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के एन0बी0पी0 के टुकडे तथा ऐतिहासिक काल के लालरग के बर्तन भी मिले थे। इस तरह से सोहगौरा सस्कृति के प्रसार का पता लगाने के क्रम मे लहुरादेवा स्थल की खोज, एक महत्वपूर्ण प्रयास है। यह पूर्व बुद्धयुगीन सास्कृतिक इतिहास के लिए भी महत्त्वपूर्ण है। इसके बाद इस स्थल पर प्रो0 पुरूषोत्तम सिह ने अपने सहयोगियो तथा श्री राकेश तिवारी, राज्य पुरातत्त्व सगठन उत्तर प्रदेश, स्वर्गीय के0के0 सिन्हा के सहायक एक शोध छात्र, राना तथा सिन्हा साहब के सहायक वी0 पी0 सिह साहब ने सर्वेक्षण कर अपनी रिपोर्ट राज्य पुरातत्त्व सगठन की पत्रिका मे प्रकाशित किया है। सबसे पहले इसका प्रकाशन हिस्ट्री एण्ड आर्क्यालजी, इलाहाबाद मे प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी ने किया था। इससे भी पहले स्थानीय पत्रो मे, श्रीकृष्णानद त्रिपाठी के द्वारा किए गए खोज मे इस स्थल का विशेष उल्लेख किया गया था।

1974–75 मे लहुरादेवा के सर्वेक्षण के क्रम मे वर्ष 1975 ई0 में ही गोरखपुर जनपद मे सरयू के तटवर्ती क्षेत्रो के सर्वेक्षण के दौरान श्री त्रिपाठी ने अपने सहयोगी श्री टी0 एन0 दूबे के साथ नरहन, मकन्दवार और मदरहा से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा ग्रे वेअर के टुकडे भी धरातल से खोज डाले। इस प्रकार सोहगौरा सस्कृति के द्वितीय एव तृतीय काल से सम्बन्धित अवशेष इन तीनो स्थलो के धरातल से प्राप्त हुए है।

नरहन से चित्रित मृद्भाण्डो के टुकडो के साथ ही ब्लैक–एण्ड वेअर का डिस आन स्टैण्ड पात्र भी मिला है, जो विशेष आकर्षक है। इसे देखकर वर्ष 1980–81 मे इलाहाबाद मे आयोजित राष्ट्रीय एव अतर्राष्ट्रीय स्तर की सगोष्ठी मे मध्य गगा घाटी के नवपाषाणकालीन उत्खनित प्रथम दो स्थलो · सोहगौरा एव चिरॉद की प्रदर्शनी लगायी गयी थी। सोहगौरा के साथ नरहन के डिस–आन स्टैण्ड को भी प्रदर्शनी मे

लगाया गया था, जिससे आकर्षित प्रो0 पुरूषोत्तम सिह ने नरहन के उत्खनन की योजना बनायी। दुर्भाग्यवश नरहन गॉव के पूरब ऊँचे टीले को, जिसे चिडीहार कहते है, उन्होने खोद डाला। यहॉ पर उन्हे सोहगौरा के प्रथम एव द्वितीय काल के अवशेष नही प्राप्त हुए। अतएव प्रो0 सिह ने असम मे आयोजित राष्ट्रीय सगोष्ठी मे अपने लेख 'नरहन चिडीहार उत्खनन' मे गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर इशारा करते हुए आरोप लगाया कि पता नही कैसे गोरखपुर विश्वविद्यालय के लोगो ने यहॉ से ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर तथा अन्य ताम्रपाषाणिक पुरावशेष खोज निकाले, जबकि मुझे नरहन चिडीहार के उत्खनन एव समीपवर्ती क्षेत्रो के सर्वेक्षण से भी कही ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर का टुकडा नही मिला[8]। वहॉ उपस्थित प्रो0 दयानाथ त्रिपाठी ने उन्हे सुझाव दिया कि आपकी टीम ने सम्भवत नदी के कगार को नही देखा, जहॉ उसके कटान मे ही उक्त पुरावशेष दिखायी पडते है। प्रो0 त्रिपाठी ने प्रो0 सिह को बताया कि, 'आप गॉव के पूरब उत्खनन करा रहे थे, और मुझे श्री कृष्णानद त्रिपाठी ने बताया है कि नरहन गॉव के पश्चिम, तटवर्ती खेतो मे सोहगौरा के द्वितीय एव तृतीय काल से सम्बन्धित अवशेष बिखरे पडे है।' उन्हे नदी के कटान से भी देखा जा सकता है। यदि आप उक्त स्थल का पुन अवलोकन करेगे तो आपको लगेगा कि हमारे विभाग ने सोहगौरा के द्वितीय एव तृतीय काल के अवशेष सही मे खोजे है।

प्रो0 पुरूषोत्तम सिह ने उक्त स्थल को देख कर वही उत्खनन किया, जहॉ उन्हे इस उत्खनन के द्वारा बहुत ख्याति मिली। यहॉ उन्हे अपेक्षित पुरावशेष भी उपलब्ध हुए[9]। इसी तरह से नरहन के पूरब, मदरहा टीला जो सरयू के तट पर स्थित है, यहॉ भी ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर तथा ब्लैक स्लिप्ड वेअर के टुकडे धरातल से प्राप्त हुए है। इसी क्रम मे सरयू के तट पर ही मकन्दवार नामक टीले पर जिसका अधिकाश भाग नदी मे विलीन हो चुका है, कुछ प्राचीन अवशेष मिले, जिसमे ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर, ग्रे–वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड तथा एन0 बी0 पी0 वेअर, के टुकडे मुख्य है। नदी के कगार पर रिंग–वेल तथा कुषाण कालीन दीवारो के अवशेष दिखायी दे रहे थे।

1979–80 मे गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी के निर्देशन मे तथा प्रो0 डी0 एन0 त्रिपाठी के सह निर्देशन मे श्रीकृष्णानद त्रिपाठी तथा श्री टी0 एन0 दूबे ने फाजिलनगर एव सठियॉव का उत्खनन किया[10]।

1981–82 मे श्री कृष्णानद त्रिपाठी ने बस्ती जनपद मुख्यालय से गोरखपुर जनपद मे सरयू–कुआनों के सगम स्थल तक अनेक ऐसे पुरास्थल खोज निकाले, जो नवपाषाण काल या उससे कुछ पूर्व के है। इन स्थलो से ताम्रपाषाण काल एव प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल तक के अवशेष प्राप्त हुए, जिनमे **सूसीपार** (बस्ती जनपद मे) से माइक्रोलिथ इण्डस्ट्री तथा हस्तनिर्मित–मृद्भाण्ड (कार्डेड वेअर, ब्लैक एण्ड रेड वेअर, ब्लैक

स्लिप्ड वेअर, ग्रे वेअर तथा कुछ गेरूए रग के मृद्भाण्ड) एव कुछ दूरी पर ऐतिहासिक काल के अवशेष भी प्राप्त हुए है। ठीक इसी प्रकार के अवशेष सिसवनिया से भी मिले है, जिनमे माइक्रोलिथ्स, ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–रिलप्ड वेअर तथा एन0बी0पी0 वेअर के टुकडे मिले है। **रामनगरघाट** एव **बड़गों** मे माइक्रोलिथ इण्डस्ट्री से लेकर रूसीपार के सभी अवशेष मिले है, जबकि गेडार बहुत वडे क्षेत्र मे फैला हुआ है, जहॉ माइक्रोलिथ्स नही दिखे। यहॉ हस्तनिर्मित मृद्भाण्ड तथा ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, ग्रे–वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर, तथा ऐतिहासिक काल के अवशेष मिले है। गोरखपुर जनपद मे अवस्थित इमलीडीह से सर्वेक्षण के दौरान मुझे धरातल से नवपाषाणिक (हस्तनिर्मित कार्डेड वेअर) एव ताम्रपाषाणिक मृद्भाण्डो (रेखाचित्र सख्या 29, न0 1, 2, 3) के टुकडे उपलब्ध हुए है। इसके पहले श्रीकृष्णानद त्रिपाठी को भी ये अवशेष मिल चुके है। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रो0 पुरूषोत्तम सिह ने भी यहॉ से उत्खनन के दौरान इन पात्रावशेषो से साक्षात्कार किया है, जिसका विवरण प्राग्धारा अक 3 (आर्क्यालाजिकल एक्सकेवेशन ऐट इमलीडीह खुर्द–1992) मे दिया गया है। इमलीडीह के प्रथम काल से कार्डेड वेअर (रेखाचित्र सख्या–4) के साथ ही प्लेन–रेड वेअर (रेखाचित्र सख्या–7) भी मिले है। कार्डेड–वेअर मे कुछ ऐसे भी पात्र मिले है, जिन पर आसञ्जन विधि से अलकरण किया गया है (रेखाचित्र सख्या–5)। इसी काल से कुछ ऐसे मृद्भाण्डो के ठीकरे भी मिले है, जिन पर पकाने के बाद विविध आकृतियॉ उत्कीर्ण की गयी है (रेखाचित्र सख्या––6)। उपर्युक्त मृद्भाण्ड प्रकारो के अतिरिक्त प्रथम काल से कुछ अन्य पात्र–प्रकारो के टुकडे भी मिले है जिन पर विविध प्रकार की आकृतियॉ बनायी गयी हैं (रेखाचित्र सख्या–8)।

1982–83 मे श्री कृष्णानद त्रिपाठी ने नवपाषाणकालीन एव ताम्रपाषाणकालीन अवशेषो को वर्तमान सतकबीर नगर जनपद मे स्थित बखिराझील के किनारे **बड़गों**, **चिलवनखोर**, **बाड़ोंडीह** तथा **नेवास** एव **गेनौरा** आदि पुरास्थलो से खोज निकाला। इन सभी नवपाषाणिक एव ताम्रापाषाणिक स्थलो से सम्बन्धित लेखो का वाचन स्थानीय बौद्ध सग्रहालय (गोरखपुर) के एक व्याख्यान मे सर्वप्रथम श्री त्रिपाठी ने किया, जिसे तमाम स्थानीय समाचार पत्रो ने प्रकाशित किया। इसके बाद उन्होने राष्ट्रीय स्तर के अनेक अधिवेशनों मे इन खोजो के सम्बन्ध मे वाचन किया। दुर्भाग्यवश उन्होने अभी तक स्वतत्र रूप से अपना कोई शोध लेख प्रकाशित नही किया है।

हाल के वर्षो (1996–97 के मध्य) मे महराजगज जनपद के कई स्थलो से नवपाषाणिक एव ताम्रपाषाणिक स्थलो को खोजकर श्री त्रिपाठी ने इस सास्कृतिक विस्तार को प्राचीन सदानीरा तथा बूढी गण्डक के छाड़न पुरैना खण्डी ताल के तट पर, ऊॅचे धूस पर लगभग एक कि0मी0 लम्बे क्षेत्र तक पहुॅचाया है[11]। इस क्षेत्र से नवपाषाणकालीन कार्डेड वेअर के टुकडे, माइक्रोलिथ्स के टुकडे तथा ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर,

ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, ग्रे वेअर तथा एन0 बी0पी0 वेअर तक के अवशेष उन्होने प्राप्त किये। इस प्रकार नवपाषाणकालीन सस्कृति का विस्तार सदानीरा के तट तक खोजकर एक नये अध्याय की शुरूआत की गयी। ध्यातव्य है कि सदानीरा का उल्लेख शतपथ ब्राह्मण मे मिलता है। यह खोज वहॉ के तत्कालीन पुलिस अधीक्षक श्री विजयकुमार के साथ श्री कृष्णानद त्रिपाठी[12] ने महराजगज जनपद मे किया, साथ ही रामग्राम, देवदह, पिकलीकानन आदि बौद्ध–युग से सम्बन्धित स्थलो की खोज, जगल–झाडियो एव नदियो के किनारे की गयी। इसके बहुत पहले एक दर्जन से कम ही पुरास्थलो की खोज हुयी थी, जिनमे महत्त्वपूर्ण स्थलो की खोज जून 1973 मे श्री कृष्णानद त्रिपाठी ने किया था। इसके पूर्व श्री शिवाजी सिह ने मनिआरभार को रामग्राम तथा श्री सी0 डी0 चटर्जी ने बनरसिहाकला को देवदह, के रूप मे पहचान किया था। लेकिन श्रीकृष्णानद त्रिपाठी एव श्री विजय कुमार ने कुछ ही महीनो के अन्दर पूरे जनपद के प्रत्येक गॉव तथा जगलो का व्यापक सर्वेक्षण करते हुए चार सौ के लगभग पुरास्थलो को खोज डाला, जहॉ से नवपाषाणकाल, ताम्रपाषाणकाल, बौद्धकाल, मौर्यकाल, कुषाणकाल, गुप्तकाल, एव पूर्व मध्यकाल तक के अवशेष मिले है, जो इस क्षेत्र के ऐतिहासिक, सास्कृतिक एव धार्मिक स्वरूप के निर्धारण मे महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाएगे। इस क्षेत्र मे प्रो0 पुरूषोत्तम सिह के द्वारा इमलीडीह, नरहन, तथा धुरियापार के उत्खनन मे बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी गयी है। इसके उपरात आजतक इस पूरे परिक्षेत्र मे समय–समय पर गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से सर्वेक्षण कार्य किए गये।

1997–98 मे गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से प्रो0 दयानाथ त्रिपाठी एव प्रो0 आर0 के0 वर्मा के निर्देशन एव श्रीकृष्णानद त्रिपाठी तथा विभाग के शोधछात्रो के सहयोग से उसमानपुर (बीरभारी टीला) मे उत्खनन कार्य सीमित क्षेत्र मे हुआ, जिसमे कुषाणकालीन एक बस्ती का अवशेष दिखायी दिया।

वर्ष 1996 मे कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय की ओर से एक बडी परियोजना के तहत प्रो0 डी0 के0 चक्रवर्ती, इस क्षेत्र के पुरास्थलो को देखने की योजना लेकर आए। प्रो0 चक्रवर्ती ने कुशीनगर, देवरिया, गोरखपुर, महराजगज, सिद्धार्थनगर, सतकबीरनगर, बस्ती, तथा गोण्डा जनपदो के महत्त्वपूर्ण पुरास्थलो का सर्वेक्षण, गोरखपुर विश्वविद्यालय के कृष्णानद त्रिपाठी तथा बी0 एच0 यू0 के डॉ0 आर0 एन0 सिंह के साथ किया। इस सर्वेक्षण कार्य का प्रकाशन कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय के विशेष बुलेटिन मे सयुक्त रूप से प्रो0 डी0 के चक्रवर्ती, डा0 आर0 एन0 सिह और श्रीकृष्णानद त्रिपाठी के नाम से हुआ है।

इस प्रकार सोहगौरा, इमलीडीह, लहुरादेवा, सूसीपार, रामनगरघाट, बडगो, गेडार, (मानचित्र सख्या–2) आदि पुरास्थलो से मुख्यरूप से नवपाषाणिक एव ताम्रपाषाणिक पुरावशेष उपलब्ध हुए है। इनमें अधिकाश पुरावशेष धरातलीय सर्वेक्षण मे मिले है।

ताम्रपाषाणिक संस्कृति

गोरखपुर जनपद मे सॉस्कृतिक अनुक्रम का दूसरा चरण ताम्रपाषाणकाल से प्रारम्भ होता है। ताम्रपाषाणिक सस्कृति के अन्तर्गत उस सस्कृति को रखा गया है, जिसमे तॉबे के उपकरणो के साथ ही साथ पाषाण निर्मित औजारो का प्रचलन मिलता है। जहॉ तक इस सस्कृति के तिथिक्रम का प्रश्न है, कोई ऐसी तिथि निर्धारित नही हो सकी है, जो सभी क्षेत्रो की ताम्रपाषाणिक सस्कृतियो की सवादी हो। इसका कारण यह है कि इस सस्कृति का अस्तित्व विविध क्षेत्रो मे अलग–अलग समयों मे रहा है। उत्खनन से उपलब्ध ताम्रपाषाणिक पुरावशेषो के रेडियो कार्बन तिथियो के आलोक मे गोरखपुर परिक्षेत्र मे इस सस्कृति के प्रारम्भ के लिए 1500 से 1400 ई0 पू0 का समय निर्धारित किया जा सकता है।

गोरखपुर–बडहलगज–वाराणसी राजमार्ग पर कौडीराम से लगभग 3 कि0मी0 पूरब आमी–राप्ती नदियो के सगम पर स्थित सोहगौरा का प्रथम उत्खनन 1961–62 मे गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एव सस्कृति विभाग की ओर से प्रो0 जी0 सी0 पाण्डेय के निर्देशन मे उनके सहयोगी डॉ0 एस0 एन0 चतुर्वेदी एव डॉ0 डी0 एन0 त्रिपाठी ने किया। इस उत्खनन मे जो प्राचीनतम सस्कृति मिली वह ताम्रपाषाणिक थी। क्योकि इसके ठीक नीचे प्राकृतिक मिट्टी मिली थी। इस उत्खनन मे चार सास्कृतिक कालो के अवशेष प्रकाश मे आये[13]।

वर्ष 1974–75 मे पुन. प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी के निर्देशन मे श्री कृष्णानद त्रिपाठी (सग्रहालयाध्यक्ष) ने यहॉ उत्खनन कार्य किया[14]। इस उत्खनन मे कुल छ. सांस्कृतिक कालो के अवशेष मिले, जिनमे द्वितीय और तृतीय काल का सम्बन्ध ताम्रपाषाणकाल से जोडा गया है। द्वितीय काल से उत्तर–नवपाषाणिक एव प्रारम्भिक ताम्रपाषाणिक अवशेष उपलब्ध हुये है। तृतीय काल का सम्बन्ध विशुद्ध रूप से ताम्रपाषाणकाल से जोडा गया है। सोहगौरा के द्वितीय काल से ताम्रपाषाणिक रेडवेअर (रेखाचित्र सख्या–9 एवं 10), ब्लैक–एण्ड–रेडवेअर (रेखाचित्र सख्या–11), ब्लैक–स्लिप्ड–एण्ड–ग्रे वेअर (रेखाचित्र सख्या–12), पेन्टेड ब्लैक एण्ड रेडवेअर (रेखाचित्र सख्या–13), पेन्टेड ब्लैक वेअर (रेखाचित्र सख्या–14) के साथ ही नक्काशी एव आसञ्जन विधियो से बनायी गयी आकृतियो वाले मृद्भाण्डो के ठीकरे (रेखाचित्र सख्या–15) मिले है।

जनपद का दूसरा उत्खनित ताम्रपाषाणिक स्थल **नरहन** है। इस पुरास्थल की स्थिति 26°19′ (Late) तथा 83°24′ (I ong) पर है। यहॉ गोरखपुर जनपद के बासगॉव तहसील मे गोरखपुर–गोला–बडहलगंज मार्ग पर स्थित भरोह से पहुॅचा जा सकता है। यह स्थल घाघरा (सरयू) के बाये तट पर अवस्थित है। यहॉ दो टीले है। नरहन तथा निकटवर्ती क्षेत्रो मे प्रथम सर्वेक्षण गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व

एव सस्कृति विभाग के डॉ0 आर0 बी0 सिह ने किया[15]। बासगाँव तहसील मे वर्ष 1974–75 मे इसी विभाग के प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी के निर्देशन मे सर्वेक्षण कार्य सम्पन्न हुआ[16]। सर्वेक्षण के दौरान श्री टी0 एन0 दूबे को 1974 मे नरहन से अत्यत महत्त्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुयी, जिसे उन्होने स्थानीय समाचार पत्र मे प्रकाशित किया (17 अक्टूबर, 1978)। ये पुरावशेष पू0 स0 मे सुरक्षित है। इस पुरास्थल पर 1983 से 1988 तक कई सत्रो मे उत्खनन कार्य हुआ। यहाँ से पॉच सास्कृतिक कालो के अवशेष मिले[17]। टीले की ऊँचाई सामान्य धरातल से लगभग 6 मीटर है।

नरहन के प्रथम काल से पेन्टेड–ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर बहुतायत से मिले है (रेखाचित्र सख्या–18–21)। इनमे 'मुख्यत. श्वेत चित्रित ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के पात्र है। प्रथम काल से बर्निस्ड–ब्लैक–एण्ड रेड वेअर (रेखाचित्र सख्या–22) के मृद्‌भाण्डो के टुकडे भी मिले है। इसी काल से कार्डेड वेअर के ठीकरे (रेखाचित्र सख्या–23) भी प्राप्त हुए है। इसके अतिरिक्त ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, रेड–स्लिप्ड वेअर तथा प्लेन–रेड वेअर भी प्रथम काल से मिले है। ब्लैक–स्लिप्ड वेअर के कुछ पात्रो पर श्वेत रग के चित्रण अभिप्राय मिलते है। यहॉ ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर की सख्या लगभग 58 प्रतिशत है। यहॉ से कटी हुयी हड्डियो के प्रमाण मिले है। पात्रो मे तश्तरियॉ एव मिट्‌टी के मनके मुख्य रूप से उपलब्ध हुए है।

द्वितीय काल का सास्कृतिक जमाव लगभग 90 सेन्टीमीटर है। यह जमाव प्रथम टीले पर है। इस जमाव मे ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर (सादे एव चित्रित) का पूर्णत अभाव है। लेकिन ब्लैक–स्लिप्ड पात्रो की सख्या अत्यधिक है। रेड–स्लिप्ड वेअर बहुत सीमित मात्रा मे विद्यमान है। प्लेन-रेड वेअर (सादे लाल पात्र) को यहॉ के मुख्य मृद्‌भाण्ड उद्योग के अन्तर्गत रखा जा सकता है। ब्लैक–स्लिप्ड वेअर मे मुख्यत कटोरे और थालियॉ हैं। रेड वेअर मे भी प्रमुख रूप से कटोरे, थालियॉ और तसले बहुतायत से मिलते है। यहॉ हड्‌डी के नुकीले नमूनो पर गोलाकार चिन्ह निर्मित किया जाता था। इस प्रकार के साक्ष्य यहॉ से मिल चुके है। इस काल से शीशे एव मिट्‌टी के मनको के अतिरिक्त मिट्‌टी के गेद तथा मिट्‌टी की बनी हुयी घोडे की मूर्ति भी मिली है। इसके अतिरिक्त द्वितीय काल से लोहे के उपकरण भी मिलने लगते है।

उपर्युक्त पुरावशेषो के आलोक मे यह स्पष्ट हो चुका है, कि नरहन के द्वितीय काल मे ताम्रपाषाण एव प्रारम्भिक लौह काल कुछ दिनो तक साथ–साथ चलते रहे। इसके अनन्तर नरहन की तृतीय सस्कृति का प्रारम्भ होता है, जिसकी प्रमुख पात्र–परम्परा एन0 बी0 पी0 वेअर है।

नरहन का प्रथम काल 1300 बी0सी0 से लेकर लगभग 800 बी0 सी0 तक चलता रहा। यह काल विशुद्ध रूप से ताम्रपाषाणिक था। दूसरा काल 800 बी0सी0 से 600 बी0सी0 तक चलता रहा[18], जो परवर्ती ताम्रपाषाण एव प्रारम्भिक लौह काल की मिश्रित सस्कृतियो का प्रतिनिधित्व करता है।

नरहन सस्कृति के उद्घाटन के पश्चात् इस सस्कृति के विस्तार की समस्या को ध्यान मे रखते हुए उत्खाता के नेतृत्व मे कुआनो नदी (घाघरा की सहायक) के तटवर्ती गॉवो मे व्यापक पैमाने पर सर्वेक्षण कार्य किया गया। उक्त सर्वेक्षण गोरखपुर एव बस्ती जनपदो मे किया गया। इस तरह नरहन सस्कृति से सम्बन्धित 17 पुरास्थल खोजे गये। इसी क्रम मे धुरियापार का उत्खनन किया गया, जिसके निचले स्तर से 'नरहन सस्कृति' से मिलते-जुलते अवशेष मिले। लेकिन धुरियापार का प्राचीनतम स्तर डिस्टर्व (क्षत-विक्षत) हो चुका था। ऐसी दशा मे यहॉ की सास्कृतिक सीमा का उद्घाटन सम्भव नही हो सका। इसी क्रम मे **इमलीडीह** का उत्खनन किया गया। ध्यातव्य है कि इमलीडीह की प्राचीनतम सस्कृति नवपाषाणिक थी। इमलीडीह का द्वितीय काल, नरहन सस्कृति के प्रथम काल का प्रतिनिधित्व करता है, जिसका समय 1300 बी0 सी0 से 800 बी0 सी॰ निर्धारित किया गया है[19]।

धुरियापार (Late $83^0 10'30'$ E, & $26^0 25'25''$ Long N) जनपद मुख्यालय से लगभग 46 कि0मी0 दक्षिण, कुआनो नदी के वाम तट पर अवस्थित है। यहॉ पहुँचने के लिए सर्वप्रथम गोरखपुर-सिकरीगज-गोला राजमार्ग पर स्थित उरूआ बाजार जाना पडता है। यहॉ से लगभग 4 कि0 मी0 दक्षिण-पश्चिम कुआनो नदी है, जिसके वामतट पर यह पुरास्थल अवस्थित है। टीले का क्षेत्रफल लगभग 7-8 एकड है। धरातल से टीले की ऊँचाई लगभग 25 मीटर है।

इस स्थल का सर्वप्रथम सर्वेक्षण ए0 फ्यूहरर ने किया था[20]। पुन श्री कृष्णानद त्रिपाठी (गो0 वि0वि0) ने इस पुरास्थल का पुनर्सर्वेक्षण किया। श्री त्रिपाठी से विमर्श के पश्चात् मैने भी इस पुरास्थल का सर्वेक्षण किया, जहॉ मुझे ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर तथा कार्डेड वेअर के ठीकरो के साथ ही ब्लैक-स्लिप्ड, भूरे रग के पात्रो के ठीकरे (पतली और मोटी गढन के) तथा एन0बी0 पी0 के टुकडे भी उपलब्ध हुये। यहॉ मध्यकालीन ईटो के टुकडे भी बिखरे हुए मिले थे।

इस पुरास्थल का नाम 'धुरियापार' कौशिक क्षत्रिय राजा धूरचन्द्र के नाम पर पडा है। धूरचन्द्र ने 14वी शदी के मध्य मे यहॉ किलेबन्दी कर अपना शासन स्थापित किया था[21]। धुरियापार का उत्खनन बी0 एच0 यू0 के प्राचीन इतिहास विभाग के प्रो0 पुरूषोत्तम सिह ने किया है। यह उत्खनन सीमित पैमाने पर सम्पन्न हुआ, जिसका सक्षिप्त विवरण प्राग्धारा अक-2 मे दिया गया है[22]।

धुरियापार के उत्खनन मे कुल चार सास्कृतिक कालो के अवशेष उपलब्ध हुए। प्रथम काल का समय लगभग 1300 बी0 सी0 से 600 बी0 सी0 निर्धारित किया गया है। गोरखपुर परिक्षेत्र मे ताम्रपाषाणिक सस्कृति के प्रारम्भ का समय 1500-1400 बी0 सी0 निर्धारित किया गया है। अतएव धुरियापार के प्रथम काल का

सम्बन्ध ताम्रपाषाणयुग से जोडा जा सकता है। स्पष्ट है कि सोहगौरा सस्कृति के द्वितीय–तृतीय काल का विस्तार यहॉ भी हुआ है।

प्रथम काल के पुरावशेषो मे मुख्य रूप से श्वेत रेखाओ से युक्त ब्लैक एण्ड रेड वेअर है (रेखाचित्र सख्या–22)। इस पात्र परम्परा के पात्रो मे साधार कटोरे (Pedastal bowl), तसले और कलश विशेष उल्लेखनीय है। यहॉ से ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, ग्रे वेअर, तथा रेड वेअर (लाल रग के पात्र) के अवशेष भी उपलब्ध हुए है। ब्लैक–स्लिप्ड पात्रो मे मुख्यतया कटोरे और थालियॉ है। भूरे रग के पात्रो मे भी कटोरे और थालियॉ उल्लेखनीय है। रेड वेअर के पात्रो मे कटोरे और कलश मिले है। यहॉ से कुछ लघु आकार के पुरावशेष भी मिले है, जिनमे मिट्टी के मनके, गेद, हड्डी के बने बाणाग्र एव कघियॉ (Points and combs of bone) तथा बर्तनो के टुकडो की बनी चक्रिका (Pottery disc) है। यह सास्कृतिक जमाव स्पष्ट करता है कि यहॉ से प्राप्त पुरावशेष 'नरहन सस्कृति' से समानता रखते है, तथापि धुरियापार के प्राचीनतम स्तर से प्राप्त रस्सी की छाप वाले पात्रो के ठीकरे (रेखाचित्र सख्या–24, न0 18) एव हस्तनिर्मित कटोरे (ग्रे वेअर) इस बात की ओर सकेत करते है कि धुरियापार मे मानव आवास 'नरहन सस्कृति' से पहले ही स्थापित हुआ होगा। चूँकि धुरियापार का धरातल मानव एव प्रकृति के हाथो से डिस्टर्व हो चुका था, अतएव वहा विस्तृत पैमाने पर उत्खनन सम्भव नही था। अतएव कुछ सीमित पुरावशेषो के आधार पर धुरियापार की सास्कृतिक सीमाओ तक पहुॅचना सम्भव नही है। फिर भी नरहन की अपेक्षा इसकी प्राचीनता मे कोई सदेह नही रह जाता है।

1974 ई0 मे श्रीकृष्णानद त्रिपाठी ने बस्ती जनपद मे स्थित **लहुरादेवा** का सर्वेक्षण किया था। इसी क्रम मे 1975 मे सरयू के तटवर्ती क्षेत्रों का सर्वेक्षण भी उन्होने अपने सहयोगी श्री टी0 एन0 दूबे के साथ किया। इस सर्वेक्षण के दौरान **नरहन**, **मकन्दवार** और **मदरहा** से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा ग्रे वेअर के टुकडे उन्हे मिले थे। इस प्रकार सोहगौरा सस्कृति के द्वितीय एव तृतीय काल का विस्तार इन स्थलो पर दृष्टिगोचर होता है। श्री त्रिपाठी से विमर्श के पश्चात् मैने भी इन पुरास्थलो का पुनर्सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण के दौरान मुझे भी इन स्थलो के धरातल से इस प्रकार के ताम्रपाषाणिक अवशेष मिले। इन पुरावशेषो के आधार पर इन स्थलो का सम्बन्ध ताम्रपाषाण काल से जोडना सर्वथा यथेष्ट है। नरहन, मकन्दवार और मदरहा गोरखपुर जनपद मे है।

वर्तमान सतकबीरनगर जनपद मे स्थित बखिरा झील के किनारे, **बडगो**, **चिलवनखोर** **बाड़ोडीह**, **नेवास** तथा **गेनवरा** नामक पुरास्थलो से श्री कृष्णानद त्रिपाठी ने 1982–83 मे नवपाषाणिक एव ताम्रपाषाणिक पुरावशेष प्राप्त किए थे। इन पुरावशेषो की प्राप्ति के पश्चात् गोरखपुर परिक्षेत्र मे नवपाषाणिक सस्कृति से सम्बन्धित पुरास्थलो की श्रृखला मे वृद्धि हुयी। इस खोज का विवरण तत्कालीन स्थानीय समाचार पत्रो मे

व्यापक रूप से दिया गया। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय स्तर की अनेक सगोष्ठियो मे भी श्री त्रिपाठी ने इसका उल्लेख किया है[23]।

गोरखपुर मुख्यालय से 35 किलोमीटर दूर बखिराझील के निकट, गोरखपुर एव बस्ती जनपदो की सीमा पर गेनवरा नामक पुरास्थल स्थित है। यहॉ एक टीला है जो लगभग समतल हो चुका है। यहॉ से उपलब्ध लाल रग के खण्डित पात्रो के अवशेष, लेट नवपाषाण तथा ताम्रपाषाण युगीन लाल रग के पात्रो के समान है। अन्य पात्रो मे ब्लैक–एण्ड–रेड, वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर, तथा एन0बी0पी0 वेअर के टुकडे प्रमुख हैं। कुषाण कालीन मृण्मूर्तियो के खण्डित भाग भी उपलब्ध हुए है। किंतु अत्यधिक घिसे एव अस्पष्ट होने के कारण उनका विवरण देना सम्भव नही है।

इमलीडीह खुर्द ($26^0$30'30'' Lat $83^0$12'5'' Long) का प्रथम सर्वेक्षण गोरखपुर विश्वविद्यालय के श्री कृष्णानद त्रिपाठी ने किया था। पुन अप्रैल–मई 1991 मे धुरियापार के उत्खनन के दौरान बी0एच0यू0 के प्रो0 पुरूषोत्तम सिह ने इस पुरास्थल का अवलोकन किया। इस टीले का कुछ भाग कृषि– कार्य के द्वारा नष्ट का हो चुका है। शेष तीन चौथाई हिस्से पर ग्रामीणो ने अपना घर बना लिया है।

यह पुरास्थल गोरखपुर–मार्ग पर सिकरीगज से लगभग 1 कि0मी0 उत्तर–पश्चिम दिशा में अवस्थित है। इसका विस्तार लगभग 6–7 हेक्टेयर है। वर्तमान समय मे इमलीडीह ग्राम टीले के पूरब मे विद्यमान है। सर्वेक्षण के दौरान शोधकर्ता को धरातल से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, कार्डेड–वेअर, ब्लैक स्लिप्ड (प्लेन एव पेन्टेड), भूरे रग के पात्रो तथा एन0 बी0 पी0 वेअर के ठीकरे उपलब्ध हुए है।

मार्च–मई, 1992 मे इस पुरास्थल का उत्खनन बी0एच0यू0 के प्रो0 पुरूषोत्तम सिह ने सीमित पैमाने पर किया था[24]। उत्खनन के बाद यहा जो पुरावशेष उपलब्ध हुए, उनके आधार पर इस सस्कृति के द्वितीय काल का सम्बन्ध 'नरहन सस्कृति' से जोडा गया। यहा तीन सास्कृतिक अनुक्रम मिले, जिसमे द्वितीय सस्कृति ताम्रपाषाणिक है। यह नरहन सस्कृति की समकालिक है, जिसका समय 1300 बी0सी0 से 800 बी0 सी0 के मध्य चलता रहा। इस प्रकार इमलीडीह का द्वितीय काल विशुद्धत ताम्रपाषाणिक है।

द्वितीय काल मे मिट्टी के दो क्रमिक फर्शो पर भवन–निर्माण के साक्ष्य मिले है। इसके अतिरिक्त अनेक स्तम्भ–गर्त (Post-Hols) और चूल्हे या भट्ठियो के प्रमाण मिले हैं। इस युग की मुख्य पात्र–परम्परा (रेखाचित्र सख्या 16, 17) श्वेत चित्रित काले एव लाल रग के पात्र हैं, जो कि नरहन की प्रमुख पात्र–परम्परा है। यहॉ से 30 कि0 मी0 पूर्व–उत्तर–पूर्व मे नरहन अवस्थित है।

ध्यातव्य है कि नरहन के उत्खनन मे उपलब्ध, श्वेत, चित्रित ब्लैक-एण्ड रेड वेअर आकिक दृष्टि से इमलीडीह की अपेक्षा अधिक है। इसके अतिरिक्त इमलीडीह मे यह पात्र परम्परा नरहन की अपेक्षा कुछ विन्दुओ पर भिन्न है।

1 इमलीडीह मे यह पात्र–परम्परा केवल रूक्ष और मध्यम गढन (Coarse and medium fabrics) की है।

2 मध्यम गढन के ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के पात्र नरहन की अपेक्षा मोटे और बडे है। साथ ही ये मृद्भाण्ड कुछ पुराने भी प्रतीत होते है। मृद्भाण्डो के निमित्त तैयार की गयी मिट्टी मे सालन (Degraissant) के रूप मे प्राय धान की भूसी एव अन्न के कुछ टुकडे भी दिखायी पडते है। पात्रो को पकाने का बाद उन पर धान की भूसी की छाप दृष्टिगोचर होती है।

3 नरहन मे, रगडकर चिकने एव चमकीले बनाए गए ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर, एक दर्जन से अधिक नही है, जबकि इमलीडीह मे इनकी सख्या अपेक्षाकृत अधिक है। कुछ कटोरो (सामान्य एव गोडेदार) के बाह्य भाग पर लगे हुए स्लिप उधड गये है, और उनके नीचे का भाग चिकना (Smooth) दिखायी पडता है।

4 गोडेदार कटोरो के गोडो मे दो छिद्र बने हुए है। सम्भवत. इस्तेमाल के उपरान्त किसी कील के सहारे इसे ऊपर टॉग दिया जाता रहा होगा। इस तरह के पात्र नरहन मे नही मिले है।

5 यहॉ पर ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के पात्रो मे चित्रण अपेक्षाकृत कम है। नरहन मे चित्रित पात्रो की सख्या ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर का 20 प्रतिशत है, जबकि इमलीडीह मे ये पात्र 1 प्रतिशत से भी कम है। पात्रो पर चित्रण अभिप्राय रेखाओ के रूप मे सजोया गया है। कुछ पात्रो पर यह चित्रण दोनो तरफ मिलता है।

6 यहॉ के कटोरे नरहन की अपेक्षा छिछले है, जो प्लेट या तश्तरीनुमा दिखते है।

इसके अतिरिक्त यहॉ से अत्यन्त निम्नकोटि के ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के अवशेष मिले है। इस पात्र–परम्परा मे बहुत मोटी बारी वाले कलश बहुतायत से मिले है। ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर के अतिरिक्त यहॉ द्वितीय काल से ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर और प्लेन-रेड वेअर भी प्राप्त हुए है। रेड-स्लिप्ड वेअर इमलीडीह मे नही मिला है, जबकि नरहन मे अत्यत अल्प मात्रा मे मिला है।

जनपद मुख्यालय से लगभग 35 कि0मी0 दक्षिण खजनी–उरुवा–गोला राजमार्ग पर कुआनो के वाम तट पर सिकरीगज, के टीले (सिकरीडीह) से शोधकर्त्ता को ताम्रपाषाणिक एव प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के पात्रावशेष (रेखाचित्र सख्या–25) मिले है। अतएव इन पुरावशेषो के आलोक मे कहा जा सकता है कि यह पुरास्थल ताम्रपाषाण काल एव प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग के लोगो की क्रीडास्थली रहा होगा।

प्रारम्भिक लौह कालीन संस्कृति

लोहे की बहुआयामी उपयोगिता एव मानव सभ्यता के बहुमुखी विकास मे इसकी भूमिका एव महत्त्व स्वत सिद्ध है। लौह तकनीक के प्रचलन के फलस्वरूप विविध क्षेत्रो मे उल्लेखनीय प्रगति हुयी। यद्यपि लौह तकनीक आज मानव जीवन से अभिन्न रूप से जुडी हुयी है, फिर भी इसका सर्वप्रथम प्रचलन कब और कहाँ पर हुआ, यह प्रश्न अभी तक ठीक से सुलझाया नही जा सका है। लोहे को खान से निकालने तथा धातु शोधन की प्रक्रिया का सर्वप्रथम प्रचलन सम्भवत एशिया माइनर (टर्की) अथवा काकेशस के क्षेत्र मे हुआ[25]। लगभग 1200 ई0 पू0 मे हित्ती साम्राज्य के अध पतन के पश्चात् लौह तकनीक के कारीगर आजीविका की तलाश मे सीमावर्ती क्षेत्रो मे गये, जहाँ उन्होने अपने इस तकनीकी ज्ञान का प्रचार–प्रसार किया।

भारत मे लोहे का ज्ञान कब हुआ? इसका ठीक–ठीक निर्धारण नहीं हो सका है। फिर भी विगत तीन–चार दशको मे देश के विभिन्न क्षेत्रो मे जो पुरातात्त्विक अन्वेषण और उत्खनन हुए है, उनसे लोहे की प्राचीनता के सम्बन्ध मे हमारी जानकारी मे कुछ वृद्धि हुयी है। पहले विद्वानो की मान्यता थी कि आर्यो के माध्यम से भारत मे लोहे का ज्ञान हुआ। क्योकि ऋग्वेद मे 'अयस' शब्द का उल्लेख मिलता है, जिसे लोहा समझ लिया गया। बाद के अध्ययनो से ज्ञात हुआ कि 'अयस' शब्द धातु के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। विगत् तीन–चार दशको मे ऊपरी गगा–घाटी एव दोआब, पूर्वी भारत (मध्य गगा–घाटी), मध्य भारत एव दक्षिण भारत के इन चार क्षेत्रो से प्राप्त पुरातात्त्विक साक्ष्यो की समीक्षा के पश्चात् मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि भारत मे लगभग 1000 ई0 पू0 मे लोहे की जानकारी हो चुकी थी।

लगभग चार दशक पहले उत्तरी भारत मे एन0बी0पी0 मृद्भाण्डो के साथ लोहे के उपकरण भी मिले थे। इस आधार पर लोहे की प्राचीनतम सीमा रेखा 600 बी0 सी0 निर्धारित की गई थी। आलमगीरपुर के उत्खनन मे चित्रित धूसर मृद्भाण्डो के साथ लोहे के उपकरण भी मिले है। अतरंजीखेडा, अहिच्छत्र, नोह, बटेश्वर, अल्लापुर (मेरठ) आदि पुरास्थलो से भी इस तरह के साक्ष्य उपलब्ध हुए है[26]। चित्रित धूसर पात्रपरम्परा की तिथि 9वी–8वी शताब्दी ई0 पू0 निर्धारित की गयी है। यह तिथि रेडियो कार्बन तिथियों के आधार पर निर्धारित की गयी है। पुरातात्त्विक साक्ष्यो के आधार पर लगभग 1000 ई0 पू0 के आस–पास

इसका तिथिक्रम प्रस्तावित किया जा सकता है। उल्लेखनीय है कि राजस्थान के नोह और जोधपुरा नामक पुरास्थलो से चित्रित धूसर–पात्र परम्परा की पूर्ववर्ती, ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर (कृष्ण–लोहित) के स्तर से भी लौह उपकरण मिले है। अतएव उत्तरी भारत के कुछ क्षेत्रो मे लोहे की प्राचीनता 1000 ई0 पू0 से भी पहले तक प्रस्तावित की जा सकती है।

चिराँद, सोनपुर, पाण्डुराजारधिवि और महिषादल आदि पूर्वी भारत के पुरास्थलो से भी ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर (कृष्ण लोहित पात्र परम्परा) के साथ लोहे के उपकरण उपलब्ध हुए है। रेडियो कार्बन तिथियो के आधार पर इस क्षेत्र मे लगभग 750 ई0 पू0 की तिथि, लौह तकनीक के प्रचलन के लिए प्रस्तावित की गयी है।

भारत भूमि के विविध क्षेत्रो मे लौह तकनीक के प्रचलन के पुरातात्त्विक साक्ष्यो के आलोक मे कहा जा सकता है कि, यहाँ प्रथम सहस्राब्दी ई0 पू0 के प्रारम्भिक चरण मे लोहे के उपकरणो का प्रचलन हो गया था। भारत मे लौह तकनीक के प्रसार से सम्बद्ध अनेक प्रश्न स्वभाविक रूप से उठ खडे होते है। यहाँ इन प्रश्नो का उल्लेख करना यथेष्ट नही है। कुछ पुराविदो ने सम्भावना व्यक्त की है कि प्राचीन भारत की द्वितीय नगरीय क्रान्ति' जो छठी शताब्दी ई0 पू0 मे गगा घाटी मे हुई थी, वह लौह तकनीक के प्रसार पर ही विशेष रूप से आधारित थी[27]।

कृषि–कार्य मे लोहे के उपकरणो के प्रयोग के फलस्वरूप मध्य गगा घाटी की कछारी मिट्टी वाले क्षेत्रो मे सफलता पूर्वक खेती करना सभव हो सका। गागेय क्षेत्र के सघन वनो को साफ करके धान, गन्ना, कपास, तथा गेहूँ, जौ आदि की खेती बडे पैमाने पर की जाने लगी। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र लौह तकनीक से प्रभावित होने लगा था।

गोरखपुर परिक्षेत्र मे लौहकाल का प्रारम्भ, 800–900 ई0 पू0 के आस–पास हुआ होगा। सोहगौरा के उत्खनन मे 7वी शताब्दी के आसपास लौह अवशेष मिले है। लेकिन गोरखपुर विश्वविद्यालय के श्री कृष्णानद त्रिपाठी की मान्यता है कि इस परिक्षेत्र में 1000 ई0 पू0 के आसपास लौह काल का प्रारम्भ हुआ[28]।

गोरखपुर जनपद के नरहन नामक पुरास्थल के उत्खनन मे, **तृतीय काल** से लोहे एव ताँबे के बने हुए उपकरण सयुक्त 'रूप से मिले है। नरहन के तृतीय काल का समय 600 ई0 पू0 से 200 ई0 पू0 के बीच है[29]। जनपद के अन्य क्षेत्रो मे लौह अवशेषो की प्राचीनता लगभग 900–1000 ई0 पू0 तक जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि नरहन मे ताम्र एव लौह उपकरणो का प्रचलन कुछ दिन तक साथ–साथ रहा।

सरयूपार क्षेत्र मे रामग्राम, देवदह, पिकलीकानन, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा (मानचित्र सख्या–3) आदि पुरास्थलो का सम्बन्ध लौहयुगीन, सस्कृति से जोडा जा सकता है। ध्यातव्य है कि इन पुरास्थलो की पहचान विवादग्रस्त है।

कनिघम महोदय, कौडीराम के निकट **देवकली** नामक स्थान से रामग्राम की पहचान करते है। कार्लायल बस्ती जिले के मुडेरवा थानान्तर्गत **रामपुर** नामक स्थान से रामग्राम की पहचान करते है। प्रो0 शिवाजी सिह महराजगज जनपद के **मनियारभार** से रामग्राम की पहचान करते है। इधर कुछ नेपाली विद्वान् इसे नेपाल के अन्दर ही खोज रहे है। दिशा, दूरी, चीनी यात्रियो (फाह्यान एव ह्वेनसाग) के यात्रा–वृत्तात तथा बौद्धग्रन्थों मे उल्लिखित भौगोलिक स्थिति के आधार पर श्री कृष्णानद त्रिपाठी एव श्री विजय कुमार (पुलिस अधीक्षक महराजगज) ने महराजगंज के उत्तर, चौक से पश्चिम लगभग 4 कि0 मी0 दूर **नाथनगर** गाव के समीप, जगल में 35 फीट ऊँचे स्तूपाकार सरचना को रामग्राम का स्तूप होना मानते है। यहॉ से 1 कि0मी0 की दूरी पर नगर की बस्ती का अवशेष इन्हे मिला है, जो जगल झाडियो के कारण स्पष्ट दिखायी नही देता है। यहॉ पर छोटे बडे सात स्तूपाकार टीले व इतनी ही पुस्करणियॉ (पोखरे) विद्यमान हैं, जो भूरे बलुआ पत्थर से निर्मित है। यहॉ खास बात यह है कि गुप्तकालीन विष्णु की दशावतार मूर्ति भी प्राप्त हो चुकी है। इसके अतिरिक्त मलवे मे बुद्धकालीन ईटे बिखरी पडी हैं। ऐसी ईटो का ढेर कमोवेश सभी टीलो पर है।ऐसा प्रतीत होता है कि बौद्धकाल मे यहॉ कोई बडी बस्ती रही होगी। इन सबके कारण इसे रामग्राम होने की सम्भावना बलवती होती है। अभिलेखो के मुताबिक तथागत के निर्वाण प्राप्ति के उपरान्त अस्थि–अवशेष के लिए उनके अनुयायियो मे विवाद हुआ, जिस पर कोलियो ने अपनी राजधानी रामग्राम मे बडी धूमधाम के साथ विशाल स्तूप का निर्माण करवाया। कालान्तर मे देवदह व रामग्राम मे अनेक स्तूप बने।

देवदह की पहचान अधिकांश विद्वान् **बनरसिहा कला** से करते है। यहॉ पर भारतीय पुरातत्त्व विभाग (पटना सर्किल) के श्री लाल चन्द्र सिह द्वारा उत्खनन कार्य किया गया है, लेकिन कोई स्पष्ट प्रमाण नही मिल सका। वर्तमान समय में श्री कृष्णानद त्रिपाठी एवं श्री विजय कुमार (पुलिस अधीक्षक महराजगंज) का इस खोज की दिशा में प्रयास चल रहा है। कृष्णानद त्रिपाठी का मानना है कि नौतनवा के निकट लोधसी (जहॉ पर बुद्धकालीन अवशेष मिल रहे है) मे एक बडा टीला है। इसके अतिरिक्त **सोनपिपरी**, जो रोहिनी नदी के पश्चिमी तट पर स्थित है, बहुत ऊँचा टीला है। यहॉ पर श्री त्रिपाठी को 1973 मे गेनवरिया के प्रथम काल के पात्रो के समान पात्र भी मिले थे। इन्ही आधारो पर इन दोनो टीलो मे से किसी एक का सम्बन्ध देवदह से होना चाहिए, जो लुम्बिनी के मार्ग पर स्थित है और लुम्बिनी के निकट भी है।

पिकलीकानन की पहचान के सम्बन्ध मे अतिम रूप से कुछ कहना कठिन है, क्योकि इस पुरास्थल के पहचान से सम्बद्ध विविध विचार मात्र सम्भावनाओ पर आधारित है। इन सम्भावनाओ मे कितना बल है, इसका निर्धारण भावी अनुसधानो एव उत्खननो के द्वारा ही सम्भव है। कुछ विद्वान् पिकलीकानन की पहचान गोरखपुर के झगहा थाना के निकट **राजधानी** नामक स्थल से कर रहे है। गोरखपुर विश्वविद्यालय के श्री कृष्णानद त्रिपाठी महराजगज जनपद मे **निचलौल–मोरवन–बसवार** के टीले से पिकलीकानन की पहचान कर रहे है। यह स्थल महराजगज जनपद मे अवस्थित मिठौरा से 2 कि0मी0 पश्चिम दिशा मे है। श्री त्रिपाठी इसी स्थल को चन्द्रगुप्त मौर्य का पैतृक स्थल मानते है।

कुशीनारा एव पावा की पहचान वर्तमान समय मे हो चुकी है। प्रारम्भ मे इन दोनो पुरास्थलो का तादात्म्य विवादग्रस्त था। कुशीनारा एव पावा प्राचीन काल मे मल्लो की राजधानी के रूप मे विख्यात थे। महाभारत मे मल्ल[30] तथा दक्षिण मल्ल[31] का पृथक्–पृथक् उल्लेख किया गया है।

रिज डेविड्स ने कुशीनारा का तादात्म्स शाक्य भूमि के पूर्व तथा वज्जियो के उत्तर के भू–भाग से स्थापित किया था। स्मिथ ने किसी समय इसे नेपाल मे स्थित माना था। किन्तु अब इसका तादात्म्य निर्विवादत देवरिया से लगभग 34 कि0 मी0 उत्तर, कसया और विशेषकर उसके निकट स्थित अनुरूधवा गॉव के टीले से किया जाता है। यहॉ से एक ताम्रपत्र भी मिला है, जिस पर *'परिनिर्वाण चैत्य ताम्र पट इति'* लेख उत्कीर्ण है। यहॉ से प्राप्त कुछ मुद्राओ पर *'श्री महापरिनिर्वाण बिहारे भिक्षुसघस्य'* लेख भी मिलता है। फाह्यान ने कुशीनगर को वैशाली से 25 योजन दूर बतलाया है[32]।

मल्लो की दूसरी राजधानी पावा का तादात्म्य कसया से लगभग 19 कि0मी0 उत्तर–पूर्व स्थित देवरिया जिले (वर्तमान कुशीनगर जनपद) के पडरौना से किया गया है। कुछ विद्वानो ने बिहार शरीफ के निकट स्थित पावापुरी को 'पावा' बताया है। गोरखपुर विश्वविद्यालय मे प्राचीन इतिहास एव पुरातत्व विभाग के पडित कृष्णानद त्रिपाठी का दावा है कि पिछले पन्द्रह वर्षो के सर्वेक्षण और अध्ययन के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि 'पावा' किसी एक टीले मे नही, बल्कि सठियाव (फाजिलनगर) के चतुर्दिक प्राचीन टीलो मे इराकी विभिन्न बस्तियॉ है। इसके समर्थन मे वे विभिन्न साक्ष्य भी पेश करते हैं, और उनका कहना है कि इन टीलो मे विस्तृत उत्खनन तथा उनका अध्ययन किये जाने की जरूरत है।

पावा की ऐतिहासिक महत्ता, बुद्ध और महावीर स्वामी के साथ उसका नाम जुडे होने की वजह से है। ऐतिहासिक एव सास्कृतिक दृष्टि से पूर्वी उत्तर प्रदेश का सरयूपार क्षेत्र, प्राचीन समय से भारत का महत्त्वपूर्ण अग रहा है। विश्व के प्राचीनतम गणराज्यो के केन्द्र कपिलवस्तु, रामग्राम, देवदह, पिकलीकानन, कुशीनारा और पावा इसी क्षेत्र मे स्थित थे।

पावा मल्ल गणराज्य का प्रमुख केन्द्र था, जहॉ बुद्ध ने अतिम पिण्डपात ग्रहण किया, जो उनके परिनिर्वाण का कारण बना। बुद्ध ने ही इसे बौद्ध तीर्थ घोषित कर दिया था। 24 वे तीर्थकर महावीर स्वामी जम्भिग्राम मे ज्ञान प्राप्ति के बाद सीधे पावा पहुँचे और वहॉ यज्ञरत् इन्द्रभूति प्रभृति कई ब्राह्मण, शास्त्रार्थ से प्रभावित होकर जैनधर्म मे दीक्षित हो गए थे। महावीर स्वामी ने प्रथम उपदेश पावा मे ही दिया। उन्होने अपने सघटन को ग्यारह समूहो मे विभक्त कर इन ग्यारह ब्राहमणो को ही गणधर नियुक्त किया। इस तरह जैन धर्म का प्राथमिक सघ या सघटन पावा मे ही अस्तित्व मे आया था। पावा की सर्वाधिक ख्याति महावीर स्वामी के कारण ही हुयी। कल्पसूत्र के अनुसार महावीर स्वामी का निर्वाण कार्तिक अमावस्या की रात्रि मे मध्यमा पावा मे हुआ था।

बुद्ध एव महावीर के कारण पावापुरी अत्यन्त पावनपुरी थी, जहॉ एक साथ वैदिक मत्रो के साथ ही महावीर एव बुद्ध के उपदेश भी चल रहे थे। यहॉ श्रमण एव वैदिक परम्परा एक साथ दिखायी देती है। वह पावा आज कहॉ है? श्री कृष्णानद त्रिपाठी के अनुसार तेरहवी सदी मे मुस्लिम आक्रमण के भय से पावानगर से पलायित जैनियो ने बिहार शरीफ के निकट पावापुरी की स्थापना कर डाली। 1203 ई0 से पहले यहॉ ऐसा कोई अवशेष नही है। श्री त्रिपाठी का कहना है कि उस समय के मदनकीर्ति ने अपने लेख मे उस समय के 26 जैन तीर्थों का वर्णन करते हुए पावापुरी एव वहा की कुछ मूर्तियो का उल्लेख किया। इस लेख ने ही महावीर की निर्वाण स्थली के बारे मे भ्राति को जन्म दिया।

कृष्णानद त्रिपाठी के अनुसार, मगध के निकट पावा होने का प्रश्न ही नही है। वृद्ध एव रोगी बुद्ध एक ही दिन मे बिहार शरीफ के निकट स्थित पावा से कुशीनारा कैसे पहुँचे? अतिसार रोग से पीडित बुद्ध के लिए यह सम्भव नही था। बुद्ध को पावा एव कुशीनगर के मध्य मात्र दो नदियॉ मिली थी, जबकि बिहारशरीफ और कुशीनारा के मध्य अनेक नदियॉ है। अत बिहार शरीफ के निकट का पावापुरी श्रद्धालुओ का पावापुरी है, प्राचीन पावा नही है।

पिछली शताब्दी के अतिम दशक मे, जनरल कनिघम ने पडरौना को पावा घोषित किया था और कई विद्वानो ने इस मत का समर्थन भी किया। लेकिन कनिघम के सहयोगी ए0 सी0 एल0 कार्लायल ने दिशा एव दूरी के आधार पर कनिघम के मत का खण्डन करते हुए, सठियाव (फाजिलनगर) टीले को पावा के रूप मे स्वीकार किया। कार्लायल का तर्क था कि सठियाव वैशाली मार्ग पर स्थित है, जबकि पडरौना की दिशा विपरीत है। सठिगाव को चैत्यग्राम का श्रेष्ठिग्राम माना जाता था।

1980–81 मे गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से फाजिलनगर मे उत्खनन कार्य हुआ। उत्खनन कार्य, फाजिलनगर और सठियाव उत्खनन के निदेशक प्रो0 शैलनाथ चतुर्वेदी और सहनिदेशक दयाराम त्रिपाठी की देखरेख मे किया गया। कार्लायल जहाँ स्तूप होने का दावा करते थे, वहाँ गुप्तकालीन अग्रहार बस्ती का अवशेष प्रकाश मे आया। यहाँ से दो मुहरे मिली है, जिनमे से एक पर *'श्रेष्ठिग्राम ग्रहारस्य'* तथा दूसरी पर ब्रह्मा की आकृति के साथ *'ग्रेषूदक चातुर्विद'* लेख अकित था, जिससे साफ हुआ कि सठियाँव, श्रेष्ठिग्राम था और फाजिलनगर उसका अग्रहार स्थल।

इसके बाद अनेक विद्वानो ने कहना शुरू किया कि सठियॉव और फाजिलनगर मे पावा के प्रमाण नही हैं। ऐसी स्थिति मे प्रश्न उठता है कि पावा कहॉ है? प्रो0 एस0 एन0 चतुर्वेदी, सठियाव को ही पावा मानते रहे है, पर जब स्तूप नही मिला तो उन्होने और उनके समर्थको ने मौन साध लिया। प्रो0 चतुर्वेदी के ही सहयोगी पडित कृष्णानद त्रिपाठी के अनुसार 'पावा' इसी क्षेत्र मे है, और उन्होने पावा के स्तूप की खोज धारमठिया के निकट 'गगेलवा' नामक स्थान पर की है। कई जोडी द्वार तथा एक जीर्ण विशाल स्तूप भी खोज मे मिला है। पडित त्रिपाठी का मानना है कि पावा का धार्मिक केन्द्र धारमठिया का टीला है। यही बुद्ध का 'पावा' है। इस टीले के चतुर्दिक पडित त्रिपाठी ने अपने सर्वेक्षण मे सपही से अष्टभुजी विश्व रूप विष्णु की विशाल प्रतिमा की पहचान की थी, जिनके सौम्य मुख के दोनो तरफ बाराह एव सिह की मुखाकृति और साथ ही मत्स्य की भी आकृति है। लक्ष्मी के साथ सरस्वती की जगह शख, पुरूष आदि का अकन है। इसी तरह की 2 ½ मी0 ऊँची एक अन्य विश्वरूप की प्रतिमा, जो पालयुगीन काले पत्थर की है, शिवसरया ग्राम मे स्थित है। शिवसरया इस स्थल से कुछ दूर अवश्य है, पर उस प्रतिमा का सम्बन्ध इस स्थल और इस प्रतिमा से है। इसमे मत्स्य का अकन नही है, पर सौम्य रूप के दोनो तरफ सिह एव वाराह का अकन है। दाये लक्ष्मी, बाए सरस्वती तथा अन्य देवी देवताओ का अकन है। धारमठिया के निकट उजारनाथ टीले से पार्वती के दो पुत्रो के साथ गणेश की नृत्य-मुद्रा मे प्रतिमाए पडी हैं। इनमे से एक अष्टभुजी है, दूसरी सोलहभुजी। इस धार्मिक स्थल के चतुर्दिक टीलो पर गुप्तोत्तर काल एव पूर्व मध्यकाल की कई सूर्य प्रतिमाएं, तुरपट्टी, छहूँ, देवलवृत्त तथा धारमठिया आदि से प्राप्त हुयी है। अत धारमठिया पावा का धार्मिक उपनगर था।

पडित कृष्णानद त्रिपाठी के अनुसार पावा के राजनीतिक केन्द्र के अवशेष के उसमानपुर (बीरभारी), खुशियाल टोला आदि टीलो मे छिपे है। यहाँ के विशाल टीलो के चतुर्दिक खाई, प्राचीन दीवारे, कूए तथा सडक के अवशेष दिखायी दिये है। श्री त्रिपाठी के सहायक, डाक्टर श्यामसुन्दर सिह को उसमानपुर

(वीरभारी) टीले से मूर्तियाँ, सिक्के तथा मृण्मुद्राए मिली है। ये पुरावशेष इगित करते है कि पावा की राजधानी इन्ही टीलो मे छिपी है, और जब तक इनका वैज्ञानिक ढग से उत्खनन नही हो जाता, तब तक इतने मे ही सतोष करना पडेगा।

पडित त्रिपाठी के अनुसार महावीर स्वामी का निर्वाण–स्थल सठियाव ही है, क्योकि यह धारमठिया एव उसमानपुर के मध्य मे है। यही मध्यमा पावा है। महावीर स्वामी का निर्वाण यही हुआ था। पावा के श्रेष्ठियो की बस्ती ही मध्यमा पावा थी। आज भी यहाँ अधिकाशत श्रेष्ठी जैनी है। कृष्णानद त्रिपाठी के अनुसार अभी तक प्राय सभी विद्वान् पावा को किसी एक टीले मे खोजते रहे है, जबकि पावा की विभिन्न बस्तियाँ, सठियाँव (फाजिलनगर) के चतुर्दिक प्राचीन टीलो मे छिपी है। मरचहियाडीह, नदवाविशुनपुर, धारमठिया, उसमानपुर तथा घोडघटप के मध्य महावीर स्वामी की निर्वाण स्थली, 'मध्यमा पावा' सठियाँव के टीले मे छिपी है। पावानगर की राजधानी उसमानपुर टीले मे है। श्रेष्ठिग्राम के साथ सठियाव को कार्लायल ने खुद समीकृत किया था। पडरौना की खुदायी हो चुकी है। वहाँ पावा से सम्बन्धित कुछ नही है, मात्र कुछ जैन प्रतिमाओ के अतिरिक्त। चन्द्रकेतु ने मल्ल गणराज्य की स्थापना की थी। फाजिलनगर क्षेत्र मे आज भी मल्लूडीह, चन्द्रौटा जैसे आधुनिक ग्राम, पुराने नामो को सजोए हुए है। अत सठियाँव क्षेत्र ही पावा है। बौद्धग्रन्थो के अनुसार कुशीनारा से पावा के बीच 18 किलोमीटर की दूरी है। सठियाँव के टीलो से कुशीनगर की दूरी भी लगभग यही है। पडित त्रिपाठी के अनुसार पडरौना को बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद पदद्रोण ने बसाया था।

पडित त्रिपाठी के अनुसार कुछ पुराविद्, जो अपने को पावा से जोडना चाहते है, मनगढत ढग से वीरभारी टीले को पावा कह रहे है, जबकि ये दोनो पृथक् है। वाणिज्य–ग्राम की स्थिति बिहार के अन्तर्गत थी। अत. इस तरह का तर्क असगत है।

कपिलवस्तु की पहचान के विषय मे विद्वान् प्रारम्भ मे एकमत नही थे। लेकिन वर्तमान समय मे इसकी पहचान हो चुकी है। कपिलवस्तु शाक्यो की राजधानी थी। शाक्य नेपाल की सीमा पर हिमालय की तलहटी मे आवासित थे। इनके पूर्व मे रोहिणी तथा पश्चिम–दक्षिण मे राप्ती नदी प्रवाहित थी। इस प्रकार इनका कीडाक्षेत्र राप्ती एव रोहिणी की उपत्यका मे प्रसरित था। शाक्यो की राजधानी कपिलवस्तु (वर्तमान कपिलवस्तु) गौतम बुद्ध की जन्मस्थली लुम्बिनी से लगभग 13 कि0 मी0 दूर रोहिणी तट पर स्थिति थी। महाभारत के वनपर्व मे कपिलावट नामक तीर्थ का उल्लेख मिलता है[33]। हेमचन्द्र राय चौधरी इस कपिलावट का तादात्म्य पालिग्रन्थो के कपिलवस्तु से करते है। स्मिथ कपिलवस्तु को वर्तमान बस्ती जिले के पिपरहवा से, पर रिज डेविड्स, मुकर्जी, राहुल साकृत्यायन, भरत सिह उपाध्याय, बी0 सी0 लॉ प्रभृति विद्वान् इसे

पिपरहवा से लगभग 16 कि0मी0 उत्तर–पश्चिम स्थित **तिलौराकोट** के भग्नावशेषो से समीकृत करते है। स्मिथ ने मुकर्जी से सहमति व्यक्त करते हुए एक नयी व्याख्या प्रस्तुत की। इस व्याख्या के अनुसार स्मिथ ने दो कपिलवस्तु क अस्तित्व को स्वीकार किया। पिपरहवा, फाह्यान का कपिलवस्तु है, जबकि तिलौराकोट ह्वेनसॉग का। इस घोषणा से कपिलवस्तु के पहचान की समस्या और जटिल हो गयी। कपिलवस्तु के तादात्म्य के सम्बन्ध मे रिज डेविड्स ने एक नया समाधान प्रस्तुत किया, जिसके अनुसार तिलौराकोट प्राचीन कपिलवस्तु है तथा पिपरहवा नवीन कपिलवस्तु है (पेप्पे द्वारा पिपरहवा अन्वेषण के आधार पर)। उनका कथन है कि नये कपिलवस्तु का निर्माण विड्डूभ द्वारा प्राचीन कपिलवस्तु के नष्ट किये जाने के बाद किया गया[34]।

कपिलवस्तु के निवासियो को शाक्य क्यो कहा गया? इसके उत्तर मे कुछ विद्वानो का तर्क है कि चूँकि ये शाकवन के निकट थे, इसलिए इन्हे शाक्य कहा गया। कपिल आश्रम के निकट होने के कारण ही शाक्य नगरी कपिलवस्तु के नाम से प्रसिद्ध हुयी थी। अश्वघोष ने सौदरनन्द मे इसका वर्णन किया है[35]।

बौद्ध ग्रन्थो मे शाक्य जनपद को अति विस्तृत बताया गया है। इसके अनुसार इसमे कुल 80,000 कुल या परिवार थे। कपिलवस्तु के साथ–साथ चातुमा, सामगाम, खोमदुस्स, सिलावती, मेदुलुम्प या उलुम्प, देवदह तथा सक्कर आदि नगर एव निगम भी शाक्यो के प्रदेश मे स्थित थे। शाक्यो की शासन–प्रणाली अत्यत प्रशसनीय थी। इनकी एक परिषद थी, जिसमे आवश्यक विषयो पर विमर्श किया जाताा था। बौद्ध ग्रन्थो से पता चलता है कि शाक्य कोशल के अधीन थे। महाभिनिष्क्रमण के पश्चात् बिम्बिसार से मिलने पर अपना परिचय देते हुए बुद्ध ने कहा था, "मै जन्म से शाक्य हूँ (साकिया नाम जातिया) किन्तु निवासी कोशल का हूँ (कोसलेषु निकेततिव)।" शाक्य अपने देश को कोशल का 'आज्ञा प्रवृत्ति स्थान' मानते थे, जिसका अर्थ ऐसा प्रदेश है, जहॉ कोशल शासको की आज्ञाये जारी की जायॅ।

प्रारम्भिक ऐतिहासिक कालीन संस्कृति (600 ई0 से 200 ई0 तक)

गोरखपुर परिक्षेत्र मे 600 ई0 पू0 से कुछ पहले से लेकर 200 ई0 तक (कुषाणकाल तक) बौद्ध कालीन नगरो के अवशेष यत्र–तत्र दिखायी देते है (मानचित्र स0–4)। इसी अवधि मे कुषाण कालीन ठप्पेदार, टोटीदार, सुराहीनुमा बर्तनो (लालरग) का प्रचलन शुरू हो जाता है और यह क्रम आगे भी कुछ दिनो तक चलता रहा। इस काल मे गोरखपुर परिक्षेत्र मे अनेक बौद्ध–स्थल थे, जहॉ बौद्ध–विहारो, चैत्यो, स्तूपो तथा सभा–भवनो का निर्माण, कुषाणकाल तक चलता रहा। रामग्राम, देवदह, पिकलीकानन, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा तथा ऐसे ही अनेक स्थलो पर बौद्धो के निवास करने के कारण बौद्ध–विहारों का निर्माण होता रहा। इस

समय बुद्ध एव अन्य देवी–देवताओ तथा लोक कलाओ से सम्बन्धित मूर्तियो एव खिलौनो का निर्माण भी हो रहा था।

'सोहगौरा सस्कृति' गोरखपुर परिक्षेत्र मे सॉस्कृतिक अनुकम का आधार प्रस्तुत करती है। क्योकि पूरे परिक्षेत्र मे एक मात्र यह पुरास्थल है, जहॉ से नवपाषाणकाल से लेकर मध्यकाल तक की सस्कृतियो के क्रमिक अवशेष उपलब्ध हुए है। इस पृष्ठाधार मे यह उल्लेखनीय है कि **यहॉ के चतुर्थ काल** से प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के अवशेषो के प्रमाण मिलने लगते है। यहॉ एन0 बी0 पी0 की तिथि 240±90, 590±110 ई0पू0 है[36]।

नरहन के तृतीय[37] एवं चतुर्थ[38] काल का सम्बन्ध क्रमश 600 ई0पू0 से 200 ई0पू0 तथा 200 ई0पू0 से 300 ई0 तक है। नरहन का चतुर्थ काल, प्रारम्भिक ऐतिहासिक तथा ऐतिहासिक सस्कृतियो का मिश्रण है, क्योकि यहॉ 300 ई0 तक के पुरावशेष मिलते है। यहॉ के तृतीय काल के पात्रो मे लाल, भूरे (पतले आकार) कृष्णलेपित तथा एन0 बी0 पी0 के टुकडे उपलब्ध हुए हैं। इस काल मे कार्डेड वेअर के भी टुकडे प्राप्त हुए है। इस प्रकार के टुकडे नवपाषाण कालीन स्तरो से प्राप्त होते है।

इस काल से कच्ची ईंटो के प्रयोग के साक्ष्य मिले है। इसके अतिरिक्त नरकट की छाप युक्त जली मिट्टी के खण्ड भी उपलब्ध हुए है। यहॉ से एक जार भी उपलब्ध हुआ है। इसी के साथ तॉबे की एक थाली भी मिली है। इस काल मे लोहे और तॉबे के उपकरण भी मिले है। मनके, चूडियॉ, मिट्टी की बैलगाडी तथा ताम्र का एक कास्ट सिक्का, जो वर्गाकार है, भी मिला है। अनाज के दाने भी उपलब्ध हुए है, जिनमे चावल, (Oryza-Sative) गेहूँ तथा जौ आदि मुख्य है।[38ए]

धुरियापार के द्वितीय काल का आरम्भ 600 ई0पू0 से होता है, जो 200 ई0पू0 तक चलता रहता है। तीसरा काल 200 ई0पू0 से 500 ई0 तक चलता है। यद्यपि प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग के अन्तर्गत 600 ई0पू0 से 200 ई0 तक का उल्लेख ही अभीष्ट है, फिर भी प्रसगत· इसमे लगभग तीन शताब्दियों के उस अतिरिक्त समयावधि को भी सदर्भित किया गया है, जिसे ऐतिहासिक युग(200 ई0 से 600 ई0) के अतर्गत होना चाहिए।

धुरियापार के द्वितीय काल की पहचान एन0बी0पी0 पात्र परम्परा से होती है, जो कि इस काल की प्रमुख मृद्भाण्ड परम्परा रही है[39]। यहॉ के द्वितीय एव तृतीय काल से रेड वेअर के पात्र भी मिले है (रेखाचित्र सख्या–28)

धुरियापार के तृतीय काल (200 ई0पू0 से 500 ई0) से मुख्यत लाल रग के पात्र, जिनमे बेसिन (तसले) तथा कलश के अतिरिक्त कुषाण एव गुप्त काल के भी कुछ अन्य पात्र-प्रकार उपलब्ध हुए है।

इमलीडीह के तृतीय काल का सम्बन्ध कुछ सीमा तक प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग से जोडा जा सकता है, क्योकि यहाँ तृतीय काल की समयावधि 800 ई0पू0 से 400 ई0पू0 के बीच है[40]। तृतीय काल की प्रारम्भिक सीमा गोरखपुर परिक्षेत्र मे लौहयुग की सस्कृति से सम्बन्धित है।

वर्तमान समय मे यहाँ टीले का कुछ भाग कृषि सम्बन्धी गतिविधियो के कारण बहुत हद तक क्षत विक्षत हो चुका है। इस काल की सर्वप्रमुख विशेषता ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर की अनुपस्थिति और रेड–वेअर की प्रमुखता है। इस काल मे प्रथम एव द्वितीय काल की अपेक्षा ब्लैक-स्लिप्ड वेअर मे क्रमश. बढोत्तरी हुयी है। अन्य पात्रावशेषो मे ग्रे–वेअर के कुछ ठीकरे भी इस काल से उपलब्ध हुए हैं। इसके अतिरिक्त एन0बी0पी0 का एकमात्र ठीकरा भी उपलब्ध हुआ है। इस काल मे जो सास्कृतिक अवशेष मिले हैं, उनके आधार पर इस काल की तुलना 'नरहन सस्कृति' के द्वितीय काल से की जा सकती है[41]।

जनपद के गोपालपुर नामक स्थल का सम्बन्ध प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल से जोडा जा सकता है। यह प्राचीन स्थल गोरखपुर-सिकरीगज-बडहलगज राजमार्ग पर (घाघरा नदी के वाम तट पर) 60 कि0मी0 दक्षिण स्थित है। यहाँ से ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर, एन0बी0पी0 वेअर तथा लाल रग के मृद्भाण्डो के अवशेष धरातलीय सर्वेक्षण मे उपलब्ध हुए है[42]। यहाँ से गुप्त कालीन रजत मुद्राओ की एक निधि भी प्राप्त हुयी है, जिसमे 16 गुप्तकालीन सिक्के है। इस स्थल की पहचान महाभारत मे उल्लिखित गोपालक राष्ट्र से की गयी है। चूँकि यहाँ से एन0 बी0 पी0 के अवशेष भी मिले है, इसलिए इस स्थल का समबन्ध एन0 बी0 पी0 काल से भी जोडा जा सकता है। यहाँ अनेक टीले है, जो वर्तमान समय मे क्षत–विक्षत हो चुके हैं। वर्तमान समय मे यहाँ कृषि–कार्य हो रहा है।

गोरखपुर–वाराणसी राजमार्ग पर बडहलगज से 4 कि0 मी0 पश्चिम, गोला मार्ग पर सड़क से लगभग 3 कि0 मी0 दक्षिण सरयू नदी के बाँए तट पर मकन्दवार नामक प्राचीन स्थल अवस्थित है। इस स्थल का प्रथम सर्वेक्षण गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के श्री के0 एन0 त्रिपाठी एवं टी0 एन0 दूबे के द्वारा किया गया[43]। यहाँ से भूरे रग के पात्र, ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर, एव लाल रंग के मृद्भाण्डो के ठीकरे प्राप्त हुए है। कुषाण एव गुप्तकालीन अवशेष भी यहाँ से मिले हैं। यहाँ पर प्राचीन ईटो के ढेर भी दिखायी देते है। इस स्थल से एम्फोरा नामक पात्र भी श्री दूबे को मिला था। सम्भवतः इसका

उपयोग जल या सुरा रखने के लिए किया जाता रहा होगा। यहॉ से कुषाण कालीन सिक्के भी मिले है। यहॉ रिंगवेल (Ring -Well) भी दिखायी पडा था, किन्तु वर्तमान समय मे दृष्टिगोचर नही हो रहा है।

जनपद मुख्यालय से लगभग 23 कि0मी0 दक्षिण, गोरखपुर–खजनी–गोला मार्ग पर भैसा बाजार से 2 कि0मी0 उत्तर–पूर्व मे **बदरा तिवारी** नामक पुरास्थल है। टीला ग्राम से पश्चिम दिशा मे सामान्य धरातल से लगभग 15 मी0 ऊॅचा है। यहॉ से ब्लैक–स्लिप्ड, एन0बी0 पी0 तथा रेड–वेअर के मृद्भाण्डो के ठीकरे प्राप्त हुए है। यहॉ खण्डित ईटो के टुकड़े यत्र–तत्र बिखरे हुए मिले है, लेकिन इन ईटो से निर्मित किसी भवन के साक्ष्य नही मिले। टीले पर वर्तमान समय मे कृषि–कार्य हो रहा है।

बढयापार, जनपद मुख्यालय से 30 कि0मी0 दक्षिण सिकरीगज–बडहलगज मार्ग पर स्थित है। यहॉ टीले पर नयी आबादी बस गयी है। टीला समतल हो चुका है। इस स्थल से प्राचीन मृद्भाण्डो के खण्डित भाग उपलब्ध हुए है[44], जिनमे ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर तथा एन0 बी0पी0 वेअर के अवशेष विशेष उल्लेखनीय है। यहॉ से गुप्त कालीन एव मध्यकालीन पशु एव मनुष्य की मृण्मूर्तियो के खण्डित अवशेष प्राप्त हुए है। इस प्रकार इस पुरास्थल से प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग से लेकर मध्ययुग तक के पात्रावशेष प्राप्त हुए है।

कोठा (निकट गगहा) ग्राम, गोरखपुर–कौड़ीराम–गजपुर मार्ग पर गजपुर से लगभग 3 कि0 मी0 दक्षिण, राप्ती के पश्चिम तट पर स्थित है। टीला ग्राम के उत्तर मे है, जो लगभग 15 कि0मी0 मे विस्तृत है। टीले की सामान्य धरातल से ऊॅचाई लगभग 5 मीटर है। टीला उत्तर–दक्षिण दिशा मे विस्तृत है। टीले पर आधुनिक मदिर एव मस्जिद है। स्थानीय लोगो को बरसात के दिनो मे अथवा खेतो की जुताई के समय, यहॉ से मृण्मूर्तियो के अतिरिक्त अन्य विविध प्रकार के पुरावशेष मिलते है। टीले पर कई छोटे–छोटे प्राचीन कूप है। यहॉ नॉद के छोटे–छोटे अवशेष देखने को मिलते है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये नॉद शराब बनाने की भठ्ठियो के रूप मे प्रयोग किए जाते रहे होगे। यहॉ से बुद्ध की एक मूर्ति भी मिली थी, लेकिन वर्तमान समय मे यह मूर्ति कही खो चुकी है। यहॉ के धरातलीय सर्वेक्षण मे ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड–वेअर, रेड वेअर एव ग्रे वेअर के पात्र विशेष रूप से मिले है। यहॉ से कृष्ण–लेपित मृद्भाण्ड का एक ऐसा टुकडा प्राप्त हुआ है, जिस पर काले रग की समानान्तर रेखाये चित्रित थी[45]।

सोनपिपरी नामक पुरास्थल, जनपद मुख्यालय से उत्तर, नौतनवॉ रेलवे स्टेशन से लगभग 5 कि0मी0 पूरब रोहिणी (रोहिन नदी) के तट पर अवस्थित है। बहुत सम्भव है कि नदी कभी टीले के समीप से ही बहती रही हो[46]। सामान्य धरातल से टीले की ऊॅचाई लगभग 8 मीटर है, जिसका ढाल पूरब दिशा की ओर है। धरातलीय सर्वेक्षण के दौरान यहॉ से ग्रे–वेअर, एन0 बी0 पी0 वेअर तथा ग्रे–एण्ड–ब्लैक वेअर

(भूरे–काले रग के लघ्वाकार पात्र) के प्रमाण यहॉ से मिले है। गेनवरिया टीले के प्राचीनतम स्तर से इस प्रकार के पात्र मिले है[47]।

गोरखपुर–देवरिया राजमार्ग पर मोतीराम अड्डा से दक्षिण दिशा मे झगहा (थाना) से लगभग 7 कि0 मी0 दक्षिण–पूर्व मे **उपधौलिया, गोरसेहरा** तथा **राजधानी** नामक तीनो पुरास्थल एक–दूसरे से लगे हुए है। इनसे समान दूरी पर टीले की लम्बी श्रृखला दिखायी पडती है। कनिघम ने इस टीले का अवलोकन किया था। उनके अनुसार इसकी लम्बाई–चौडाई लगभग 1600 फीट, एव तीस फीट ऊँचा एक शक्वाकार स्तूप का साक्ष्य विद्यमान है[48]। उन्होने राजधानी के टीले का भी उल्लेख किया है,तथा उसकी ऊँचाई 17 फीट बताया है। कनिघम के अनुसार सम्भवत उपधौलिया स्थित स्तूप को ही फाह्यान और ह्वेनसाग ने भस्म–स्तूप कहा था। उन्होने राजधानी का समीकरण, मोरियो की राजधानी पिप्पलीवन से किया है। यह स्थल गोर्रा नदी के बाऍ किनारे पर स्थित है।

वर्तमान समय मे कृषि सम्बन्धी गतिविधियो के फलस्वरूप कनिघम द्वारा उल्लिखित टीला समाप्त हो चुका है। सर्वेक्षण के दौरान लगा कि ये तीनो टीले अतीत मे एक ही विशाल टीले के अग रहे होगे। यहॉ से काले-चित्रित मृद्भाण्ड, काले–लाल तथा एन0 बी0 पी0 के टुकडो के साथ–साथ कुषाण एव गुप्त कालीन लाल रग के पात्रो के अवशेष मिले।

गोरसेहरा ग्राम मे टीले पर एक आधुनिक मदिर है, जिसमे प्राचीन शिवलिग (पूर्वमध्यकालीन), अर्द्धनारीश्वर शिव (पाल), तथा कार्तिकेय (पाल) की प्रतिमा प्रतिष्ठित है। उपधौलिया ग्राम के दक्षिण, एक टीले पर झाडियो के मध्य एक प्राचीन शिवलिग (पूर्व मध्यकाल) तथा ग्राम के बीच में कूप के निकट रावणानुग्रह (लगभग 9–10 वी शताब्दी ई0) की मूर्ति के दर्शन हुए। राजधानी से प्राप्त कई मृण्मूर्तियॉ भी बौद्ध सग्रहालय मे सुरक्षित है[49]।

सोहगौरा से लगभग 2 कि0मी0 दक्षिण–पूर्व, राप्ती के प्राचीन प्रवाह के निकट उसी तट पर (दायी ओर) **गुरुम्ही** नामक स्थल स्थित है। इस ग्राम के पूरब लगभग 10 एकड के क्षेत्र मे एक टीला है, जिसे ग्रामीणो ने कृषि–कार्य के निमित्त काटकर बराबर कर दिया है। फिर भी टीले का कुछ अश आज भी धरातल से लगभग 1 5 मीटर ऊँचा है। स्थानीय लोगो के अनुसार इसका प्राचीन नाम गुरूमही है। यहॉ के धरातलीय सर्वेक्षण मे एन0 बी0 पी0 के ठीकरो के साथ ही रेड एव ग्रे–वेअर के टुकडे प्राप्त हुए है। ग्रामीणों को यहॉ से लाल रग का एक मृण्पात्र मिला है। सम्भवत इसमे अनाज रक्खा जाता रहा होगा। उक्त पात्र कुषाण कालीन प्रतीत होता है।

गोरखपुर–वाराणसी राजमार्ग पर स्थित गगहा से 3 कि0मी0 पश्चिम **देवकली** नामक स्थल है। यहाँ टीले के शीर्ष पर एक नवनिर्मित मदिर है। मदिर मे अनेक प्रस्तर मूर्तियाँ रखी गयी है। इनमे दो सूर्य (11वी सदी), एक गणेश (पूर्व मध्य युगीन) तथा एक मातृ–शिशु की मूर्ति विशेष महत्त्वपूर्ण है। इसी टीले से एक अन्य पालयुगीन सूर्य–मूर्ति (छायाचित्र सख्या–3) प्राप्त हुयी थी, जो यही के ग्राम मे एक नवनिर्मित मदिर मे स्थापित है। टीले के पार्श्व भाग मे प्राचीन सरचनाओ के साक्ष्य दिखायी पडते है।

धरातल से लगभग 2 मीटर ऊँचा एक अन्य टीला भी यहाँ विद्यमान है, जो कि पहले वाले टीले के ठीक दक्षिण दिशा मे है। यह लगभग 5 एकड मे फैला हुआ है। यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर, रेड–ग्रे तथा रेड–स्लिप्ड पात्रो के ठीकरे उपलब्ध हुए है।

कौडीराम से लगभग 8 कि0 मी0 दक्षिण, कौडीराम–गोला मार्ग पर एक अन्य **देवकली** ग्राम (निकट कौडीराम) है। यहाँ भी एक विशाल टीले का स्वरूप दृष्टिगोचर होता है, जिसका विस्तार लगभग 30 एकड है। सामान्य धरातल से टीले की ऊँचाई लगभग 10 फीट है। इसके दक्षिण–पश्चिम मे एक मदिर हैं। इस मदिर मे पाल युगीन सूर्य की एक मूर्ति स्थापित की गयी है (छायाचित्र सख्या–4)। टीले पर एन0 बी0 पी0 के ठीकरे मिले है। मौर्य एव कुषाण–युगीन पात्रो के ठीकरे भी यहाँ से उपलब्ध होते है। यहाँ तीन–चार रिंग–वेल के अवशेष विद्यमान है। टीले के उत्तरी पार्श्व पर **तियर** नामक ग्राम बसा हुआ है। तियर टीले पर मदिर के पास प्राचीन काल का एक घडा रक्खा हुआ है (छायाचित्र सख्या–5)। इस टीले का प्रथम सर्वेक्षण गो0वि0वि0 के श्री कृष्णानन्द त्रिपाठी ने किया है। यहाँ से उन्हे रिंग–वेल, एन0बी0पी0 के टुकडे तथा कुषाण–युगीन बडे–बडे मटके उपलब्ध हुए है।

उपर्युक्त टीले के दक्षिण–पूर्व मे एक और ऊँचा टीला है, जो देवकली नाम से प्रसिद्ध है। टीले के शीर्ष पर विशाल वट–वृक्ष है। वृक्ष के नीचे पूर्व मध्य युगीन सूर्य प्रतिमा स्थापित की गयी है। यहाँ पर मदिरो के साक्ष्य भी दिखायी पडते है। इस टीले के धरातलीय सर्वेक्षण के दौरान ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर (सादे एवं चित्रित) ब्लैक–स्लिप्ड तथा एन0 बी0 पी0 के अवशेष भी प्राप्त हुए। टीले के पश्चिम एक विशाल सरोवर है, जिसमे सीढियो के चिन्ह देखे जा सकते है। इस स्थल को कनिघम ने रामग्राम होने की सम्भावना व्यक्त की है[50] तथा यहाँ स्तूप होने का उल्लेख किया है। टीले के पूर्वी छोर पर एक ग्रामीण बस्ती है। यहाँ शाकद्वीपी ब्राह्मणो का निवास है, जिनका सम्बन्ध देईपार के शाकद्वीपी परिवारो से बताया गया है[51]।

इस ग्राम (देवकली) से सटे पूरब, सडक के किनारे एक और टीला है, जिसकी सामान्य धरातल से ऊँचाई लगभग 3 मी0 है, और विस्तार लगभग एक एकड है। टीले पर वृक्ष उगे हुए है, तथा यहॉ ऐतिहासिक काल के अवशेष भी दृष्टिगोचर होते है।

उपर्युक्त तीनो ही स्थल देवकली के नाम से जाने जाते है। यह पहले ही उल्लिखित है कि कनिघम ने इसे रामग्राम होने की सम्भावना व्यक्त की थी। इसके अतिरिक्त गोरखपुर विश्वविद्यालय के पुराविदो ने भी निरीक्षण के दौरान इसे रामग्राम होने की सम्भावना की पुष्टि की थी। लेकिन ये सभी सकेत सम्भावनाओ पर आधारित है। इन सम्भावनाओ मे कितना बल है, इसका निर्धारण भावी अनुसधान ही कर सकेगे।

आमी नदी के तट पर छ प्राचीन स्थल है, जिनमे से तीन; **इटार, गेनवरा**, तथा **कोठा** (निकट खजनी) नामक पुरास्थलो से एन0 बी0 पी0 वेअर एव इससे पहले के पुरावशेष प्राप्त हुए है। इनमे से गेनवरा का उल्लेख पहले ही ताम्रपाषाणिक अनुक्रम के सदर्भ मे हो चुका है। धरातलीय सर्वेक्षण मे ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर, ब्लैक-स्लिप्ड तथा एन0 बी0 पी0 के ठीकरे मिले है।

जनपद मुख्यालय से सहजनवॉ–बखिरा मार्ग पर घघसरा से तीन कि0 मी0 पूरब **इटार** नामक टीला है[52]। यह स्थल आमी नदी के पूर्वी तट पर अवस्थित है। यहॉ धरातलीय सर्वेक्षण मे ग्रे वेअर के साथ ही ब्लैक–स्लिप्ड वेअर एन0बी0पी0 एव रेड–वेअर के ठीकरे भी प्राप्त हुए है। यहॉ एक देवस्थान के विषय मे किंवदन्ती है कि, यही से इटार वश के पाण्डेय परिवारो का विस्तार हुआ। इस स्थल पर एक प्राचीन कूप का अवशेष भी है, जो नष्ट होने की स्थिति मे है।

खजनी के निकट **कोठा** नामक एक ग्राम है। सरया और कोठा (तिवारी) के मध्य एक विशाल टीला है, जिसका विस्तार लगभग 50 एकड है। टीला कोठा ग्राम–सभा के अतर्गत है। टीले पर प्राचीन पात्रो के ठीकरे बिखरे पडे है। सर्वेक्षण के दौरान यहॉ से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा एन0 बी0 पी0 वेअर के टुकडे प्राप्त हुए। यही से शकर–पार्वती (पाल–युगीन) की एक प्रतिमा मिली थी, जिसे ग्राम के ही एक कूएँ के निकट रखा गया है। इस स्थल की पहचान सोहगौरा अभिलेख मे वर्णित कोष्ठागार से किया गया है।

कुआनो नदी के तट पर कुल 14 पुरास्थल है, जिनमे इमलीडीह एव धुरियापार का उल्लेख उत्खनित पुरास्थलो के विशेष संदर्भ मे पहले ही किया जा चुका है। इसके अतिरिक्त इस अध्याय मे सास्कृतिक अनुक्रम के सिलसिले में इनका उल्लेख कतिपय जगहों पर हुआ है। इन दोनों पुरास्थलों का सरयूपार क्षेत्र के

पुरातत्त्व के विशेष सदर्भ मे बहुआयामी महत्त्व है। क्योकि यहाँ पर विविध सस्कृतियो का क्रमिक जमाव दृष्टिगोचर होता है।

कुआनो के पूर्वी तट पर बलुआ से लगभग 1½ कि0मी0 दक्षिण **जद्दूपट्टी** नामक पुरास्थल है। यहाँ टीले की ऊँचाई सामान्य धरातल से लगभग 2 मीटर है। टीले पर भवन–निर्माण हुआ है। इसके कुछ भाग पर कृषि–कार्य भी हो रहा है। धरातलीय सर्वेक्षण मे यहाँ से एन0 बी0 पी0 पात्रो के अतिरिक्त रेड–वेअर के टुकडो के भी दर्शन होते है[53]।

जनपद मुख्यालय से लगभग 35 कि0 मी0 दक्षिण खजनी–उरूवा–गोला राजमार्ग पर, कुआनो के वाम तट पर **सिकरीगंज** नामक प्राचीन स्थल स्थित है। सिकरीगज कस्बे के दक्षिण एक विशाल टीला है, जो लगभग 15 एकड मे विस्तृत है। सम्पूर्ण टीला लगभग 3 मीटर ऊँचा है। टीले पर कृषि–कार्य हो रहा है, जिसके कारण टीला समतल हो रहा है। सर्वेक्षण के दौरान धरातल से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, एन0बी0पी0 वेअर, तथा रेड–वेअर, के टुकडे मिले[54]। सर्वेक्षण के दौरान मुझे यहाँ से ताम्रपाषिणक एव प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल के मृद्भाण्डो के ठीकरे उपलब्ध हुए है। (रेखाचित्र सख्या–25)

सिकरीगज के प्राचीन टीले से लगभग 5 कि0मी0 दक्षिण, कुआनो के तट पर **झौवा** नामक ग्राम है। झौवा ग्राम से थोडी ही दूरी पर (लगभग दो फर्लांग) एक टीला है। इस टीले का उपयोग भी कृषि–कार्य के निमित्त हो रहा है। यहाँ से लेट ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के ठीकरो के साथ ही एन0बी0पी0 के टुकडे भी मिले है।

जनपद मुख्यालय से लगभग 38 कि0 मी0 दक्षिण गोरखपुर–सिकरीगज मार्ग पर स्थित कुरी बाजार से 1 कि0 मी0 दक्षिण **असौजी** नामक ग्राम है। इस ग्राम के समीप ही एक छोटा टीला है। टीला लगभग समतल हो चुका है। यहाँ से प्राप्त धरातलीय अवशेषो मे ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर तथा रेड वेअर[55] के टुकडे प्राप्त हुए हैं।

दुघरा (Dughara) नामक प्राचीन स्थल, जनपद मुख्यालय से लगभग 42 कि0 मी0 दक्षिण, गोरखपुर–सिकरीगज–बडहलगज मार्ग पर स्थित उरूवा बाजार से लगभग 4 कि0मी0 दक्षिण, कुआनो के तट पर अवस्थित है। नदी के किनारे 4 मीटर ऊँचा एक टीला है। यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, एन0बी0पी0 एव रेड वेअर के अवशेष प्रमुख रूप से मिले है[56]।

उरूवा–बाजार, गोरखपुर–सिकरीगज–बडहलगंज राजमार्ग पर लगभग 42 कि0मी0 दक्षिण दिशा मे अवस्थित है। इस स्थल से कुआनो नदी की दूरी लगभग 7 कि0मी0 है। उरूवा बाजार से थोडी ही दूरी पर

एक छोटा टीला है। यहॉ के धरातलीय अवशेषो मे एन0बी0पी0 तथा रेड वेअर के टुकडे मिले है। धरातल से उपलब्ध इन अवशेषो का अत्यधिक क्षरण हो चुका है[57]। सर्वेक्षण के दौरान ग्रामीणो से पता चला है कि कुछ माह पहले टीले से बुद्ध की मूर्ति मिली थी। मूर्ति मॉगने पर ग्रामीणो ने बताया कि इस तरह की मूर्ति घर मे रखना, धार्मिक दृष्टि से उचित नही है, ऐसी यहॉ की परम्परा है। अतएव मूर्ति को पुन टीले पर गाड दिया गया। उक्त स्थल पर बहुत छानबीन के बावजूद मूर्ति नही मिल सकी। वर्तमान समय मे टीले पर बॉस की कोठ एव अन्य वृक्षो के अतिरिक्त झाडियॉ दृष्टिगोचर होती है। टीले का कुछ अश कृषि–कार्य के लिए भी उपयोग किया जा रहा है। टीले पर मुझे भी कुषाण–कालीन रेड वेअर के टुकडे प्राप्त हुए (रेखाचित्र सख्या–29, न0 4 एव 5)।

कुरी बाजार गोरखपुर जनपद के दक्षिणी भाग मे अवस्थित बॉसगॉव तहसील मे है। इसकी स्थिति जनपद मुख्यालय से लगभग 55 कि0 मी0 दक्षिण–पश्चिम, घाघरा के प्राचीन प्रवाह के तट पर है। टीला कुरी बाजार गॉव से लगा हुआ है। लगभग 10 एकड के क्षेत्र मे फैला यह टीला सामान्य धरातल से लगभग 5 मीटर ऊँचा है। पूरे टीले पर झाडियो के साथ खजूर के वृक्ष फैले हुए हैं। इस टीले पर खण्डित ईटो के ढेर द्रष्टव्य है। ऐसा प्रतीत होता है कि यहॉ इष्टिका–निर्मित भवन अवश्य रहा होगा। यहॉ से प्राप्त ईट का माप 26×20×5 सेमी0 है।

टीले के शिखर एवं पार्श्व मे तीन मदिर हैं। मदिर मे स्थापित मूर्तियॉ आधुनिक युग की है। टीले पर तीन कूप भी निर्मित किए गये है, जिनमे से एक कूप अत्यत विशाल है। इसका व्यास 20 फीट है। यहॉ धरातल से विविध पात्र–परम्पराओ के टुकडे उपलब्ध हुए है। इनमे रेड वेअर, ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड, ग्रे वेअर, तथा एन0बी0पी0 के ठीकरे प्रमुख है। रेड–वेअर के जो के टुकडे मिले है, वे जार के खण्डित अश है। इस पर हाथ से आकार बनाकर आसञ्जन विधि से चित्रण अभिप्राय सजोया गया है[58]। टीले पर एक सिक्का भी मिला था जिस पर *'राम लक्ष्मन जानकी, जय बोलो हनुमान की'* लेख अकित है।

जनपद के **महादेवाबाजार** पुरास्थल का सम्बन्ध कुषाण काल से स्थापित किया जा सकता है। यह स्थल गोरखपुर जनपद मुख्यालय से गोरखपुर–सिकरीगज– बडहलगंज मार्ग पर बढयापार के सन्निकट स्थित है। महादेवाबाजार गॉव के निकट एक छोटा टीला है। टीले से धरातलीय सर्वेक्षण मे ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर तथा मध्यकालीन चमकीले मृद्भाण्डो (ग्लेज्ड वेअर) के टुकडे प्राप्त हुए है[59]। पात्रो के साथ कुछ खण्डित एव घिसी मृण्मूर्तियॉ एव कुषाण–कालीन सिक्के भी प्राप्त हुए है। खण्डित एव घिसी अवस्था में प्राप्त होने के कारण यहॉ से उपलब्ध मूर्तियो का विवरण प्रस्तुत कर पाना सम्भव नही है।

जनपद मुख्यालय से लगभग 30 कि0मी0 दक्षिण गोरखपुर–सिकरीगज–बडहलगज मार्ग पर उसरैन नामक प्राचीन स्थल स्थित है। यहॉ सामान्य धरातल से टीले की ऊँचाई लगभग 2 मीटर है। टीला दो भागो मे विभक्त है। यहॉ के दक्षिणी भाग मे भवन निर्मित हैं, तथा पूर्वी भाग मे वृक्ष लगे हुए है। यहॉ प्राचीन ईंटो के ढेर यत्र–तत्र बिखरे है, लेकिन किसी भवन सरचना के प्रमाण नही दिखायी पडते है। यहॉ से ब्लैक–एण्ड रेड वेअर तथा रेड वेअर के ठीकरे उपलब्ध हैं[60]।

बनरसिहा के धरातलीय सर्वेक्षण मे प्राचीन ईटो तथा मृद्भाण्डो के टुकडे बिखरे हुए मिले है। यहॉ के अन्य अवशेषो मे भूरे रग के पात्रो के ठीकरे एव भोजन बनाने वाले पात्रो के अतिरिक्त बेसिन (तसले) भी उपलब्ध हुए हैं। डॉ0 देवबाला मित्रा को यहॉ से कुषाण–कालीन कुछ सिक्के एव मूर्तियॉ भी मिली थीं[61]। डॉ0 मित्रा को उपलब्ध सिक्को एव मूर्तियो के आधार पर इस पुरास्थल का सम्बन्ध कुषाण–युग से जोडा जा सकता है।

गोरखपुर–वाराणसी राजमार्ग पर कौडीराम से लगभग 5 कि0मी0 पूरब **गिरधरपुर–दुबवलिया** नामक ग्राम अवस्थित है। इस ग्राम के समीप ही एक टीला था, जो वर्तमान समय मे कृषि सम्बन्धी गतिविधियो के कारण बिल्कुल समतल हो चुका है। राप्ती नदी लगभग 4–5 दशक पूर्व यहॉ से प्रवाहित होती थी, जिसके प्रमाण स्वरूप इसका प्राचीन प्रवाह क्षेत्र आज भी यहॉ दृष्टिगोचर होता है। इसी ग्राम के श्री राजाराम यादव को टीले से लाल रग का एक कूँडा प्राप्त हुआ था, जो वर्तमान समय मे उन्ही के घर मे सुरक्षित है। कूँडे की ऊँचाई लगभग 1 5 मीटर है। यह कूँडा, कुषाण–कालीन है, जिसका उपयोग अनाज रखने के निमित्त किया जाता रहा होगा। इस प्रकार उक्त लाल रग के कूँडे के आधार पर इस स्थल को कुषाण काल से जोडा जा सकता है।

जनपद के उत्तर–पश्चिम मे राप्ती एव रोहिणी के सगम पर **डोमिनगढ** नामक प्राचीन स्थल स्थित है, जिसके नामकरण के विषय मे विवाद है। कुछ विद्वानो ने तर्क दिया है कि यहॉ पर 'डोम' नामक जाति के निवास के कारण इसे डोमिनगढ की सज्ञा दी गयी। कनिघम का भी विचार है कि ह्वेनसॉग ने जिन्हे डाकू स्वीकार किया है, वे इस जनपद मे रहने वाले 'लुटरे डोम' थे। ये गोरखपुर परिक्षेत्र के प्राचीन बासिन्दे थे। इन डोमो के मुखिया को डोमकटार कहा जाता था, जैसे भरो के नेता को 'राजभर'। ध्यातव्य है कि जिस समय ह्वेनसॉग मोरियनगर से कुशीनगर की यात्रा कर रहा था, उस समय यहॉ सॉड़, हाथी तथा खतरनाक डाकू रहते थे[62]। मि0 कुक (गोरखपुर जनपद के ज्वाइन्ट मजिस्ट्रेट) ने योरप के जिप्सियो की तुलना गोरखपुर के डोमकटारो के साथ की है[63]।

डॉ0 राजबली पाण्डेय 'डोमकटारो' को क्षत्रिय राजवश का मानते है[14]। डॉ0 पाण्डेय के अनुसार डोमकटार का अर्थ है, डोमो के लिए कटार या तलवार। उन्होने अपनी मान्यता की पुष्टि के लिए तर्क दिया है कि गोरखपुर के आसपास घने जगलो के कारण डोमो (एक आदिवासी जगली जाति) का आतक बढ गया था।

डॉ0 पाण्डेय के अनुसार डोमकटार विश्वसेन वश के क्षत्रिय थे। लेकिन यहॉ प्रश्न उठता है कि डोम कटारो को किस आधार पर क्षत्रिय स्वीकार किया जाय? दूसरी बात, यदि ये क्षत्रिय थे तो इस वश का कोई क्षत्रिय राजा भी होना चाहिए। ध्यातव्य है कि डॉ0 पाण्डेय ने इन प्रश्नो का कोई समाधान नही किया है। अतएव इस मत को अतिम रूप से स्वीकार नही किया जा सकता। 'डोमकटार' शब्द सम्भवत इनकी जातिगत विशेषताओ को द्योतित करता है।

कनिघम एव कार्लायल ने भी डोमिनगढ का सर्वेक्षण किया था। इन लोगो ने डोमिनगढ की स्थिति तथा डोमकटार कौन थे? इस प्रश्न पर विचार किया है।

मि0 ए0 फ्यूहरर, डोमिनगढ के पुरावशेषो की ओर सर्वप्रथम ध्यान आकर्षित करते है। उनके अनुसार यहॉ का टीला बहुत ऊॅचा था, जहॉ डोमकटार की एक रूलिग ट्राइव शासन करती थी। फ्यूहरर ने डोमकटारो को एक जनजाति के रूप मे स्वीकार किया है। यहॉ पर (डोमिनगढ) पक्की ईटो से निर्मित पुराने डोमिनगढ का किला काफी बडा, मोटा एव वर्गाकार था[15]।

फ्यूहरर ने लिखा है कि 1885 मे बगाल से नार्थ वेस्ट रेलवे के निर्माण के दौरान यहॉ पर एक भस्मावशेष उपलब्ध हुआ था। इसमे एक पतला स्वर्ण पत्र था, जिस पर यशोधरा एव राहुल (गौतम बुद्ध की पत्नी एव पुत्र) का अकन था। वर्तमान समय मे यह लखनऊ सग्रहालय मे सग्रहीत है।

डोमिनगढ के सम्पूर्ण टीले पर लोगो ने अपना गृह बना लिया है। नदी तल से टीले की ऊॅचाई लगभग 55 मीटर है। यहॉ यत्र-तत्र प्राचीन ईटो के टुकडे दिखायी पड़ते है। टीले के मध्य सरोवर और सरोवर के चतुर्दिक खाई के चिन्ह आशिक रूप से विद्यमान है।

डोमिनगढ मे प्राचीन युग से लेकर आधुनिक युग तक के साक्ष्य द्रष्टव्य हैं। टीले के पूरब प्राचीन दीवारो मे लगे ईटो का आकार फाजिलनगर के उत्खनन मे प्राप्त गुप्त कालीन ईटो से समानता रखता है। यहॉ ईटो का आकार 44×24×4 सेमी0 है।

यहॉ से ब्लैक-एण्ड रेड वेअर तथा एन0 बी0 पी0 वेअर के अतिरिक्त कुषाण एव गुप्तकाल के मृद्भाण्डो के ठीकरे भी मिले है। इसके अतिरिक्त गोल ठप्पे एव मृण्मूर्तियॉ भी मिली है।

अतएव उपर्युक्त साक्ष्यो के आलोक मे डोमिनगढ का सम्बन्ध प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग से लेकर ऐतिहासिक युग एव उसके बाद के युगो से भी जोडा जा सकता है।

ऐतिहासिक कालीन संस्कृति (200 ई0 से 600 ई0 तक)

कुषाण युग के अन्त तथा गुप्तो के अभ्युदय के साथ, कुशीनगर तथा इसी के समान कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण बौद्ध स्थलो को छोडकर अन्य सभी बौद्ध स्थल धीरे–धीरे अपना अस्तित्व खोने लगे। गुप्तोत्तर काल के आते–आते बुद्ध की मूर्ति, दशवतार विष्णु की मूर्ति के साथ बनने लगी। बहुत से ऊँचे स्तूपो को सुरक्षित समझ कर उनके ऊपर देव–प्रतिमाएँ एव शिवलिग की स्थापनाएँ की गयी। इसी युग मे अनेक स्थलो से विष्णु तथा सूर्य की वलुए–पत्थर की प्रतिमाएँ मिली है। साथ ही अनेक स्थलो (मानचित्र सख्या–5) पर शिवलिग एव शैव सम्प्रदाय से सम्बन्धित अनेक मूर्तियो एव बहुत से अन्य देवी–देवताओ की प्रतिमाओ का निर्माण गुप्तोत्तर काल मे होने लगा था। इस प्रकार छठी शताब्दी ई0 के पूर्व जहॉ हमे गुप्त काल मे मिट्टी की सुन्दर मूर्तियो एव मथुरा कला से सम्बन्धित कुशीनगर मे बुद्ध की लेटी प्रतिमा दिखायी देती है, वही इस परिक्षेत्र मे कुमारगुप्त के द्वारा कहॉव मे स्थापित एक सुन्दर व विशाल स्तम्भ लेख भी मिलता है। इसके चतुर्दिक जैन मूर्तियो का अकन मिलता है। छठी शताब्दी ई0 मे इस क्षेत्र मे वैष्णव, शैव, शाक्त, गाणपत्य तथा अन्य लोक देवी, देवताओ की मूर्तियो की स्थापना ईंट से बने मदिरो मे हुयी, जो मध्यकाल तक आते आते बाह्य आक्रमणकारियो के आक्रमण के फलस्वरूप धीरे–धीरे नष्ट होकर खण्डहर मे विलीन हो गयीं। इनमे से अधिकाश मूर्तियो की खोज गोरखपुर विश्वविद्यालय के पुराविद् एव सग्रहालयाध्यक्ष श्री कृष्णानद त्रिपाठी ने की है।

सोहगौरा सस्कृति, गोरखपुर परिक्षेत्र के लिए एक सास्कृतिक आधार प्रस्तुत करती है, जिसकी चर्चा पहले ही हो चुकी है। इसी विशेष सदर्भ मे **सोहगौरा संस्कृति के पंचम काल** का यहॉ उल्लेख करना सर्वथा यथेष्ट है। सोहगौरा के पचम काल का सम्बन्ध कुषाण एवं गुप्त काल से जोडा गया है। इस काल से कुषाण एव गुप्त काल के पात्रो के साथ–साथ अनेक मृण्मूर्तियॉ भी मिली है। यहॉ से दॉतेदार लोढ़े भी उपलब्ध हुए है।

गोरखपुर जनपद मे स्थित नरहन का उत्खनन लगभग एक दशक पूर्व हो चुका है। पॉच सत्रो के इस उत्खनन मे यहॉ पॉच सास्कृतिक कालो के साक्ष्य मिल चुके है। इनमे चतुर्थ काल (200 ई0पू0 से 300 ई0) के अत से लेकर पॉचवे काल (300 ई0 से 600 ई0) का सम्बन्ध ऐतिहासिक काल से जोडा जा सकता है। इस काल के भवन-सरचनाओ को ग्रामीणो ने नष्ट कर दिया है। इस काल की प्रमुख पात्र–परम्परा मे

रेडवेअर उल्लेखनीय है। यहॉ से हस्तनिर्मित मातृदेवी की अनेक मृण्मूर्तियॉ उपलब्ध हुयी हैं। यहॉ से लाल रग का एक अनोखे किस्म का डिस आन स्टैण्ड प्राप्त हुआ है[66]। यह पात्र, द्वितीय टीले के पश्चिमी ढलान पर खोदी गयी, क्षत-विक्षत खती से प्राप्त हुआ है। इस पात्र की तिथि के विषय मे निश्चित रूप से कुछ कहना मुश्किल है। रेड-वेअर मे हस्तनिर्मित तसले एव सग्रह-पात्र (Storage Jars) भी उपलब्ध हुए है। चतुर्थ एव पचम काल के मृद्भाण्डो के सदृश्य मृद्भाण्ड इस परिक्षेत्र मे शुग, कुषाण एव गुप्त काल से भी मिलते है।

जनपद का तीसरा उत्खनित पुरास्थल **धुरियापार** है, जिसके प्रथम एव द्वितीय काल के पुरावशेषो की चर्चा पहले ही की जा चुकी है। यहॉ का तीसरा काल 200 ई0पू0 से 500 ई0 तक चलता है। इसमे रेड वेअर की प्रधानता है, जिसमे विशेषत तसले, कलश एव अन्य-पात्र-प्रकारो के भी प्रमाण उपलब्ध हुए हैं। ये सभी पात्र कुषाण एव गुप्तकाल से सम्बन्धित हैं। यहॉ से मिट्टी एव शीशे की बनी चूडियॉ, लोहे के उपकरण, पत्थर के मनके एव मिट्टी के बने लोढे (Terracatta Pestles) मिले है।[67] धुरियापार का चतुर्थ काल 900 ई0 से 1500 ई0 तक चलता रहा।

जनपद का चौथा महत्वपूर्ण उत्खनित पुरास्थल, **इमलीडीह** है, जिसकी प्राचीनता नवपाषाण काल तक जाती है। इस स्थल का उत्खनन नरहन सस्कृति के विस्तार का पता लगाने के विशेष सदर्भ मे किया गया था[68]। यहॉ से जो अतिम सस्कृति मिली, उसका काल 800 ई0पू0 से 400 ई0पू0 के मध्य है। लेकिन नरहन का अतिम काल 300 ई0 से 600 ई0 के बीच चलता रहा। इस प्रकार इमलीडीह की सस्कृति, नरहन से कुछ पहले ही प्रारम्भ हो जाती है, और इसका अन्त भी इसी अनुपात मे पहले ही हो जाता है। इस प्रकार इमलीडीह मे 400 ई0पू0 के बाद का कोई सास्कृतिक अवशेष दृष्टिगोचर नही होता है। अतएव ऐतिहासिक काल से इस पुरास्थल का सम्बन्ध नही जोडा जा सकता है।

जनपद के **उपधौलिया, गोरसेहरा**, एव **राजधानी** नामक स्थलो का परिचय इस अध्याय के चतुर्थ खण्ड मे ही दिया जा चुका है, जहॉ प्रारम्भिक ऐतिहासिक एव ऐतिहासिक युग के अवशेषो का उल्लेख किया जा चुका है। यहॉ से प्राप्त ऐतिहासिक युग के पुरावशेषों मे गुप्तकालीन लाल रग के मृद्भाण्डो के ठीकरे इस स्थल का सम्बन्ध गुप्तकाल से जोडते है। उल्लेखनीय है कि तीनों ग्रामों की स्थिति अलग-अलग होते हुए भी टीला एक ही है।

कौडीराम के निकट, **देवकली** नामक ग्राम से सटे पूरब, सडक के किनारे एक टीला है, जहॉ से ऐतिहासिक काल के अवशेष मिले है। यही से प्रस्तर-मूर्ति का एक खण्डित टुकडा मिला है, जिसकी पहचान नही हो सकी है। यहॉ प्राचीन ईटो के ढेर भी द्रष्टव्य है।

कोटवा नामक स्थल, गोरखपुर–वाराणसी–राजमार्ग पर स्थित गगहा नामक स्थल से लगभग 5 कि0मी0 उत्तर–पश्चिम मे स्थित है। 1987 मे यहॉ के टीले से 16 गुप्तकालीन स्वर्ण सिक्के, ग्रामीणो द्वारा गड्ढा खोदते समय मिले थे। वर्तमान समय मे ये सिक्के रा0 स0 ल0 मे सुरक्षित है। इस डीह का अवलोकन सर्वप्रथम पुराविद् ए0 फ्यूहरर ने किया था[69]। यहॉ धरातलीय सर्वेक्षण मे गुप्तकालीन एव मध्यकालीन पात्रो के टुकडे दिखायी पडते है। वर्तमान समय मे कृषि सम्बन्धी गतिविधियो के कारण टीला समतल होकर अपना अस्तित्व खो चुका है।

जनपद का **बासगॉव** नामक प्राचीन स्थल गोरखपुर जनपद मुख्यालय से वाराणसी जाने वाले राजमार्ग पर स्थित कौडीराम से लगभग 9 कि0 मी0 पश्चिम, मुख्यमार्ग पर स्थित है। यह बहुत महत्त्वपूर्ण स्थल है, क्योकि इसी तहसील मे सोहगौरा नामक पुरास्थल अवस्थित है। सोहगौरा के प्रसिद्ध कास्यपत्राभिलेख मे इस स्थल का उल्लेख हुआ है। ए0 फ्यूहरर ने भी सोहगौरा का उल्लेख किया है[70]। यह स्थल आमी नदी के दक्षिणी तट से एक कि0 मी0 दक्षिण दिशा मे अवस्थित है। टीले पर दो मदिर बने हुए है। टीले के धरातलीय सर्वेक्षण मे लाल रग के पात्रावशेष उपलब्ध हुए है।

गोरखपुर–सिकरीगज–बडहलगज मार्ग पर सिकरीगज से लगभग 8 कि0 मी0 दक्षिण कुआनो नदी के दक्षिणी किनारे पर **सोपाईघाट** नामक पुरास्थल स्थित है। नदी से थोडी ही दूरी पर एक टीला है, जिसकी ऊँचाई सामान्य धरातल से लगभग 3 मीटर है। टीले के धरातलीय सर्वेक्षण मे शराब बनाने वाली अनेक भट्ठियो के साक्ष्य मिले। ग्रामीणो के अनुसार बहुत पहले यहॉ थारूओ की बस्ती थी। टीले पर इन भट्ठियो के अतिरिक्त लाल–रग के मृद्भाण्डो के टुकडे भी उपलब्ध हुए है। ये पात्रावशेष गुप्तकालीन लाल रग के मृद्भाण्डो से मिलते है। ऐसी स्थिति मे इस स्थल का सम्बन्ध गुप्तकाल से जोडा जा सकता है। यहॉ टीले पर अनेक वृक्ष भी लगे हुए है।

जनपद के **असौजी** नामक पुरास्थल का परिचय पहले ही प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल (एन0बी0पी0) के विशेष सन्दर्भ मे दिया जा चुका है। यहॉ के धरातलीय अवशेषो मे ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर तथा रेड वेअर के टुकडे मिले है[71] इस प्रकार यह पुरास्थल प्रारम्भिक ऐतिहासिक एवं ऐतिहासिक, दोनो ही सस्कृतियो से जुडा हुआ है।

जनपद मे सरयू (घाघरा) के वाम तट पर अवस्थित **गोपालपुर** का उल्लेख भी प्रारम्भिक ऐतिहासिक एव एन0बी0पी0 वेअर के विशेष सदर्भ मे किया जा चुका है। इस स्थल की पहचान महाभारत में उल्लिखित

'गोपालक राष्ट्र' से की गयी है। यहाँ के विशाल टीले से गुप्तकालीन 16 रजत मुद्राओ की एक निधि प्राप्त हुई है। इन रजत सिक्को के आधार पर इस स्थल का सम्बन्ध गुप्तकाल से जोडा जा सकता है।

गोलामार्ग पर सडक से लगभग 3 कि0मी0 दूर घाघरा के बॉए किनारे पर अवस्थित **'मकन्दवार'** नामक प्राचीन स्थल का पुरातात्त्विक दृष्टि से विशेष महत्त्व है, क्योकि यहाँ से कम से कम तीन सास्कृतिक कालो से सम्बन्धित अवशेष उपलब्ध हुए है। यहाँ से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड, एन0 बी0 पी0 एवं रेड वेअर के साथ ही कुषाण एव गुप्तकालीन मृद्‌भाण्डो के खण्डित भाग भी उपलब्ध होते है। अतएव इन अवशेषो के आधार पर मकन्दवार का सम्बन्ध गुप्तकाल से जोडा जा सकता है। यहाँ मध्यकाल तक के अवशेष उपलब्ध होते है। ऐसा प्रतीत होता है कि गुप्त काल के बाद भी यहाँ सास्कृतिक गतिविधियाँ जारी रहीं। इस प्राचीन स्थल का प्रथम सर्वेक्षण गो0वि0वि0 के श्री कृष्णानद त्रिपाठी एव टी0एन0 दूबे के द्वारा किया गया है[72]।

मकन्दवार की भॉति **बढयापार** भी प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग से लेकर मध्यकाल तक की सस्कृतियो से जुडा हुआ है। यहाँ से जो प्राचीन मृद्‌भाण्ड मिले है, उनमे ब्लैक–एण्ड–रेड–वेअर तथा एन0 बी0 पी0 वेअर के अतिरिक्त मध्यकाल के ग्लेज्ड वेअर के अवशेष विशेष उल्लेखनीय है[73]। यहाँ गुप्त एव मध्यकाल से सम्बन्धित मानव एव पशु मृण्मूर्तियो के अवशेष भी मिले है। ये मृण्मूर्तियाँ इस स्थल का सम्बन्ध गुप्त एव मध्यकाल तक ले जाती है।

गोरखपुर–सिकरीगज–बडहलगज मार्ग पर जिला मुख्यालय से लगभग 30 कि0मी0 दक्षिण **उसरैन** नामक स्थल स्थित है। यहाँ सामान्य धरातल से टीले की ऊँचाई लगभग 2 मीटर है। टीला उपर्युक्त मार्ग द्वारा दो भागो मे विभक्त है। टीले पर प्राचीन ईटो के ढेर बिखरे पडे है। यहाँ किसी भवन सरचना का साक्ष्य नही मिलता है। यहाँ टीले पर धरातलीय सर्वेक्षण मे ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के साथ ही रेड वेअर के ठीकरे भी मिले है[74]। टीले का पूर्वी भाग वृक्षो से आच्छादित है, तथा दक्षिणी पार्श्व पर नये भवन निर्मित हुए है।

गोरखपुर से नौतनवॉ जाने वाले रेलमार्ग पर भगीरथपुर स्टेशन से लगभग 4 कि0 मी0 की दूरी पर **बनरसिहा** ग्राम अवस्थित है। इस स्थल का प्रथम सर्वेक्षण भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग की डॉ0 देवबाला मित्रा ने किया था, जिसमे उन्हे अनेक अवशेष मिले थे[75]। इस सर्वेक्षण के पश्चात् श्री कृष्णानद त्रिपाठी एव श्री देवधारी उपाध्याय ने भी इस स्थल का सर्वेक्षण किया था। इस सर्वेक्षण मे इन्हे अनेक मृण्मूर्तियाँ प्राप्त हुयी थी, जो बौद्ध सग्रहालय गोरखपुर मे सग्रहीत है। कुछ वर्ष पहले भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण विभाग (पटना

सर्किल) द्वारा इस स्थल का उत्खनन कराया गया था। विवरण अप्रकाशित (?)। कुछ विद्वान इस स्थल की पहचान देवदह से करते है।

धरातलीय सर्वेक्षण मे यहॉ से प्राचीन ईटो के टुकडे भी मिले है। इसके अतिरिक्त ग्रे वेअर के ठीकरे, रेड–वेअर के हॉडी के ठीकरे तथा भोजन बनाने वाले बर्तनो के साथ ही बेसिन भी मिला है। डा0 मित्रा को यहॉ से कुषाणयुगीन मूर्तियॉ एव सिक्के उपलब्ध हुए है।

गोरखपुर से लगभग 54 कि0मी0 पूरब **कुशीनगर** नामक ऐतिहासिक स्थल है। वर्तमान समय मे यह स्थल जनपद के रूप मे ख्यात है। बौद्ध धर्म से जुडने के कारण इस स्थल का विशेष महत्त्व है। यहॉ से लगभग 18 कि0मी0 दक्षिण– पूर्व मे फाजिलनगर नामक ऐतिहासिक स्थल है। इस स्थल के समीप ही सठियॉव नामक ग्राम अवस्थित है। यही एक टीला भी है, जिसका उत्खनन गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास पुरातत्त्व एव सस्कृति विभाग के पुराविद् डॉ0 एस0 एन0 चतुर्वेदी ने किया[6]। ए0सी0 एल0 कार्लायल ने सर्वप्रथम यह स्पष्ट किया कि फाजिलनगर–सठियॉव ही प्राचीन समय मे पावा के नाम से जाना जाता था, जो मल्लो की राजधानी के रूप मे ख्यात था[7]।

सम्भवत **फाजिलनगर** का टीला प्राचीन समय मे सठियॉव का ही एक भाग था। समीपवर्ती धरातल से टीले की ऊँचाई लगभग 9 मीटर है। यहॉ पर दो टीले है, जो आपस मे मिले हुए है। एक टीला कुछ ऊँचा है। तथा दूसरा अपेक्षाकृत कम ऊँचा है। निचला टीला उत्तर–पूर्व मे एक मजार के द्वारा बढा हुआ है, और दूसरा टीला पश्चिम दिशा मे है। टीला उत्तर से दक्षिण लगभग 80 मीटर और पूरब से पश्चिम 120 मी0 के क्षेत्र मे फैला हुआ है। यह टीला मानव एव प्रकृति के युगल हाथो से अत्यधिक प्रभावित हुआ है। सम्पूर्ण टीला जंगली झाडियाँ एव घासो से आच्छादित है।

सठियॉव के निचली भूमि के जमाव को, जो कि कम्पोस्ट खाद के निमित्त बनाए गए गर्त के रूप मे मिला था, खुरचकर (Scrapping) देखा गया। यहॉ पकी हुयी ईटो से निर्मित दीवाल के अवशेष दिखायी पडे, जिन्हे कुछ समय पहले तोड दिया गया था। ईटो का माप 42×26×6 सेमी0 था। यहॉ से रेड वेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा एन0बी0पी0 वेअर के ठीकरे मिले थे। इसके अलावा मृण्मूर्तियॉ, मिट्टी के मनके, टूटे हुए मुहर का सॉचा तथा लोहे के कुछ उपकरण भी मिले है। धरातलीय पुरावशेषो मे ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के ठीकरे तथा स्क्रेपिग से प्राप्त अन्य अवशेष स्पष्ट रूप से सकेत देते है कि यह पुरास्थल प्राग्मौर्य युग से लेकर मध्यकाल तक आबाद रहा।

उच्च टीले के शीर्ष एव उत्तरी ढलान पर उत्खनन कार्य किया गया, जिसमे सतह के ठीक नीचे अनेक भवनो के अवशेष मिले। इनमे गुप्त–युग एवं मध्य–युग के भवनो के अवशेष है। गुप्तकाल के स्तर से एक विशिष्ट भवन के साक्ष्य मिले है। यह 14 40×17 80 मी0 आकार मे समकोण चतुर्भुजाकार प्लेटफार्म के रूप मे है[78]। यह प्लेटफार्म पूरी तरह नही खोदा जा सका है।

यहॉ से प्राय ईंट से निर्मित भवनो के अवशेष बहुतायत से मिले है। कुछ अन्य पुरावशेष भी यहॉ से मिले है। इनमे मृण्मूर्तियॉ, मुहर एव मुहरो के सॉचे विशेष महत्त्वपूर्ण है। मृण्मूर्तियॉ अत्यधिक सख्या मे मिली है। इनमे स्त्री, पुरूष एव पशु मृण्मूर्तियॉ विशेष है। इन मूर्तियो मे गुप्तकाल की आदर्शभूत विशेषताए अन्तर्निहित है। इस प्रकार यह पुरास्थल प्राग्मौर्य युग से लेकर मध्ययुग तक सास्कृतिक निरन्तरता से जुडा हुआ है। यहॉ जो अवशेष मिले, उनमे गुप्तकाल से सम्बन्धित अवशेषो की सख्या अपेक्षाकृत अधिक है।

गुप्त काल से जुडा हुआ एक अन्य प्राचीन स्थल, समीपस्थ जनपद, जहॉ से सूर्य उपासना के प्रमाण मिले हैं, कुशीनगर मे अवस्थित है। जनपद (कुशीनगर) से लगभग 18 कि0मी0 पूरब, तमकुहीरोड मार्ग पर यह स्थल स्थित है। यहॉ से फाजिलनगर लगभग 8 कि0मी0 दक्षिण–पूर्व मे अवस्थित है। यह महत्त्वपूर्ण स्थल **तुर्कपट्टी–महुअवा**[79] (सूर्यपुरी) के नाम से जाना जाता है।

यहॉ से 1981 मे दो सूर्यप्रतिमाएँ आकस्मिक रूप से मिली थी। एक कृष्ण–पाषाण (Black Stone) (छायाचित्र सख्या–7) तथा दूसरी बालुका–पाषाण (Sand-Stone) से निर्मित है। ये दोनो ही मूर्तियॉ गुप्त कालीन है। ये मूर्तियॉ जब मिली थी, उस समय प्रचार–प्रसार के निमित्त स्थानीय लोगो ने इन मूर्तियो मे दैवीय शक्ति का आरोपण किया, और इससे सम्बन्धित एक कथा गढ डाला, जिसके अनुसार, 'भारीयोगी टीला' पर सुदामा शर्मा नामक एक लौहकार का घर था। श्री शर्मा को आए दिन दैवीय आपदाओं का सामना करना पड रहा था। इसी क्रम मे उनके परिवार के तीन लोग स्वर्गवासी हो चुके थे। इसी बीच 30 जुलाई की रात्रि मे उन्होने स्वप्न मे अनुभव किया कि किसी दैवीय शक्ति का उन्हे ऐसा आदेश मिला कि इन मूर्तियों को खोद निकालें, अन्यथा उनकी त्रासदी बढती जायेगी। स्वप्न मे मिले इस दैवीय आदेश को श्री शर्मा ने शिरोधार्य कर उत्खनन किया, जिसमे उक्त मूर्तियॉ मिली।

उल्लेखनीय है कि इस कहानी का एक मात्र उद्‌देश्य मूर्तियो को विशेष आध्यात्मिक महत्त्व देना है[80]। शोधकर्ता चूँकि यहॉ का स्थानीय निवासी है, अतएव वस्तु स्थिति को स्पष्ट करना अपना कर्त्तव्य समझता है।

ध्यातव्य है कि श्री सुदामा शर्मा से स्वय शोधकर्ता ने सम्पर्क किया है। श्री शर्मा ने स्पष्ट किया कि यह सब मनगढत कहानी है, जो मूर्तियो के प्रचार–प्रसार के लिए गढी गयी है। स्वप्न की बाते निराधार है।

ध्यातव्य है कि इन सूर्य मूर्तियो के मिलने से ठीक पहले श्री सुदामा शर्मा खम्मा गाडने के निमित्त एक छोटा गड्ढा खोद रहे थे। इसी समय यहाँ से इन्हे कुछ प्राचीन मूर्तिखण्ड (छायाचित्र सख्या–7) आकस्मिक रूप से मिले। ऐसी दशा मे कुछ महत्त्वपूर्ण (कीमती) अवशेषो के मिलने की आशा मे उन्होने अपने उत्खनन को विस्तृत किया, जिसमे ये दोनो अद्भूत सूर्य–मूर्तियॉ उन्हे उपलब्ध हुयीं। यह खबर इस क्षेत्र मे बडी तेजी से फैल गयी। अतएव इन मूर्तियो को स्थानीय जमीदार श्री नारायणी शाही के नेतृत्व मे अत्यन्त श्रद्धा–भाव से स्थापित कर दिया गया।

उत्खनन मे मूर्तियो के साथ ही एक अलकृत तोरण और अन्य बहुत सी सामग्रियॉ उपलब्ध हुयीं। यहाँ से सूर्य-मदिर का अवशेष उपलब्ध हुआ, जो अपने वास्तु-योजना मे भारत के समस्त सूर्य-मदिरो मे एकाकी है। यहाँ विशेष उल्लेखनीय है– नवनिर्मित मदिर। कुछ स्तम्भो पर तृणाच्छादित कोणाकार शिखर मदिर निर्माण प्रक्रिया के शैशव–कालीन अवस्था का स्मरण कराता है[31]।

तुर्कपट्टी से मिली ये दोनो मूर्तियॉ अपने विकसित प्रतिमा शास्त्र की दृष्टि से वृहत्सहिता, रूपमडन, विष्णुधर्मोत्तर पुराण एव विश्वकर्मा शिल्प के नियमानुसार निर्मित हैं। रूपमण्डन मे उल्लिखित है–

सर्वलक्षण संयुक्तं सर्वाभरण भूषिताम्।
द्विभुजं चैक मुखं च श्वेत पद्माधृतकरम्।।

अर्थात् सर्वलक्षणो से युक्त, सर्वाभरण विभूषित, द्विभुज सूर्य एक मुखवाले हो, तथा श्वेत पद्म धारण किए हुए निर्मित हों। विष्णुधर्मोत्तर पुराण मे भी लगभग ऐसा ही उल्लेख है। विश्वकर्मा शिल्प मे भी सूर्य प्रतिमा का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है। इस ग्रन्थ के अनुसार, द्विभुज, पद्मधारी, सर्वाभरण, अलकृत सूर्यदेव के साथ उनकी पत्नियो, राज्ञी एव निक्षुमा तथा पार्षद दण्ड एवं पिगल को प्रदर्शित करने का वर्णन है। वे सब लोको को प्रकाश देने वाले है – *सदीप्यमान वपुर्लोकैकदीपम्*।

उपर्युक्त दोनो प्रतिमाओ के प्रदर्शन मे इस ग्रन्थ के नियमो का अधिकाशत पालन हुआ है।

दोनो मूर्तियॉ अपने प्रतिमा–लक्षण की दृष्टि से उत्तर भारत के प्राय समस्त मंदिर समूहो मे उपलब्ध सूर्य मूर्तियो से साम्य रखती है।

विकास क्रम की दृष्टि से इन दोनो मूर्तियो पर तर्कपूर्ण दृष्टिपात करने से यही निष्कर्ष निकलता है कि इनमे सूर्य–मूर्तियो के विकासक्रम के चरमावस्था मे व्यवहृत समस्त तत्व विद्यमान है। अतएव ये मूर्तियॉ 9वी–10वी शताब्दी की कृतियॉ प्रतीत होती है। यद्यपि इनकी तिथि को पुराविदो ने और पहले (गुप्तकाल की) रखने का प्रयास किया है।

विवेचित सूर्य प्रतिमाओ के अतिरिक्त एक भव्य एव अलकृत तोरण भी उपलब्ध हुआ है, जो निश्चय ही उन मूल मन्दिरो के समीप स्थलो पर रहा होगा। उसके दोनो पार्श्ववर्ती रथिकाओ मे द्विभुजी आदित्य पद्मासन मुद्रा मे ध्यानावस्थित है। उल्लेखनीय है कि यह तोरण अवश्य ही मूल मदिर के सम्मुख स्थापित रहा होगा, जैसा कि खजुराहो के लक्ष्मण मदिर तथा कन्दरिया, विश्वनाथ आदि मन्दिरो मे अर्थ मण्डप के सम्मुख निर्मित है।

ये सभी उदाहरण इस क्षेत्र मे सूर्य–मन्दिर की उपस्थिति का तो बोध कराते ही है, साथ ही उत्तर भारतीय ग्रन्थ प्रासादमण्डन मे उल्लिखित उस सार्वदेशिक नियम का भी उद्वहन कर रहे है, जिसके अनुसार जिस देवता का मन्दिर हो उसके उत्तरग पर उसी देवता को स्थापित करने का निर्देश है *यस्य देवस्य या मूर्ति सैव कार्योत्तिरगके*। अ0 3, श्लोक 68

अर्थात् इस सार्वदेशिक नियम का गुप्तकाल से प्रारम्भ कर मध्ययुगीन प्रमुख मन्दिर समूहो तक मे अनिवार्यत पालन किया गया है। इसी कडी मे तुर्कपट्टी के उपर्युक्त विवेचित मदिर का तोरण द्वार (उत्तरग) भी आ जाता है।

इस प्रकार हम देखते है कि पूर्वी उत्तर–प्रदेश का यह भाग निश्चय ही गुप्त एव गुप्तोत्तर युगों में सौर–सम्प्रदाय का प्रमुख केन्द्र बन चुका था। वर्तमान समय मे भी यहॉ के समीपवर्ती गॉवो मे शाकद्वीपीय ब्राह्मणो की बहुलता है, जो निश्चय ही प्राचीन काल से ही सूर्य उपासना करते थे। इसी सन्दर्भ मे बस्ती जिले से प्राप्त अप्रकाशित सूर्य प्रतिमा भी उल्लेखनीय है, जो अपने लक्षणों की दृष्टि से विकासक्रम की चरमावस्था की कृति सिद्ध होती है[82]।

निष्कर्ष रूप मे कहा जा सकता है कि पूर्व मध्यकाल तक सूर्योपासक शाकद्वीपीय ब्राह्मणो का प्रवेश इस क्षेत्र मे (पूर्वी उत्तर–प्रदेश एव बिहार) हो चुका था, और उनके कारण इस क्षेत्र मे सूर्य–पूजा को प्रोत्साहन मिला। यह परम्परा इस स्थल के लोक-जीवन मे अद्यावधि स्थान रखती है। तुर्कपट्टी की सूर्य मूर्तियॉ एव मन्दिर इस सुदीर्घ परम्परा के मूक साक्षी हैं।

जनपद के **डोमिनगढ** नामक प्राचीन स्थल का परिचय प्रारम्भिक ऐतिहासिक युगीन सस्कृति के अन्तर्गत दिया जा चुका है। वर्तमान समय मे यह प्राचीन स्थल गोरखपुर से ठीक पश्चिम दिशा मे शहर के पार्श्व मे आ चुका है। ध्यातव्य है कि रोहिन (रोहिणी) पहले डोमिनगढ के पश्चिम दिशा से होकर बहती थी, किन्तु अब ठीक पूरब दिशा से होकर बहती है। टीले के दक्षिण–पूर्व मे रोहिन एव राप्ती का सगम है। यहॉ से 44X24X4 सेमी0 आकार मे जो ईटे उपलब्ध हुयी है, वे फाजिलनगर (जनपद कुशीनगर) के उत्खनन मे उपलब्ध गुप्तकालीन ईटो से साम्य रखती है। इन साक्ष्यो के आलोक मे कहा जा सकता है कि गुप्तकाल या गुप्तोत्तर काल मे भी यह स्थल आबाद रहा होगा। यहॉ गुप्तकालीन मृद्भाण्डो के ठीकरे भी उपलब्ध हुए है।

अतएव डोमिनगढ को ऐतिहासिक युगीन सस्कृति से जोडा जा सकता है। यहॉ सास्कृतिक गतिविधियॉ मध्ययुग तक चलती रही।

राप्ती के किनारे **भीटी तिवारी** नामक प्राचीन स्थल, गोरखपुर जनपद मुख्यालय से सोनौली–राजमार्ग पर अवस्थित पीपीगज से लगभग 5 कि0 मी0 दक्षिण–पश्चिम दिशा मे स्थित है। इस प्राचीन स्थल का सम्बन्ध पालयुग से है। लगभग 7 एकड के क्षेत्र मे विस्तृत टीले पर एक मदिर (आधुनिक) है, जिसमे पालयुगीन लिग स्थापित है। इसी टीले से 12वी शताब्दी ई0 की दशावतार विष्णु की एक प्रतिमा मिली थी, जो एक स्थानीय व्यक्ति के यहॉ सुरक्षित है। एक अन्य खण्डित पालयुगीन नवग्रहपट्ट भी यहॉ से उपलब्ध हुआ है। टीले के पार्श्ववर्ती क्षेत्र मे रेड वेअर के ठीकरे भी दिखायी पडते है।

मलौर नामक पालयुगीन प्राचीन स्थल, गोरखपुर से सहजनवॉ–घघसरा मार्ग पर सहजनवॉ से लगभग 3 कि0 मी0 पश्चिम मुख्य सडक से लगभग 2 कि0 मी0 दक्षिण दिशा में स्थित है। यहॉ टीले पर एक पोखरा है। पोखरे के पास टीले से पाल युगीन एक सूर्य प्रतिमा मिली है, जिसे इसी ग्राम के एक मन्दिर मे स्थापित किया गया है।

गोरखपुर से उत्तर, उत्तर–पूर्व दिशा मे लगभग 15 कि0मी0 की दूरी पर **जटाई ग्राम** है। इस ग्राम मे 'असुरन का पोखरा' नामक पोखरा है। यह पोखरा जटाई ग्राम मे स्थित है[83]। यही पोखरे के समीप से लगभग 9वी–10वी शताब्दी ई0 की विष्णु की एक मूर्ति मिली है। मूर्ति काले पत्थर की बनी हुयी है। यह मूर्ति कमलासन पर खडी, शख, चक्र, गदा और पद्म धारण किए हुए वरद मुद्रा मे है। दोनो तरफ चमरवाहिनी और ऊपर गरूड की छोटी मूर्ति बनी है[84]। इस मूर्ति को मझौली राजा द्वारा बनवाये गये मन्दिर मे स्थापित किया गया है। मन्दिर के पश्चिम एक टीला है जो निरन्तर कटाव के कारण समतल होता जा रहा है। तेजी से हो रहे निर्माण कार्यों के कारण यहॉ प्राचीन अवशेष दृष्टिगोचर नहीं होते है। यहॉ पोखरे को राजा श्रीपाल

देव ने खुदवाया था[35]। यहॉ स्थल की आकृति देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि इसके गर्भ मे महत्त्वपूर्ण सूचनाओ से सम्बन्धित प्राचीन अवशेष छिपे हुए है।

देवकली (निकट गगहा) नामक प्राचीन स्थल गोरखपुर–वाराणसी राजमार्ग पर गगहा से 3 कि0मी0 पश्चिम है। यहॉ एक ऊॅचा टीला है। यहॉ प्राचीन भवनो के अवशेष दृष्टिगोचर होते है। टीले पर एक नवनिर्मित मन्दिर है, जिसमे 11 वी शताब्दी ई0 की0 दो सूर्य मूर्तियॉ, एक गणेश (पूर्व मध्ययुगीन) तथा एक मातृ–शिशु की मूर्ति स्थापित की गयी है। टीले के समीप ही पालयुगीन एक सूर्य–मूर्ति मिली थी, जिसे यहॉ एक मन्दिर मे स्थापित किया गया है। इस प्रकार यह एकाकी स्थल है, जहॉ से तीन सूर्य प्रतिमाऍ मिली है।

उपर्युक्त टीले के ठीक दक्षिण मे लगभग 5 एकड के क्षेत्र मे विस्तृत एक अन्य टीला भी है, जिसकी ऊॅचाई लगभग 15 मी0 है। यहॉ से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर, रेड–ग्रे वेअर तथा रेडस्लिप्ड वेअर के ठीकरे उपलब्ध होते है। इस ग्राम मे शाकद्वीपीय ब्राह्मणो का बाहुल्य है।

सरया नामक पालयुगीन प्राचीन स्थल, गोरखपुर–खजनी –बासगॉव, मार्ग पर जनपद मुख्यालय से लगभग 20 कि0मी0 दक्षिण दिशा मे स्थित है। आमी नदी यहॉ से 2 कि0मी0 उत्तर दिशा मे बहती है। सरया ग्राम के दक्षिण एक पोखरा है। इसके किनारे एक टीला है। इस टीले पर पालयुगीन एक अष्टफलकीय, शिवलिग (छायाचित्र सख्या–9) स्थापित है। यहॉ ग्राम के मध्य भाग मे एक मदिर है। इस मदिर मे पालयुगीन एक अग्नि प्रतिमा स्थापित की गयी है। यह अग्नि प्रतिमा (छायाचित्र संख्या–8) इसी पोखरे से उपलब्ध हुयी है।

जनपद के **पिपराइच** नामक पुरास्थल से पालयुगीन सूर्य की प्रस्तर–मूर्ति मिली है। यह पू0 स0 मे रखा गयी है। जनपद मुख्यालय से लगभग 18 कि0मी0 उत्तर–पूर्व मे यह पुरास्थल स्थित है। गोरखपुर छितौनीघाट, लूपलाइन (रेलवे) से भी यहॉ पहुॅच सकते है।

जनपद मुख्यालय से लगभग 19 कि0मी0 दक्षिण सिकरीगज–बडहलगज मार्ग पर **भरोहिया** नामक प्राचीन स्थल अवस्थित है। यहॉ सडक के किनारे, सामान्य धरातल से लगभग 150 मीटर ऊॅचा एक टीला है। सडक के पूरब एक आधुनिक मन्दिर है। मदिर के पास ही एक वट वृक्ष है जिसके नीचे प्राचीन काल के प्रस्तर मूर्ति–खण्ड बिखरे पडे है। सर्वेक्षण के दौरान यहॉ से मुझे कुषाण कालीन लाल रग के मृद्भाण्ड का टुकडा उपलब्ध हुआ है (रेखाचित्र सख्या–29, न0 6)।

संदर्भ :

1 पाण्डेय, जे0एन0, 1983, *पुरातत्त्व विमर्श*, पृष्ठ 258, 1983

2 तत्रैव

3 तत्रैव, पृष्ठ 259–60

4 शर्मा, गोवर्द्धन राय, *भारतीय सस्कृति पुरातात्त्विक आधार*, पृष्ठ 57

4ए चतुर्वेदी, एस0एन, 1985, एडवास आफ विन्ध्यन नियोलिथिक एण्ड चाल्कोलिथिक कल्चर्स टू दि हिमालय तराई, *मैन एण्ड एनवर्नमेण्ट*, वाल्यूम 9, पृष्ठ–108

5 सिन्हा, के0 के0, 1959, *एक्सकेवेशन ऐट श्रावस्ती*

6 चतुर्वेदी, एस0एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 103

7 चतुर्वेदी, एस0 एन0, 1980, एक्सकेवेशन ऐट सठियाव-फाजिलनगर डिस्ट्रिक्ट देवरिया एण्ड एक्सप्लोरेशन्स इन दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ गोरखपुर एण्ड बस्ती ऑफ उत्तर प्रदेश, *हिस्ट्री एण्ड आर्क्यालाजी*, वाल्यूम न0 1–2, पृष्ट–333, इलाहाबाद।

8 श्री कृष्णानद त्रिपाठी के साथ विमर्श से ज्ञात हुआ।

9 श्री त्रिपाठी के साथ विमर्श के आधार पर।

10 चतुर्वेदी, एस0एन0, 1980, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 333–340

11 श्रीकृष्णानद त्रिपाठी से व्यक्तिगत विमर्श के आधार पर

12 श्रीकृष्णानद त्रिपाठी से व्यक्तिगत विमर्श के आधार पर।

13 *इ0 आर्क0* पृष्ठ 56 (1961–62)

14 तत्रैव, पृष्ठ 45–46 (1974–75)

15 तत्रैव, पृष्ठ 45(1963–64)

16 तत्रैव, पृष्ठ 45–46(1974–75)

17 सिह, पी0, माखन लाल और अशोक कुमार सिह एक्सकेवेशन ऐट नरहन 1983–85, *पुरातत्त्व* न0 15, 1985–86, पृष्ठ 117

18 सिह, पुरूषोत्तम *एक्सकेवेशन ऐट नरहन*, 1994,पृष्ठ–33

19 सिह, पुरूषोत्तम, आर्क्यालाजिकल एक्सकेवेशन ऐट इमलीडीह खुर्द– 1992, *प्राग्धारा*, अक–3, 1992–93,पृष्ठ 31

20 फ्यूहरर, ए0, *मान्यूमेण्टल एन्टीक्विटीज एण्ड इन्सक्रिप्सन्स ऑफ नार्थ वेस्ट प्राविन्सेज एण्ड अवध*, पृष्ठ–241

21 सिह, पुरूषोत्तम, सिह, अशोक कुमार, सिह, इन्द्रजीत ट्रायल डिगिग ऐट धुरियापार, *प्राग्धारा*,, अक 2, 1991–92 पृष्ठ 55

22 तत्रैव, पृष्ठ 55–59

23 श्री कृष्णानद त्रिपाठी से विमर्श के पश्चात् ज्ञात हुआ।

24 सिह, पुरूषोत्तम, 1992–93, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 35

25 पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–368

26 तत्रैव॰

27 तत्रैव

28 श्री कृष्णानद त्रिपाठी (सग्रहालयाध्यक्ष गो0वि0गो0) से विमर्श से ज्ञात।

29 सिह, पुरूषोत्तम, 1994, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 34

30 मल्लानामधिप चैव पार्थिव चाजयत् प्रभु।

— *महाभारत,* 2 30 3

31 ततो दक्षिण मल्लाश्च भोगवन्त च पर्वतम्।
तरसैवाजयद् भीमो नाति तीव्रेण कर्मणा।।

— *महाभारत,* 2 30 12

32 गाइल्स, *ट्रवेल्स आफ फाहियॉन,* पृष्ठ 40—41

33 कपिलावट ततो गच्छेत तीर्थसेवी नराधिप।
उपोष्य रजनी तत्र गोसहस्रफल लभेत्।।

— *महाभारत,* वनपर्व

34 रिज, डेविड्स, *बुद्धिस्ट इण्डिया,* (लन्दन,1903), पृष्ठ 15 एन

35 कपिलस्य च तस्यर्षेस्तस्मिन्नाश्रमवास्तुनि।
यस्मात्पुरं चक्रुस्तमात कपिल वास्तुतत्।।

— *सौन्दरनन्द*

36 चतुर्वेदी, एस0 एन0, 1985 *पूर्वोद्धृत,* पृष्ट—103

37 सिह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ट—34

38 तत्रैव, पृष्ठ—35

38ए तत्रैव, पृष्ठ 26

39 सिह, पी0, सिह अशोक कुमार, तथा सिह इन्द्रजीत, (1991—92), पूर्वोद्धृत, पृष्ठ—58

40 सिह, पी0, 1992—93, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ—34

41 तत्रैव, पृष्ठ 21—36

42 *इ0 आर्क0,* पृष्ठ 45 (1963—64)

43 *इ0 आर्क0,* (1963—64), पृष्ठ—45, *इ0 आर्क0,* (1974—75), पृष्ठ 45—46

44 *ई0 आर्क0,* (1963—64), पृष्ठ 45

45 चतुर्वेदी, एस0 एन0, 1980, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 338, इलाहाबाद

46 श्रीकृष्णानद त्रिपाठी से हुए विमर्श से ज्ञात हुआ।

47 श्रीवास्तव, के 0 एम0, *डिस्कवरी ऑफ कपिलवस्तु,* पृष्ठ 247

48 *आ0 स0 इ0 रि0,* वाल्यूम 18, पृष्ठ 31—55

49 यहॉ की (बौद्ध सग्रहालय) मूर्तियॉ अत्यन्त घिसी हुयी हैं, अतएव विवरण देना सम्भव नही है।

50 कनिघम, *ऐन्श्येन्ट ज्याग्रफी ऑफ इण्डिया,* पृष्ठ —267

51 श्री त्रिपाठी (सग्रहालयाध्यक्ष गो० वि० वि० गो०) के साथ विमर्श से ज्ञात हुआ है।

52 इस स्थल का प्रथम सर्वेक्षण गोरखपुर विश्वविद्यालय के श्री कृष्णानद त्रिपाठी ने वर्ष 1976–77 मे किया था(श्री त्रिपाठी से विमर्श से ज्ञात हुआ)।

53 *इ० आर्क०*, (1963–64), पृष्ठ 45

54 तत्रैव

55 तत्रैव

56 तत्रैव

57 तत्रैव

58 चतुर्वेदी, एस० एन०, 1980, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 338

59 *इ० आर्क०*, (1963–64), पृष्ठ 45

60 तत्रैव, (1963–64), पृष्ठ 45

61 तत्रैव, (1961–62), पृष्ठ 103–104

62 *ए० एस० आई० आर०*, वाल्यूम 22, पृष्ठ 64–65

63 तत्रैव, वाल्यूम 18, पृष्ठ 41

64 *गो० ज० इ०*, पृष्ठ 234

65 फ्यूहरर, ए० 1969, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–242

66 सिह, पुरूषोत्तम, माखन लाल एव सिह, ए०के०, 1985–86, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–119

67 सिह पी०, सिह अशोक कुमार एव इन्द्रजीत, सिह, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–58

68 सिह, पुरूषोत्तम 1992–93 ,*पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–21

69 फ्यूहरर, ए०, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–242

70 तत्रैव

71 *इ० आर्क*, (1963–64), पृष्ठ 45

72 तत्रैव, *इ० आर्क*, (1975–76), पृष्ठ 45–46

73 *इ० आर्क*, (1963–64), पृष्ठ 45

74 तत्रैव

75 तत्रैव, (1961–62), पृष्ठ 103–104

76 विस्तृत जानकारी के लिए द्रष्टव्य, इसी शोध प्रबन्ध का द्वितीय अध्याय।

77 चतुर्वेदी, एस०एन०, 1980, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 333

78 तत्रैव, पृष्ठ 334

79 उल्लेखनीय है कि सूर्य षष्टी के अवसर पर आयोजित सगोष्ठी मे डॉ० एस० एन० चतुर्वेदी (प्रो० एव अध्यक्ष, प्राचीन इतिहास पुरातत्व एव सस्कृति विभाग गो० वि० गो०) ने अपने वक्तव्य मे इस स्थल को तुर्कपट्टी के स्थान पर

'सूर्यपुरी' के नाम से अभिहित करने की इच्छा प्रकट की थी, जो स्थल के *सौरसम्प्रदाय* से निकटतम सम्बन्ध को स्वयमेव व्यक्त कर देगा।

80 श्री सुदामा शर्मा से सम्पर्क के दौरान ज्ञात हुआ।

81 औदुम्बर घरघोष के सिक्के पर उत्कीर्ण मदिर के शिखर का रूप इससे तुलनीय है।

82 यह प्रतिमा गोरखपुर विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास विभाग के सग्रहालयाध्यक्ष (क्यूरेटर) श्री कृष्णानद त्रिपाठी ने बरती जिले के देवकुण्डा ग्राग गे सर्वेक्षण के फलस्वरूप प्राप्त किया।

83 *ए0 एस0 आई0 आर0*, वाल्यूम 22, पृष्ठ 68

84 *गो0 ज0 इ0*, पृष्ठ 172–73

85 फ्यूहरर ए0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 242

सांस्कृतिक विवेचन

नवपाषाण कालीन संस्कृति

मनुष्य एक प्रबुद्ध प्राणी है, यह तथ्य सभ्यता के प्रारम्भिक दिनो से ही स्वीकार किया जाता रहा है। अतीतकाल मे मानव अनेक सकटो से उबरकर जिया है, और वह ऐसा इसलिए कर सका है, क्योकि उसमे नयी तकनीके विकसित करने की सामर्थ्य और क्षमता थी। यदि उसने अपने शक्तिशाली दॉत और नाखून खो दिये है, तो इसका कारण यह था कि उसने प्रखर मस्तिष्क को वरीयता दी। इस अतिरिक्त क्षमता को पाकर वह उन्नत प्रौद्योगिकी (Developed Technology) तथा सस्कृति की सहायता से प्रकृति की चुनौतियो पर विजय प्राप्त कर सकता था। प्रारम्भ मे उसके जीवन का मुख्य आधार प्रस्तर प्रौद्योगिकी थी, जिसमे मनुजोचित जिज्ञासा एव बौद्धिक–विमर्श के फलस्वरूप उत्तरोत्तर परिवर्तन होता रहा। प्रारम्भ मे मास उसके भोजन का प्रमुख उपादान था, जिसे प्रस्तर–उपकरणो की सहायता से ही उपलब्ध किया जा सकता था। ये प्रस्तर उपकरण मध्य पाषाण काल तक आते–आते, आकार–प्रकार मे लघु एव विविधतापूर्ण बनने लगे। अब आकार मे बडे एव भारी प्रस्तर उपकरणो को बदले परिवेश मे नयी आवश्यकताओ के लिए विकसित मानव मस्तिष्क स्वीकार नही कर पा रहा था। हल्के एव लघु पाषाण उपकरण उसके लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हो रहे थे। फलत लघुपाषाणोपकरणो के प्रति उसकी अभिरुचि बढ रही थी। यही कारण है कि मध्य पाषाणिक स्तरो से माइक्रोलिथ्स बहुतायत से मिलते है।

मध्य पाषाणिक सस्कृति के ही परवर्ती चरण मे तकनीक और अन्य क्षेत्रो में परिवर्तन प्रारम्भ हो गये थे, जिससे नवपाषाणिक सस्कृति का विकास हुआ। नवपाषाणिक प्रस्तर उपकरणो मे पूर्वापेक्षा कुछ विशिष्टताए दृष्टिगोचर होती है। पहले प्रस्तर उपकरणो का निर्माण मुख्य रूप से फलकीकरण की प्रविधि से किया जाता था, लेकिन अब पाषाण उपकरणो को अभीष्ट आकार देने के लिए फलकीकरण के पश्चात् उसे गढने (Pecking), घिसने (Grinding) तथा चमकाने (Polishing) का उपक्रम भी किया जाता था। मनुष्य ने पाषाण सामग्री को रगड–रगड कर चिकना और चमकदार बनाना प्रारम्भ कर दिया। इससे उसमें अद्भुत सुदरता आ गयी। वह पहले की अपेक्षा अधिक सुडौल, सुव्यवस्थित, बहुसंख्यक और बहुरूप होने लगी। मनुष्य

ने पाषाण के साथ–साथ हड्डी और लकडी की सहायता से भी अपने उपकरण एव अन्यान्य वस्तुओ का निर्माण करना प्रारम्भ किया। इन उपकरणो का उपयोग जहॉ एक ओर आखेट के निमित्त किया जा रहा था, वही दूसरी ओर जीवन की अन्यान्य जरूरतो के लिए भी ये उपयोगी थे।

नवपाषाणिक मानव के गहन सोच–विचार के परिणामस्वरूप ही पशुओं को पालतू बनाया गया होगा, क्योकि आखेट से उपलब्ध मास का अधिशेष भाग नष्ट हो जाता था। अतएव पशुओ को पालतू बनाकर अपने अधिशेष को स्थायित्व प्रदान करना, नवपाषाणिक मानव के क्रातिकारी सोच का परिणाम था। इसी अवधि मे पहली बार उसने कृषि करना भी सीखा, जिसमे पशुओ (मवेशियो) के महत्व को स्वीकार किया गया। भारतीय उपमहाद्वीप मे अवस्थित विविध नवपाषाणिक स्थलो के उत्खनन मे जौ, गेहूँ, चावल, मसूर तथा मटर के दानो के साक्ष्य मिले है, जो इस युग की उन्नत कृषि के प्रमाण है। ये सभी साक्ष्य नवपाषाणकाल की मिश्रित अर्थ–व्यवस्था की कहानी कहते है।

भारतीय उपमहाद्वीप के विविध क्षेत्रो मे समय–समय पर उत्खनन एव अन्वेषण होते रहे है। इन उत्खननो एव अन्वेषणो से नवपाषाणिक मानव के जीवन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण सूचनाए मिलती रही है। इन सूचनाओ के आधार पर इनके सास्कृतिक जीवन की रूपरेखा प्रस्तुत की गयी है। यद्यपि इस रूपरेखा मे क्षेत्रीय विभेद को नजरअदाज नही किया जा सकता है, लेकिन ये विभेद विशेष महत्त्वपूर्ण नही है। क्योकि नूतन पाषाणिक मानव की मौलिक आवश्यकताए विविध क्षेत्रो मे एक समान थी। अतएव इनसे सम्बन्धित उपकरण–प्रकार भी बहुत सीमा तक मिलते जुलते है। यही कारण है कि इनके सास्कृतिक जीवन की कहानी सर्वत्र लगभग एक समान है।

सरयूपार परिक्षेत्र की सास्कृतिक गतिविधियो का केन्द्र गोरखपुर जनपद रहा है। इस परिक्षेत्र में प्रथम मानव (नवपाषाणिक–मानव) का पदार्पण विन्ध्य क्षेत्र से हुआ था। यह स्वाभाविक है कि नवागतुक मानव ने अपना प्रथम आवास जनपद के दक्षिणी हिस्से मे बनाया होगा। तत्पश्चात् यहॉ की जलवायु एवं जीवन के लिए अन्य उपयोगी उपादानो से साक्षात्कार किया होगा। कालातर मे इसने जनपद के अन्य क्षेत्रो में भी अपने आवास बनाए। यही कारण है कि सीमावर्ती जनपदो से भी नवपाषाणिक पुरासामग्रियॉ उपलब्ध हुयी है। जिन स्थलो से ये पुरासामग्रियॉ मिली है, उनमे मुख्यत लहुरादेवा, बडगो, सूसीपार, रामनगरघाट, गेडार एव पुरानाखण्डी (महराजगज जनपद मे पुरेना ताल के किनारे) उल्लेखनीय है। जनपद के सोहगौरा एव इमलीडीह नामक पुरास्थलो के उत्खनन से इस युग के हस्त–निर्मित पात्रो के प्रमाण उपलब्ध हुए है।

जनपद के उत्खनित स्थलो से नवपाषाणिक मानव के आवास–विन्यास, कृषि मे अभिरूचि एव विशेषत उसकी मृदभाण्ड परम्पराओ के ऊपर प्रकाश पडता है। यद्यपि इस परिक्षेत्र के कुछ स्थलो के धरातलीय सर्वेक्षण मे लघुपाषाणोपकरण भी उपलब्ध हुए है। लेकिन उत्खनित स्थलों, सोहगौरा एव इमलीडीह

के नवपाषाणिक स्तरो पर इनका अभाव है। नवपाषाणिक मानव के आवास, कृषि एव मृद्भाण्ड परम्पराओ के अतिरिक्त अन्य पक्षो के विवरण के लिए विन्ध्य क्षेत्र एव मध्य गगाघाटी के उत्खनित स्थलो के विवेचनो को यहॉ आधार बनाया गया है।

सोहगौरा का प्रथम उत्खनन 1961–62 मे गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से किया गया[1]। पुन 1974–75 मे यहॉ पर उत्खनन हुआ, जिसमे सोहगौरा की प्राचीनतम सस्कृति (नवपाषाणिक सस्कृति) से साक्षात्कार हुआ[2]। यहॉ के 4 40 मीटर सास्कृतिक जमाव को छ सास्कृतिक कालो मे विभक्त किया गया[3]। प्रथम काल से नवपाषाणिक सस्कृति के मृद्भाण्ड बहुतायत से मिले[4]।

1992 मे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की ओर से इमलीडीह मे उत्खनन कार्य सम्पन्न हुआ[5]। इस उत्खनन मे तीन सास्कृतिक चरणो का उदघाटन हुआ। प्रथम सस्कृति 'प्री–नरहन सस्कृति' के नाम से अभिहित की गयी। इस काल का सास्कृतिक जमाव लगभग 50–60 सेमी0 था[6]। इसके ठीक ऊपर 'नरहन सस्कृति' का जमाव था[7]। प्री0–नरहन सस्कृति, नवपाषाण काल की सस्कृति है। इमलीडीह के द्वितीय काल का सम्बन्ध ताम्रपाषाणिक सस्कृति से है।

आवास :

इमलीडीह के नवपाषाणिक स्तर के उत्खनन से यह प्रमाणित हो चुका है कि विन्ध्य क्षेत्र एव मध्य गगा घाटी के नवपाषाणिक लोगो की भॉति इस क्षेत्र के नवपाषाणिक लोग भी बॉस–बल्ली से निर्मित झोपडियो मे रहते थे[8]। बॉस एव नरकुल की छाप से युक्त मिट्टी के टुकडो से इन झोपडियों के विषय मे जानकारी मिलती है। फर्श मिट्टी से बनाए जाते थे। तत्पश्चात् इसे गीली मिट्टी से लीप–पोतकर चिकना बनाया जाता था। मिट्टी से बने फर्श की मोटाई 25 से 30 सेमी0 के बीच रहती थी[9]।

इनकी झोपडियो से भट्ठियो एव चूल्हों के प्रमाण भी मिले है[10]। ये अपने घरो मे अनाज रखने के लिए गड्ढे (Silo or Bin) बनाते थे। इन गड्ढो से अनाज के दानो के प्रमाण मिले है। इन गड्ढो की दीवाल लगभग 7 सेमी0 मोटी बनायी जाती थी। इनके घरो मे फर्श से छोटे–छोटे मनके (Microbeads), जो कि स्टिटाइट (Steatite) के बने हुए है, मिले है। इसके अतिरिक्त मिट्टी, अगेट (Agate) एव फेयन्स के मनके भी मिले है। हड्डी के बाणाग्र एव बर्तनो के टुकडो से बने चक्रिका (Pottery disc) भी मिले है।

मृद्भाण्ड :

विन्ध्य क्षेत्र की भॉति इस परिक्षेत्र मे भी कई प्रकार के मृद्भाण्डों के प्रचलन के प्रमाण मिले हैं। इन मृद्भाण्डो मे सालन (Degraissant) के रूप मे धान की भूसी एवं पुआल के टुकडों का उपयोग किया गया

है। इस परिक्षेत्र मे मुख्यत हस्त निर्मित, रज्जु–छाप मृद्भाण्ड (Cord impressed Pottery) एव खुरदरे मृद्भाण्ड प्रचलित थे। इसके अतिरिक्त कुछ चमकाए गये मृद्भाण्ड भी मिले है। उपर्युक्त नवपाषाणिक मृद्भाण्डो मे रज्जु–छाप मृद्भाण्ड विशेष महत्वपूर्ण है[11]। कार्डेड वेअर प्राय रेतीली मिट्टी से बने हुए है तथा इनकी बाहरी सतह पर डोरी या बटी हुयी रस्सी की छाप है। कुछ पात्रो पर कछुए की छाप (Tortoise shell impression) भी मिलती है[12]। रस्टिकेटेड (खुरदरे) पात्रो के अवशेष सोहगौरा से मिले है। इन मृद्भाण्डो के बाहरी धरातल पर मिट्टी के घोल मे पुआल के टुकडे एव भूसी मिलाकर लेप किया गया है[13]। ऐसा प्रतीत होता है कि यह तरीका बर्तन को मजबूत बनाने के लिए अपनाया गया है।

रस्टिकेटेड पात्र मध्यम गढन के है। ये बहुत कम पके हुए है। कुछ ऐसे भी रस्टिकेटेड पात्र मिले है जिन पर रस्सी की छाप है[14]। रस्टिकेटेड पात्र का एक ऐसा टुकडा मिला है, जो रूक्ष गढन (Coarse Fabrics) तथा हल्के लाल रग का है। इस पर सूखी घास एव पत्तियो की छाप है[15]।

इमलीडीह से रूक्ष लाल रग (Crude Red ware) के पात्र मिले है, जिनमे से कुछ पर रस्सी की छाप है। यहॉ से मिले कार्डेड वेअर मे मुख्यत अण्डाकार (Ovaloid) और इससे मिलते–जुलते (Sub ovaloid) पात्र है। यहॉ से उपलब्ध कार्डेड वेअर विविधता लिए हुए है। इनमे से कुछ पर रस्सी की तरह आडी–तिरछी (Criss-Cross) और दॉतेदार (Encised) आकृतियॉ बनी है। इन डिजाइनो को बनाने के बाद बर्तन को आग मे पकाने के पहले इन पर गीली मिट्टी का गाढा लेप लगाया जाता था। परिणामत रस्सी की छाप वाली डिजाइने ढॅक गयी है।

बर्तनो के गोडे सम्भवत बाद मे अलग से लगाए गये थे[16]। यहॉ से एक ऐसा कटोरा मिला है, जिसकी ऊॅचाई 7 सेमी0 और व्यास 16 सेमी0 है। यहॉ से कुछ घर्षित (Burnished) पात्र भी मिले है[17]। बर्तनो को सम्भवत हड्डी या अच्छी किस्म के रवेदार पत्थर के उपकरण से घिसा गया है। डॉ0 एस0 पी0 गुप्ता के अनुसार यह पत्थर का रहा होगा, जो ओनिक्स (Onyx) या जैस्पर का बना होगा। गुजरात मे आज भी इस तरह के पत्थर का प्रयोग होता है।

यहॉ का दूसरा पात्र प्रकार घडा है। रस्सी की छाप पूरे घडे के ऊपर दिखलायी पडती है। ये टुटी हुयी दशा मे मिले है। इसके अतिरिक्त लाल रग का हाण्डीनुमा भोजन पकाने का पात्र भी यहॉ से उपलब्ध हुआ है। कुछ ऐसी हाण्डियॉ मिली है, जिनका मुॅह पर व्यास 29 सेमी0 तथा मध्यवर्ती हिस्से का व्यास 41 सेमी0 है। इन पात्रो के गर्दन एव कन्धे पर चमकीले लाल रंग की पट्टी बनी हुयी है और नीचे के भाग पर रज्जु अलकरण है।

इसके अतिरिक्त इमलीडीह से लगभग एक दर्जन ट्यूब के आकार की बनी हुई टोटियॉ भी मिली है,[18] जिनकी लम्बाई 5 14 सेमी0 से 6 57 सेमी0 तक है। इनके ऊपर चमकीले लाल रग की स्लिप भी है। ये टोटियॉ निश्चित ही हाडियो मे लगे थे। विन्ध्य क्षेत्र मे टोटीदार कटोरे भी मिले है, हो सकता है कि इस क्षेत्र मे भी कुछ टोटियॉ कटोरे मे भी लगायी गयी हो।

बर्तनो को विविध प्रकार से अलकृत किया गया है। यहॉ पर बर्तनो को आसञ्जन विधि से भी अलकृत किया गया है। आसञ्जन विधि का प्रयोग केवल हाण्डियो पर ही किया गया है।

सादे लाल रग के पात्र सोहगौरा एव इमलीडीह दोनो ही स्थलो से मिले है।

पशुपालन एवं कृषि :

नवपाषाण काल मे पहली बार पशुओ को पालतू बनाने की परम्परा का सूत्रपात हुआ। इनके पालतू पशुओ मे मवेशियो के साथ भेड–बकरियो का उल्लेख किया जा सकता है। इस प्रसग मे महगडा से प्राप्त पशुओ के बाडे (Cattlen Pen) का उल्लेख किया जा सकता है। आयताकार यह बाडा 12 5 x 7 5 मीटर का है। बाडे के अन्दर मवेशियो एव भेड–बकरियो के खुरो के निशान मिले है।

गोरखपुर परिक्षेत्र मे भी उत्खनन के दौरान पशुओ की हड्डियॉ बहुतायत से मिली है। ये सभी अस्थि–अवशेष प्राकृतिक धरातल पर कूडे फेकने के निमित्त बने गड्ढो से मिले है, जिनकी पहचान इलाहाबाद विश्वविद्यालय के डॉ0 यू0 सी0 चट्टोपाध्याय ने की है[19]। इन अस्थि–अवशेषो मे चौपाए पशुओ, यथा, भेड–बकरी एव सूअर की हड्डियॉ मिली है। इन अस्थि–अवशेषो मे कुछ पर धारदार हथियार से काटने के निशान है। ऐसा प्रतीत होता है कि मास के लिए पशुओ का वध किया जाता था। सम्भवत मास इनके भोजन का अभिन्न अग था। हिरण और कुछ मासाहारी पशुओ के अस्थि–अवशेष भी यहॉ से मिले है।

इमलीडीह के उत्खनन के दौरान जलजीवो मे समुद्री कछुआ, मछली एवं घोघा के प्रमाण मिले हैं। जलजीवो मे सम्भवत कछुआ लोकप्रिय था, क्योकि सोहगौरा से उपलब्ध मृद्भाण्डो पर कछुए की खोपडी की छाप मिली है।

जनपद के उत्खनित स्थलो (सोहगौरा एव इमलीडीह) से प्राप्त मृद्भाण्डो के ठीकरो पर धान के दानो, भूसी तथा पुआल के कार्बनीकृत अवशेष चिपके हुए मिले है। इन साक्ष्यो से धान के ओराइजा सताइवा (Oryza Satıva) किस्म की पहचान की गयी है। इन साक्ष्यो के आलोक मे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है

कि चावल इनका प्रमुख खाद्यान्न था। ध्यातव्य है कि सभी नवपाषाणिक स्थलो से धान की खेती के प्रमाण मिल चुके है।

इमलीडीह से गेहूँ एव जौ के दाने भी उपलब्ध हुए है। यहाँ से गेहूँ के 32 दाने मिले है[20]। इनकी पहचान ब्रेड ह्वीट (Bread Wheat) और ड्वार्फ ह्वीट (Dwarf Wheat) के रूप मे की गयी है। यहाँ छ लाइनो वाले जौ के बालि का साक्ष्य भी मिला है। इसके अतिरिक्त ज्वार–मिलेट (Jwar-Millet) के दो दाने और एक दाना बाजरा (Pearl-Mıllet) का भी मिला है[21]।

दलहन मे मटर, मसूर, खेसारी तथा फील्ड–पी (मटर का एक प्रकार) के दाने मिले है[22]। तैलीय अनाजो मे फिल्ड ब्रैसिका (Fıeld-brassıca) के तीन दाने तथा तिल का एक दाना मिला है[23]। फलो मे बेर, ऑवला और अगूर के प्रमाण यहॉ से मिले है।

उपर्युक्त प्रमाणो के आलोक मे कहा जा सकता है कि इस परिक्षेत्र के निवासी विविध प्रकार के फसलो की खेती करने मे पारगत थे। ये लोग फलो के भी शौकीन थे। इसका प्रमाण बेर, आवला, एव अगूर के साक्ष्यो से मिलता है। इन साक्ष्यो के आलोक मे कहा जा सकता है कि नवपाषाणिक मानव का जीवन आखेट (शिकार) एव कृषि–कार्य के द्वैध उपादानो पर निर्भर था।

कालानुक्रम :

सरयूपार परिक्षेत्र मे अवस्थित पुरास्थलो, सोहगौरा एव इमलीडीह के नवपाषाणिक स्तरों से रेडियोकार्बन तिथियो के न मिलने की दशा मे, इस परिक्षेत्र मे नवपाषाण काल के आरम्भ की तिथि निश्चित करना कठिन है। फिर भी, चूँकि यहाँ नवपाषाणिक मानव का आगमन उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र से हुआ था, अतएव विन्ध्य क्षेत्र के पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य, स्तरीकरण से सम्बन्धित साक्ष्यो, एवं उत्खनन में उपलब्ध पुरावशेषो (विशेषत. मृद्भाण्डो) और मध्यगगा घाटी मे अवस्थित सरयूपार क्षेत्र के उत्खनित नवपाषाणिक स्थलो से उपलब्ध साक्ष्यो के तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर इस क्षेत्र मे नवपाषाणकाल के आरम्भ की तिथि के सम्बन्ध मे कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

विन्ध्य क्षेत्र की भॉति इस क्षेत्र से भी हस्तनिर्मित कार्डेडवेअर, रस्टिकेटेड वेअर एव बर्निस्ड वेअर (चमकीले पात्र) उपलब्ध हुए है। लघुपाषाण उपकरण भी सरयूपार के विभिन्न स्थलों से मिले है, जिनकी समता विन्ध्य क्षेत्र के लघुपाषाणोपकरणो से की जा सकती है। ऐसी स्थिति में विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक सस्कृति के लिए उपलब्ध रेडियो कार्बन तिथि को सरयूपार परिक्षेत्र के लिए आधार स्वरूप स्वीकार किया जा सकता है। चूँकि विन्ध्य क्षेत्र मे नवपाषाणकाल के आरम्भ के लिए 7000 ई0 पू0 से 5000 ई0 पू0 की तिथि

निश्चित की गयी है, अतएव इस आधार पर सरयूपार परिक्षेत्र के लिए नवपाषाणकाल के आरम्भ के लिए छठी–पॉचवी सहस्त्राब्दी ई0 पू0 की तिथि प्रस्तावित की जा सकती है। ध्यातव्य है कि यह तिथि अनुमानित है, अतएव भावी उत्खननो एव अनुसधानो के आलोक मे इसमे सशोधन–परिवर्तन की पर्याप्त गुजाइश है।

सोहगौरा एव इमलीडीह मे नवपाषाणिक एव ताम्रपाषाणिक सस्कृतियो का कमिक जमाव हुआ है। यही स्थिति विन्ध्य क्षेत्र मे स्थित कोलडिहवा मे भी है। यहॉ का 1 90 मी0 मोटा सास्कृतिक जमाव अपने अन्तस्तल मे तीन विभिन्न सस्कृतियो से सम्बन्धित सामग्री छिपाये हुए है। प्रथम सस्कृति नूतन पाषाणकाल की है, द्वितीय ताम्रपाषाण काल एव तृतीय सस्कृति प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग से सम्बन्धित है। इस प्रकार हम देखते है कि उत्तरी विन्ध्य क्षेत्र एव मध्य गगा घाटी मे नवपाषाणकाल का अत ताम्र पाषाणकाल के ठीक पहले हुआ है। चूँकि मध्य गगा घाटी मे ताम्रपाषाणकाल की शुरूआत की तिथि 1500–1400 ई0 पू0 है, अतएव इस क्षेत्र मे नवपाषाणकाल के अत के लिए 1400–1500 ई0 पू0 की तिथि प्रस्तावित की जा सकती है। कुछ क्षेत्र ऐसे भी है जहॉ दोनो सस्कृतियॉ कुछ समय तक साथ–साथ चलती रही है। ऐसे क्षेत्रो मे सोहगौरा का उल्लेख किया जा सकता है। अतएव यहॉ नवपाषाणकाल का अत कुछ बाद मे हुआ होगा।

उल्लेखनीय है कि इस परिक्षेत्र मे नवपाषाण काल के प्रारम्भ एव अत की तिथियो के विषय मे प्रो0 एस0एन0 चतुर्वेदी की धारणा कुछ अलग है। उनकी मान्यता है कि इस क्षेत्र मे नवपाषाणिक मानव का आगमन उस समय हुआ, जब विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक सस्कृति अपने चरमोत्कर्ष पर थी। ध्यातव्य है कि उत्कर्ष की इस अवस्था को प्राप्त करने मे सहस्रो वर्ष लगे होगे। इस पृष्ठाधार मे प्रो0 चतुर्वेदी ने सरयूपार परिक्षेत्र मे नवपाषाणिक मानव के आगमन के लिए 3000 से 2500 ई0 पू0 की तिथि तथा अत के लिए 1900 ई0 पू0 की तिथि प्रस्तावित किया है।[24]

ताम्रपाषाण कालीन संस्कृति

सरयूपार परिक्षेत्र मे अवस्थित अनेक स्थलो से ताम्रपाषाणिक सस्कृति के अवशेष समय–समय पर मिलते रहे है। इन स्थलो मे सोहगौरा, नरहन, इमलीडीह, धुरियापार, गेनवरा, गुलरिहवाघाट एव लहुरादेवा विशेष उल्लेखनीय हैं। उक्त स्थलो मे से सोहगौरा, नरहन, इमलीडीह, गेनवरा एव धुरियापार, गोरखपुर जनपद मे अवस्थित है। इन सभी स्थलो से उपलब्ध ताम्राश्म पुरावशेषो से ताम्रपाषाणिक सस्कृति के विविध पक्षो पर सम्यक् प्रकाश पडता है।

गोरखपुर जनपद मे सर्वप्रथम 1961–62 में आमी और राप्ती नदियों के सगम पर स्थित सोहगौरा के उत्खनन के फलस्वरूप प्रथम काल से ताम्रपाषाणिक अवशेष मिले[25]। पुन: 1974–75 के उत्खनन में यहॉ

द्वितीय एव तृतीय काल से ताम्रपाषाणिक सस्कृति के साक्ष्य मिले[26]। इसके पश्चात् 1984 से 1988 ई0 तक बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय की ओर से प्रो0 पुरूषोत्तम सिह ने नरहन मे उत्खनन कार्य किया। फलत यहॉ के प्रथम काल से इस युग से सम्बन्धित अवशेष प्राप्त हुए। इन अवशेषो के आधार पर ताम्रपाषाणिक सस्कृति के स्वरूप का विवेचन प्रो0 सिह द्वारा लिखित रिपोर्ट 'एक्सकेवेशन ऐट नरहन' मे हुआ है।

1991 तथा 1992 मे क्रमश धुरियापार तथा इमलीडीह खुर्द का उत्खनन भी प्रो0 पुरूषोत्तम सिह के नेतृत्व मे किया गया। धुरियापार के प्रथम काल (लगभग 1300 ई0पू0 से 600 ई0पू0) से ताम्रपाषाणिक अवशेष उपलब्ध हुए। पुन इमलीडीह खुर्द के द्वितीय काल (1300 ई0पू0 से 800 ई0पू0) से भी ताम्रपाषाणिक अवशेष मिले, जिनके आधार पर इस युग का सम्बन्ध 'नरहन कल्चर' से जोडा गया।

उपर्युक्त साक्ष्यो के आलोक मे ताम्रपाषाणिक मानव के आवास–विन्यास, रहन–सहन एव अन्य कार्य–कलापो पर प्रकाश पडता है।

मृद्भाण्ड :

जनपद की ताम्रपाषाणिक सस्कृति मे मुख्यत चार प्रकार की पात्र–परम्पराए प्रचलित थी। ह्वाइट पेन्टेड ब्लैक एण्ड रेडवेअर, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर तथा प्लेन–रेड वेअर और रेड–स्लिप्ड वेअर।

सोहगौरा से जो ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर मिले है उनमे विविधता है। यहॉ से स्लिप्ड तथा अनस्लिप्ड दोनो प्रकार के ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर मिले है। स्लिप्ड–रेड वेअर को कभी–कभी रगड कर चमकाया गया है। यहॉ से ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर के कुछ ऐसे ठीकरे भी मिले है, जो रूक्ष (Coarse) गढन के है तथा उन पर तरगित रेखाओ या रस्सी की छाप के समान नक्कासी की गयी है[27]।

सोहगौरा के तीसरे काल से जो ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर मिले है, उन पर हल्के लाल–चाकलेटीरग (Reddish Chocolate) की चमकीली स्लिप है। इन पर बिन्दु एव डैस से युक्त पक्तियॉ भी मिलती है।

सोहगौरा के तीसरे काल के ऊपरी स्तर से जो ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर मिले है, उन पर सीधी रेखाओ मे चित्रकारी की गयी है। रूक्ष गढन के कुछ गोल पात्र भी मिले है, जिन्हे यदा–कदा आसञ्जन विधि (Appliqe Method) से अलकृत किया गया है। इस पात्र–परम्परा के पात्रों मे कटोरे प्रधान रूप से मिले है, लेकिन धुरियापार से साधार कटोरे, तसले और घडे मिले है[28]। इमलीडीह से जो कटोरे मिले है, वे इतने छिछले है, कि प्लेट जैसे प्रतीत होते है[29]।

इस क्षेत्र की ताम्र पाषाणिक सस्कृति की दूसरी पात्र–परम्परा, ब्लैक–स्लिप्ड वेअर है। सोहगौरा से जो ब्लैक–स्लिप्ड वेअर मिले है, उन पर चमकीला लेप लगा हुआ है, साथ ही इन पर श्वेत रग से लम्बवत् रेखाओ मे चित्रकारी की गयी है[30]। नरहन के ब्लैक–स्लिप्ड वेअर पर भी यदा–कदा श्वेत रग से चित्रकारी की गयी है[31]।

इस क्षेत्र मे ब्लैक–स्लिप्ड वेअर के पात्रो मे सामान्यतया जार, कटोरे, और थालियॉ मिली है। इमलीडीह से एक लम्बा बीकर, (गिलास) जिसके बाह्य सतह के कटि भाग पर खॉचे बने हैं, मिला है[32]। एक नया पात्र भी यहॉ से उपलब्ध हुआ है। यह लोटा है[33]। इनकी सख्या लगभग एक दर्जन है। ये गोलाकार बर्तन है, जिनकी गर्दन छोटी है और रिम (बारी) बाहर की ओर घूमी है। इन पर चमकदार काली स्लिप है। ऐसे कुछ बर्तनो पर रिम से निकलकर नीचे जाती हुयी सीधे रेखीय चित्र बने है।

जनपद की ताम्रपाषाणिक सस्कृति की तीसरी पात्र–परम्परा रेड वेअर की और चतुर्थ रेड–स्लिप्ड वेअर की है। इस पात्र परम्परा मे कुछ अलेपित (Unslipped) पात्र भी मिले है। इमलीडीह से इस पात्र–परम्परा मे छिद्रित पात्र मिले है, जिनमे चार पैर लगे हुए है[34]। छिद्रित पात्रो मे मुख्यत कटोरे है, जिनमे 9 से लेकर 12 की सख्या मे छिद्र बने हुए है। ये पात्र मोटे और मजबूत है। इनके निचले भाग मे चमकीले लाल रग की स्लिप लगी हुयी है।

रेड वेअर मे मुख्य रूप से कटोरे, घडे, थालियॉ, तसले तथा जार मिले है।

भवन निर्माण :

सोहगौरा, नरहन एव इमलीडीह से व्यापक पैमाने पर मिले भवनो के ध्वसावशेषो के आधार पर कहा जा सकता है कि ताम्रपाषाण–युग तक आते–आते यहॉ के लोगो ने भवन–निर्माण की प्रक्रिया तेज कर दिया था। इनके आवास से खम्भे गाडने के प्रमाण के रूप मे स्तम्भगर्त (Post-Holes) मिले है। सीमित उत्खनन के कारण इनके भवनो के आकार–प्रकार के विषय मे अतिम रूप से कुछ कहना सम्भव नही है। इनके मकानो की दीवाले बॉस–बल्ली के टट्टरो से निर्मित होती थी, जिन्हे मिट्टी से लीप–पोत कर अभीष्ट स्वरूप प्रदान किया जाता था। छाजन घास–फूस से बनता था।

नरहन के प्रथम निवासी पतले सरपत से बने घरो को मिट्टी से लीप–पोतकर उनमें रहते थे। इनके आवास से स्तम्भगर्त और पकी हुयी मिट्टी के ऊपर नरकट की छाप, तथा दो क्रमिक स्तरों से चूल्हो और अग्निकुण्डो के प्रमाण (अवशेष) प्राप्त हुए है[35]। सोहगौरा से भी सरकण्डे की छाप से युक्त, जली हुयी मिट्टी के टुकडे मिले है[36]। सम्भवत अग्निकाण्ड के फलस्वरूप दीवालों की मिट्टी जल गयी होगी।

फर्श को चिकना बनाने के लिए मिट्टी मे बर्तनो के ठीकरे मिलाकर कूट दिया जाता था[37]। उपर्युक्त प्रमाणो के आलोक मे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि 12वी–11वी शदी ई0 मे इस स्थल पर उक्त विधियो से आवास–निर्माण प्रारम्भ हो गया था। आज भी इन विधियो से भवन निर्मित किए जाते है।

कृषि एवं पशुपालन :

गोरखपुर जनपद के ताम्राश्म सस्कृति के लोग खेतिहर एव पशुपालक थे। इस सस्कृति से सम्बन्धित लगभग सभी स्थलो से धान के दाने एव भूसी के प्रमाण मिल चुके है। धान के इन अवशेषो से ओरिजा–सतीवा (Oryza-Stıva) किस्म की पहचान की गयी है। सम्भवत धान ताम्रपाषाणिक सस्कृति के लोगो का प्रमुख खाद्यान्न था। इसके अतिरिक्त गेहूँ की विभिन्न प्रजातियो के प्रमाण नरहन एव इमलीडीह से मिले है। जौ (Sıx row barley) की खेती भी ये करते थे, क्योकि उक्त दोनो ही स्थलों से जौ के कार्बनीकृत अवशेष मिले है। दालो मे चना, मटर, मूँग, मसूर इत्यादि के कार्बनीकृत दाने मिले है। नरहन से खेसारी के दाने भी मिले है।

तैलीय अनाजो मे अलसी (तीसी) एव सरसो की खेती की जाती थी। सरसो के दाने का प्रमाण नरहन से मिला है[38] जो भारतीय उपमहाद्वीप के ताम्रपाषाणिक युग के लिए एक नवीन खोज कही जा सकती है।

फलो मे ऑवला एव कटहल की खेती की जाती थी। नरहन से कटहल के बीज उपलब्ध हुए है[39]। ऑवले का प्रमाण इमलीडीह से मिला है[40]। सम्भवत. इस क्षेत्र के ताम्रपाषाणिक लोग ऑवले के स्वास्थ्यवर्द्धक प्रकृति से परिचित थे।

इस क्षेत्र के ताम्रपाषाणिक लोग पशुपालन के महत्त्व से परिचित थे। यहॉ से ककुदमान चौपाए (बैल), भेड, बकरी, कुत्ते, घोडे एव भैस के अस्थि–अवशेष मिले है[41]। इसके अतिरिक्त पागुर करने वाले जगली जानवर यथा, हिरण की विभिन्न प्रजातियो के अस्थि–अवशेष मिले है। इमलीडीह से सूअर (Boar) की हड्डियॉ मिली है[42]। नरहन के प्रथम काल से भैस का निचला जबडा मिला है। उपर्युक्त साक्ष्यो के आलोक मे अनुसार लगाया जा सकता है कि उक्त पशुओ मे से अधिकांश पालतू रहे होगे।

नरहन के उत्खनन मे पशुओ की अधजली हड्डियॉ मिली है। कुछ ऐसे भी अस्थि अवशेष मिले है जिन पर धारदार हथियार से काटने के निशान मिले है। इस प्रकार हम देखते है कि जनपद के ताम्रपाषाणिक लोग मास–मछली का सेवन भी करते थे, जो कि प्रोटीन का महत्त्वपूर्ण स्रोत था। नरहन से मछली फॅसाने की कटिया एव उसमे लगी डोरी की छाप से अनुमान लगाया गया है कि यहॉ के लोग मछली का शिकार भी करते रहे होगे। डोरी लगी कटिए की छाप की पहचान डॉ0 के0एस0 सारस्वत ने की है[43]।

औजार उपकरण एवं अन्य पुरानिधियाँ :

जनपद की ताम्रपाषाणिक सस्कृति मे तॉबे का प्रयोग अत्यन्त सीमित रूप से किया गया है। सोहगौरा के ताम्रपाषाणिक स्तर (तृतीय काल) से तॉबे की गोल छड और तॉबे का एक टुकडा उपलब्ध हुआ है[44]। प्रस्तर अवशेषो मे जैस्पर, अगेट (Agate), कार्नेलियन तथा स्टिटाइट के मनके मिले है[45]। मिट्टी की वस्तुओ मे पकी हुयी मिट्टी की मूर्तियॉ, बर्तन रखने का पीढा (Pot-rest) तथा मिट्टी का बना हुआ एक ऐसा टुकडा मिला है, जो सील–लोढे जैसा प्रतीत होता है[46]। इसके अतिरिक्त मिट्टी का एक चक्का (Wheal) भी यहॉ से मिला है। यही से 60×44 सेमी0 आकार की एक अण्डाकार भठ्ठी मिली है[47]। इसमे कोयला एव राख भरा हुआ है। यहॉ से प्रस्तर उपकरण एव हड्डी के बने हुए मनके भी मिले है।

नरहन के ताम्रपाषाणिक स्तर (प्रथम काल) से धातु निर्मित कोई सामग्री नहीं मिली है। धातु अवशेष के रूप मे 1985–86 के उत्खनन के दौरान यहॉ से 13 सेमी0 लम्बी छड एव लोहे का एक अन्य टुकडा मिला है[48]। इसके अतिरिक्त मिट्टी के एक ढोके (Mud clod) पर मछली फॅसाने की कॅटिए की छाप मिली है, जिसमे डोरी लगी हुयी थी। सम्भवत यह कटिया लोहे की थी। इसकी पहचान छाप पर लगे जग से की गयी है। ध्यातव्य है कि किसी भी अन्य ताम्रपाषाणिक स्तर से लौह अवशेष नही मिले है।

नरहन से एक कुल्हाडी मिली है, जो पालिश किए हुए प्रस्तर की बनी हुयी है[49]। कुछ छिट–पुट प्रस्तर के टुकडे भी यहॉ से मिले है। यहॉ से हड्डी के बाणाग्र (प्वाइन्ट्स) 21 की सख्या मे मिले[50] है। मिट्टी की बनी वस्तुओ मे 9 थपुआ (Dabbers) मिले है। इसके अतिरिक्त बर्तनो के टुकडो से बने चक्रिका (Pottery disc) बहुतायत से मिले है। इनमे से चार ऐसे है, जिनमे छेद किया गया है। सम्भवत ये खिलौना गाडी के पहिए रहे होगे। यहॉ एक दर्जन की सख्या मे सोपाडी एव घडे की आकृति के मिट्टी के बने मनके मिले है।

इनमे से कुछ पर लाइने उत्कीर्ण की गयी है। नरहन से मिले अन्य लघु अवशेषों मे बाणाग्र, छिद्र युक्त और कॉटेदार उपकरण, (Both socketed and tanged) हड्डी के बाणाग्र तथा मिट्टी के बर्तनो के टुकडो के बने चक्रिका, (Pottery disc) बहुतायत से मिले है[51]।

कालानुक्रम :

पुरातात्त्विक विमर्श एव अनुसधान के आलोक मे ऐसा प्रतीत होता है कि गोरखपुर जनपद मे ताम्रपाषाणिक सस्कृति के लोग पहली बार सोहगौरा मे आकर बसे थे। सोहगौरा के द्वितीय एवं तृतीय काल का सम्बन्ध ताम्रपाषाण युग से है। यहॉ 140 सेमी0 मोटा सांस्कृतिक जमाव अपने अन्तस्तल मे द्वितीय एवं

तृतीय काल के अवशेषो को समेटे हुए है। द्वितीय काल का जमाव 55 सेमी0 है। दोनो कालो के मिलन–स्थल से 1330±110 ई0 पू0 की C^{14} (रेडियो कार्बन) तिथि मिली है। एक दूसरी तिथि 1230±130 ई0 पू0 की है। यह तिथि तृतीय काल के प्रारम्भ की तिथि है। इन दोनो तिथियो मे लगभग 100 वर्ष का अतर है और दोनो नमूनो के बीच की दूरी 13 सेमी0 है। इस पृष्ठाधार मे दोनो युगो के सम्पूर्ण जमाव (140 सेमी0) मे 1000 से 1100 वर्ष का समय लगा होगा। इस आधार पर द्वितीय काल के जमाव के लिए 400 वर्ष का समय निर्धारित किया गया है। उपर्युक्त तथ्यो के आलोक मे यहॉ सम्पूर्ण ताम्राश्म सस्कृति का जीवनकाल 1900 ई0 पू0 से 800 ई0पू0 के बीच निर्धारित किया गया है[52]। यह गणना गो0वि0वि0 के प्रो0 एस0एन0 चतुर्वेदी की है।

ध्यातव्य है कि प्रो0 चतुर्वेदी ने ताम्राश्म युग के लिए जो तिथि प्रस्तावित की है, वह सोहगौरा से उपलब्ध प्रमाणो के विशेष पृष्ठाधार मे निर्घारित की गयी है। लेकिन जनपद के नरहन एवं अन्य समीपवर्ती स्थलो के ताम्राश्म युगीन स्तरो से जो रेडियो कार्बन तिथियॉ मिली है, उनके आधार पर ताम्राश्म युग की तिथि को कुछ और आगे बढाना पडेगा। उल्लेख्य है कि नरहन से कुल चार रेडियो कार्बन तिथियॉ मिली है, जिनमे से दो विशेष महत्त्वपूर्ण है[53] 1090±110 और 1100±110 ई0 पू0। खैराडीह (जनपद बलिया) के ताम्राश्म युग से तीन रेडियो कार्बन तिथियॉ मिली है[54] 1030±90 ई0 पू0, 940±150 ई0 पू0 और 770±90 ई0 पू0। चिरॉद से दो रेडियो कार्बन तिथियॉ मिली है[55] 1585±103 ई0 पू0 और 1540±93 ई0 पू0। सेनुवार से चार रेडियो कार्बन तिथियॉ मिली है[56] 1770±110 ई0 पू0, 1660±120 ई0 पू0, 1500±110 ई0 पू0, 1400±110 ई0 पू0। इन्ही तिथियो के समकक्ष बिहार के कुछ अन्य स्थलो, यथा चेचर–कुतुबपुर, मनेर तथा ताराडीह के ताम्राश्म–युग के स्तरो से भी रेडियो कार्बन तिथियॉ मिली है। इन समस्त साक्ष्यो के आलोक मे इस परिक्षेत्र मे ताम्राश्म युग के लिए 1500 ई0 पू0 से 800 ई0 पू0 की तिथि प्रस्तावित करना सर्वथा यथेष्ट है।

प्रारम्भिक लौह कालीन संस्कृति

आज के परिवेश मे लौह तकनीक, मानव जीवन का अभिन्न अग बन चुका है। ऐसी दशा मे यह कहना कि आज से लगभग 3 हजार वर्ष पूर्व का मानव–जीवन लौह तकनीक से अछूता था, अतिशयोक्तिपूर्ण लगता है, लेकिन यह कथन पुरातात्त्विक अनुसधानो पर आधारित है। यद्यपि भारतीय उपमहाद्वीप के विविध क्षेत्रो मे लौह तकनीक का प्रचलन एक साथ नही हो सका था, फिर भी मोटे तौर पर भारतीय पुरातात्त्विक क्षितिज पर इस तकनीक के उद्भव के निमित्त 1000 ई0पू0 की तिथि प्रस्तावित की गयी है।

प्रारम्भ मे कतिपय पुराविदो का अनुमान था कि भारत मे लोहा और एन0 बी0 पी0 मृद्भाण्डो का कई क्षेत्रो मे साथ–साथ प्रचलन हुआ था। इससे सम्बन्धित पुरातात्त्विक साक्ष्य गोरखपुर जनपद के अनेक स्थलो

से मिल चुके है। फिर भी भारतीय उपमहाद्वीप के विविध क्षेत्रो मे जो पुरातात्त्विक अन्वेषण एव उत्खनन हुए है, उनसे यह ज्ञात होता है कि चित्रित–धूसर पात्र परम्परा (पी0 जी0 डब्लू0) के साथ भी लौह धातु का उपयोग होता रहा है। उल्लेखनीय है कि लौह प्रयोक्ता मानव ने प्रारम्भ मे इस धातु का प्रयोग अस्त्र–शस्त्र के निर्माण के लिए ही किया था[57]। लोहे के उपकरणो मे भाले, तीर, कॉटे, कोटर, चूल, कुल्हाडियॉ, कुदाल (जखेडा से), दरॉतियॉ (अतरजीखेडा और जखेडा से), चाकू, फलक, सरिया, चिमटा (अतरजीखेडा से), कीले, पिन और धातुमल शामिल है। धातुमल से लोहे की ढलाई का सकेत मिलता है[58]। इस धरातल की रेडियो कार्बन तिथियॉ ईसा पूर्व 800–400 की कालावधि मे आती है, हालॉकि यह काल–विस्तार सर्वमान्य नही है[59]। इसका आरम्भ और भी पहले मानना युक्तिसगत होगा (अतरजीखेडा की तिथि ईसा पूर्व 1,025 है)[60]। जिन पुरास्थलो से चित्रित–धूसर पात्र परम्परा के साथ लौह–उपकरण मिले है, उनमे नोह, आलमगीरपुर, अल्लापुर (मेरठ), अहिच्छत्र, भरतपुरा, अतरजीखेडा एव कौशाम्बी आदि के उत्खननो का उल्लेख किया जा सकता है[61]। इस प्रकार लौहयुगीन सस्कृति का तादात्मय चित्रित–धूसर सस्कृति के साथ भी स्थापित किया जा सकता है। उपर्युक्त पुरास्थलो के अतिरिक्त सोहगौरा एव वैशाली से भी चित्रित–धूसर पात्र परम्परा के पात्र–खण्ड उपलब्ध हुए है। लौह–प्रयोक्ता सस्कृति से सम्बन्धित स्थलो मे मध्य गगा घाटी मे अवस्थित चिराद और सोनपुर का उल्लेख भी किया जा सकता है।

गोरखपुर परिक्षेत्र का प्रथम उत्खनित स्थल सोहगौरा है, जहॉ से 7वी शताब्दी ई0 पू0 के आस–पास लौहकाल के अवशेष मिलने लगते है, लेकिन गोरखपुर विश्वविद्यालय के श्री कृष्णानद त्रिपाठी, इस परिक्षेत्र मे लौहकाल के उद्भव के लिए 1000 ई0 पू0 की तिथि प्रस्तावित करते हैं[62]। सोहगौरा का उत्खनन यद्यपि दो सत्रो, 1961–62, और 1974–75 मे हो चुका है, फिर भी यहॉ से लौहयुगीन सास्कृतिक–सन्निवेश से सम्बन्धित कोई खास जानकारी नही मिली है। यहॉ चतुर्थ क़ाल से लोहे एव तॉबे का कटिया (Nobs) उपलब्ध हुआ है[63]। इस काल से पत्थर एव मिट्टी के मनके तथा लटकन (Pendants) भी उपलब्ध हुए हैं[64]। इसके अतिरिक्त मानव एव पशु मृण्मूर्तियॉ, हड्डी की बनी लेखनी (Bone Styli), तथा कुषाणों और अयोध्या के शासको सिक्के भी इस काल के सतह से मिले हैं[65]।

गोरखपुर परिक्षेत्र का दूसरा उत्खनित स्थल नरहन है, जिसकी चर्चा पिछले अध्याय (तृतीय अध्याय) मे हो चुकी है। नरहन के द्वितीय काल से लौह उपकरण मिलने लगते हैं। इस काल के लौह उपकरणो मे बाणाग्र, भाले या बरछी की नोक (Sphearheads) छेनी या रूखानी (Chisel) तथा कीलें उल्लेखनीय हैं[66]। द्वितीय काल की प्रमुख पात्र परम्परा ब्लैक–स्लिप्ड वेअर की है। हड्डी के कुछ नुकीले नमूनों पर गोलाकार चिन्ह निर्मित किया गया है। इसके अतिरिक्त यहॉ से शीशे तथा मिट्टी के मनके, मिट्टी के गेद तथा मिट्टी के घोडे का भी प्रमाण उपलब्ध हुआ है। शीशे की बनी चूडियॉ इस युग मे विशेष लोकप्रिय थीं[67]।

सांस्कृतिक परम्परा :

गोरखपुर जनपद के उत्खनित एव सर्वेक्षित स्थलो से लौहकालीन जो पुरावशेष उपलब्ध हुए है, उनके आलोक मे कहा जा सकता है कि यह एक विकसित ग्राम्य सस्कृति थी। इस सस्कृति से सम्बन्धित पुरास्थलो मे श्रावस्ती, कपिलवस्तु, रामग्राम, देवदह, पिकलीकानन, कुशीनारा (कुशीनगर) एव पावा का उल्लेख किया जा सकता है[68]। इन पुरास्थलो की पहचान तृतीय अध्याय मे हो चुकी है। इनके अतिरिक्त वर्तमान गोरखपुर जनपद मे सोहगौरा, नरहन, इमलीडीह एव धुरियापार का उत्खनन हो चुका है, जिनके लौहकालीन स्तरो से विविध पुरावशेष उपलब्ध हुए है। उपर्युक्त उत्खनित एव सर्वेक्षित पुरास्थलो से उपलब्ध पुरावशेष लौहयुगीन मानव के सास्कृतिक जीवन के विभिन्न पक्षो पर प्रकाश डालते है।

लौह उपकरण :

इस परिक्षेत्र मे लौह–उपकरण, सोहगौरा, नरहन, पावानगर (फाजिलनगर), कुशीनगर तथा धुरियापार से मिल चुके है। लौह उपकरणो मे बाणाग्र, भाले या बरछी का अग्रभाग, (Spearheads) छेनी या रूखानी (Chisels) और कीले विशेष उल्लेखनीय है[69]। ये सभी लौह उपकरण नरहन उत्खनन मे उपलब्ध हुए हैं। इस काल मे भारतीय उपमहाद्वीप के अन्य क्षेत्रो से कुल्हाडियॉ, बाण–फलक, सॅडसी, चिमटे, सुइयॉ और कीले आदि भी उपलब्ध हुयी है[70]। नरहन से धातु गलाने के पात्र भी उपलब्ध हुए है। हस्तिनापुर, अतरजीखेडा आदि पुरास्थलो पर लौह धातुमल भी मिले है। ऐसा प्रतीत होता है कि सरयूपार परिक्षेत्र मे लोगो को इस युग में धातु–शोधन (Metallurgy) के क्षेत्र मे भी जानकारी थी[71]।

इस परिक्षेत्र मे घने जगलो को साफ कर उन्हे कृषि योग्य बनाने मे लौह उपकरणों के अद्वितीय योगदान को नजरअदाज नही किया जा सकता। इन्ही लौह उपकरणो के प्रचलन के फलस्वरूप इस क्षेत्र मे कृषि–कार्य एव उद्योग–धन्धो मे तेजी आयी और धीरे–धीरे अनेक बौद्ध कालीन नगरो का आविर्भाव हुआ, जो छठी शताब्दी ई0 पू0 तक बुद्ध के कारण काफी ख्याति प्राप्त कर चुके थे। कुछ विद्वानो ने छठी शताब्दी ई0 पूर्व मे, गगा–घाटी मे घटित, 'द्वितीय नगरीय' क्रान्ति के लिए लौह तकनीक के प्रसार को उत्तरदायी ठहराया है[72]। ये सभी नगर आपस मे आर्थिक एव सास्कृतिक कारणो से जुडे हुए थे। गौतम बुद्ध जिस रथ से यात्रा करते थे, उसमे लोहे का प्रयोग अवश्य किया गया होगा। इस प्रकार हम देखते है कि लौह तकनीक के विकास से मानव जीवन का हर पहलू प्रभावित हुआ। भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं बल्कि समूचे विश्व मे लोहा जब से अस्तित्व मे आया, उसका महत्त्व उत्तरोत्तर बढता जा रहा है।

कृषि एवं पशुपालन :

लोहे के ज्ञान के पश्चात् इस तकनीक से सबसे अधिक प्रभावित होने वाला क्षेत्र, कृषि का था। इस सस्कृति के विभिन्न पुरास्थलो से अनाज के कार्बनीकृत दाने उपलब्ध हुए हैं। गोरखपुर जनपद के उत्खनित

पुरास्थल, नरहन के द्वितीय काल से चावल, जौ, मटर एव मूँग के कार्बनीकृत दाने मिले है[73]। यहाँ से कुसुम के बीज (Safflower seed) के साक्ष्य भी मिले है। इस तरह का साक्ष्य महाराष्ट्र से भी मिला है, जिसकी तिथि 1000 ई0 पू0 निर्धारित की गयी है[74]। यह साक्ष्य विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उत्तरी भारत के आद्यऐतिहासिक काल के लिए यह एक नयी खोज है। धान के अधजले दाने हस्तिनापुर के उत्खनन से भी उपलब्ध हुए है। राजस्थान के भरतपुर जिले मे स्थित नोह नामक पुरास्थल के उत्खनन से जौ की खेती के साक्ष्य उपलब्ध हुए है[75]। लेकिन इस सस्कृति से सम्बन्धित किसी पुरास्थल से गेहूँ के साक्ष्य उपलब्ध नही हुए है। प्रारम्भिक लौह सस्कृति से सम्बन्धित विभिन्न पुरास्थलो से उपलब्ध अनाज के दानो मे धान एव जौ की प्रमुखता को देखते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि ये अनाज तद्युगीन लोगो के प्रमुख खाद्यान्न के रूप मे प्रयोग मे आते रहे। इसके अतिरिक्त दलहन के रूप मे मटर एव चने का उपयोग भी बहुतायत से होता रहा होगा।

यद्यपि उपलब्ध अन्न के दानो से विदित होता है कि कृषि, लौहयुगीन मानव के जीवन का मुख्य अग रहा होगा तथापि इस सस्कृति से जुडे किसी भी पुरास्थल से हल के फाल का नमूना उपलब्ध नही हुआ है[76]। इसके अतिरिक्त इनके खेती करने के ढग के विषय मे भी साक्ष्यो की अनुपलब्धता विद्यमान है।

लौह सस्कृति से जुडे हुए विभिन्न पुरास्थलो से गाय, बैल या सॉड एवं घोडे की मृण्मूर्तियॉ मिली है। इससे प्रतीत होता है कि इन पशुओ को अवश्य ही इस सस्कृति के लोगो का सान्निध्य प्राप्त हुआ था। गोरखपुर परिक्षेत्र मे स्थित नरहन के द्वितीय काल (लौहकाल) से बैल (सॉड) और नीलगाय की हड्डियो के साक्ष्य मिले है[77]। हस्तिनापुर के उत्खनन से भी घोडे की अस्थियॉ उपलब्ध हुयी हैं। घोडा अतिद्रुतगामी वाहन के रूप मे बहुत प्राचीन काल से ही मानव के सान्निध्य मे रहा है। आज के इस वैज्ञानिक युग मे भी घोडे के महत्त्व को नजरअदाज नही किया जा सकता है। गाय का महत्त्व भी कम नही था, क्योकि इससे दूध और मॉस दोनो की पूर्ति होती थी। इसके वछडे बडे होकर कृषि–कार्य के लिए विशेष उपयोगी रहे होगे। इस प्रकार इन पशुओ का लौहयुगीन मानव–जीवन के लिए बहुआयामी महत्त्व था।

खाद्य सामग्री :

इस सस्कृति के लोगो का प्रमुख खाद्यान्न चावल एव जौ था। सभवत. गेहूँ भी इनके खाद्यान्न मे शामिल था लेकिन इसकी खेती के सम्बन्ध मे कोई निश्चित साक्ष्य नही मिला है। नरहन के तृतीय काल से गेहूँ के दानो के साक्ष्य मिले है[78], जिसके आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि इस काल मे गेहूँ का उपयोग खाद्यान्न के रूप मे होता रहा होगा। लेकिन यह मत सम्भावनाओ (सीमित साक्ष्यों) पर आधारित है, इसलिए भावी अनुसधानो एव उत्खननो के आलोक मे ही इसे निश्चित रूप से स्वीकार या इकार किया जा सकता है।

मास भी इनके भोजन का एक अग रहा होगा। यद्यपि इस परिक्षेत्र मे लौहयुगीन स्थलो पर इससे सम्बन्धित निश्चित साक्ष्यो का अभाव है, लेकिन भारतीय उपमहाद्वीप के लौहयुगीन अन्य पुरास्थलो से (विशेषत हस्तिनापुर से) गाय, सूकर एव हिरण की हड्डियॉ मिली है[79]। इन हड्डियो को चीरकर मज्जा निकाल कर खाया गया है। नरहन के प्रथम काल से भी इन पशुओ की कटी हुयी हड्डियॉ मिली है[80]। इन साक्ष्यो के आलोक मे कहा जा सकता है कि गोरखपुर परिक्षेत्र मे भी पशुओ का मास, खाद्य–सामग्री के रूप मे प्रयोग किया जा रहा था। चूल्हे के साक्ष्य यद्यपि इस परिक्षेत्र मे लौहयुगीन स्तरो से नही मिले है, लेकिन नरहन के प्रथम काल से जो कि ताम्राश्मयुगीन है, चूल्हे बहुतायत से मिले है। ऐसी दशा मे हम कह सकते है कि भोजन पकाने के निमित्त चूल्हो की परम्परा लौहयुग मे भी प्रवाहमान रही होगी, क्योकि परम्पराऍ तो दीर्घकालिक होती है, जिनका अस्तित्व थोडे बहुत परिवर्तनो के साथ प्राय हर युग मे विद्यमान रहता है। इसके अतिरिक्त अतरजीखेडा के लौहयुगीन स्तर से सामुदायिक चूल्हो के साक्ष्य भी मिले है। ऐसी दशा मे ये साक्ष्य, गोरखपुर परिक्षेत्र के लौहयुगीन मानव को भोजन बनाने के निमित्त चूल्हो से निश्चित रूप से जोडते है। अतरजीखेडा से रसोईघर मे प्रयुक्त होने वाली चिमटी एवं सॅडसी के नमूने भी मिले है[81]। इस सस्कृति के लोग बर्तनो मे थाली एव कटोरो का उपयोग करते थे, जिसके साक्ष्य बहुतायत से मिले है।

वस्त्र एवं आभूषण :

लौहयुगीन लोग नि सदेह सूती वस्त्रो का उपयोग करते रहे होंगे, क्योंकि अतरजीखेडा के उत्खनन मे मिट्टी के बर्तनो पर सूती कपडो की छाप मिली है[82]। नरहन के प्रथमकाल से भी मृण्पात्रो पर सूती धागो की छाप दिखायी पडी है[83]। इन साक्ष्यो से विदित होता है कि प्रारम्भिक लौहकाल के लोग सूती वस्त्रो के प्रति आकर्षित थे।

इस सस्कृति के लोग आभूषण प्रेमी भी थे। क्योकि इस काल के स्तरो से विविध प्रकार के आभूषण मिले है। इनमे कुछ ऐसे आभूषण है जो प्राय लौहयुगीन सभी स्थलो एव स्तरो से मिले है। इनमें मनकों का उल्लेख किया जा सकता है। ये मनके मिट्टी, शीशे एव पत्थर के है। महिलाये हाथो मे चूडियॉ पहनती रही होगी। नरहन के द्वितीय काल (लौहकाल) से शीशे की बनी चूडियॉ मिली है[84]। यहॉ से अनेक लडियो वाला लटकन भी मिला है। सम्भवत· यह आभूषण कानो की शोभा बढाने के निमित्त पहना जाता था। सोहगौरा से भी लटकन एव मनके मिले है। ऐसा प्रतीत होता है कि कानो का यह आभूषण अधिक लोकप्रिय था। सम्भवत स्त्री और पुरुष समान रूप से इस आभूषण को पहनते थे। उपर्युक्त आभूषण इस परिक्षेत्र के मानव–समुदाय की सौदर्यप्रियता एव ललित कला के प्रति रूझान की कहानी कहते है।

भवन निर्माण :

लौहयुग से जुडे हुए पुरास्थलो से भवन–निर्माण की किसी निश्चित योजना के साक्ष्य नही मिले है। पकी हुयी ईंटो के साक्ष्य भी इस काल के पुरास्थलो से नही मिले है। अपवाद के रूप मे हरियाणा के भगवानपुरा से पकी हुई ईंट का साक्ष्य मिला है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के लोग मिट्टी के बने कच्चे भवनो मे रहते थे। कुछ पुरास्थलो से स्तम्भगर्त के साक्ष्य मिले है। सम्भवत भवनो में बॉस–बल्ली का प्रयोग भी होता था। बॉस–बल्ली से बने भवनो की दीवालो को बाहर तथा भीतर, दोनों तरफ से मिट्टी से छाप–लीप कर सुन्दर एव आरामदेह बनाया जाता रहा होगा, क्योकि उत्खनन मे छपाई–लिपाई मे प्रयुक्त मिटटी के टुकडो पर सरकण्डो की छाप (Read Mark) दिखलायी पडती है। घरो के छाजन सम्भवत घास–फूस के होते थे। नरहन के प्रथम काल से इस तरह के भवनो के साक्ष्य मिले है। यही परम्परा गोरखपुर परिक्षेत्र के प्रारम्भिक लौहयुगीन स्थलो पर भी रही होगी।

व्यापार-वाणिज्य :

लौह सस्कृति के लोगो का आर्थिक जीवन सम्भवत. वस्तु–विनिमय या अदला–बदली (Barter-System) पर आधारित था, क्योकि इस सस्कृति के किसी भी पुरास्थल से सिक्को के प्रचलन का प्रमाण नही मिला है। हस्तिनापुर के उत्खनन मे लौहयुगीन स्तर से पत्थर के कुछ गोल टुकडो को उत्खाता ने बाट बतलाया है[85]। इन बाटो का प्रयोग सम्भवत. अनाज या अन्य वस्तुओं को तौलने के लिए किया जाता रहा होगा। गोरखपुर परिक्षेत्र से भी ऐसा कोई प्रमाण नही मिला है जिसके आधार पर इनके आर्थिक जीवन की कोई स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की जा सके। अतएव अनुमान लगाया जा सकता है कि गोरखपुर परिक्षेत्र के बाहर लौहयुगीन स्थलो पर प्रचलित आर्थिक परम्परा का अनुसरण यहॉ भी किया गया होगा। इस परिक्षेत्र के लोग आपस मे सास्कृतिक सम्पर्क बनाए हुए थे, क्योकि एक ही प्रकार के मनके यहॉ के विभिन्न पुरास्थलो से मिले है। मनको की समानता के आधार पर इनके परस्पर व्यापारिक सम्पर्क को स्वीकार करना पडेगा।

धार्मिक दशा :

मानव एक बौद्धिक प्राणी है। उसकी यही बौद्धिकता उसे एक आध्यात्मिक सत्ता के प्रति आस्था एवं विश्वास के लिए प्रेरित करती रही है। दूसरे शब्दो मे मानव सभ्यता ने जब से होश सँभाला है, उसका विश्वास एक अदृश्य शक्ति के प्रति रहा है। सभ्यता के विकास के साथ ही इस आध्यात्मिक सत्ता के स्वरूप मे थोडा बहुत परिवर्तन होता रहा है और इसे विभिन्न अभिधानो से अभिहित किया जाता रहा है। फिर भी मूलतत्त्व आज भी वही है, जो सभ्यता के जन्म के समय था। मनुष्य इस मूलतत्व के प्रति अपनी आस्था की अभिव्यक्ति विविध कर्मकाण्डो के माध्यम से करता रहा है। समय के साथ इन कर्मकाण्डों मे विविधता और

जटिलता आती गयी, लेकिन मृत्योपरान्त आत्मा की अमरता मे जो विश्वास मानव–मस्तिष्क मे उसके प्रारम्भिक दिनो मे जागृत हुआ था, वह आज के इस वैज्ञानिक युग मे भी कम नही हुआ है। आज भी हम मृत्यु को प्राप्त अपने पूर्वजो की सुख–सुविधा का ध्यान रखते हुए पिण्डदान की परम्परा का निर्वाह करते है। इसी तरह मृत्यु के उपरान्त अन्तिम सस्कार भी अनेक रूपो मे किया जाता रहा है।

प्रारम्भिक लौह युग के लोग अपने मृतको का अतिम संस्कार किस प्रकार करते थे, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण गोरखपुर परिक्षेत्र से नही मिला है। अपवाद स्वरूप, हरियाणा के भगवानपुरा से शव–विसर्जन के लिए दफनाने की प्रथा का प्रमाण मिला है[86]। इस काल के स्तरो से विभिन्न चौपायों, गाय, बैल, घोडे आदि की मृण्मूर्तियॉ मिली है, लेकिन इनके धार्मिक प्रयोजन के विषय मे हम कोई निष्कर्ष निकालने की स्थिति मे नही है। इस सॅस्कृति से सम्बन्धित स्थलो, खलौआ एव अतरजीखेडा से मिट्टी की हस्तनिर्मित मानव–मूर्तियॉ मिली है। सरयूपार परिक्षेत्र मे अवस्थित सोहगौरा से भी मानव मृण्मूर्तियॉ मिली है, लेकिन इन मृण्मूर्तियो का क्या प्रयोजन था? कहना कठिन है।

गोरखपुर परिक्षेत्र मे अवस्थित नरहन के उत्खनन मे यहॉ के द्वितीय काल से मातृदेवी की दो मृण्मूर्तियॉ मिली है[87]। उल्लेख्य है कि मातृदेवी की पूजा सैन्धव सभ्यता मे की जाती थी। सम्भव है कि यही परम्परा लौह युग मे भी अनुसरण की जाती रही हो। साक्ष्यो के अभाव मे इनके धार्मिक कर्मकाण्डो के विषय मे भी कुछ कहना कठिन है। प्राय सभी सभ्यताओ मे आराध्य की आराधना के लिए कुछ विशेष पद्धतियो को अपनाया जाता रहा है। किन्तु इस परिक्षेत्र मे लौहयुगीन स्तरो से ऐसा कोई प्रमाण नही मिला है। इस सस्कृति से सम्बन्धित अन्य स्थलो से भी कोई निर्णायक साक्ष्य नहीं मिला है। अतएव प्रारम्भिक लौहयुगीन मानव के धार्मिक परम्पराओ के विषय मे अतिम रूप से कुछ भी कहना सम्भव नहीं है। अभी इस क्षेत्र मे अनुसधान एव उत्खनन की आवश्यकता है। तभी इनके धार्मिक रीति–रिवाजो के विषय में कोई निष्कर्ष निकाला जा सकता है।

मृद्भाण्ड परम्परा :

गोरखपुर परिक्षेत्र मे अवस्थित सोहगौरा, नरहन, इमलीडीह, धुरियापार का सीमित पैमाने पर उत्खनन हो चुका है। इन स्थलो मे धुरियापार को छोडकर प्राय. सभी जगह के लौह युगीन स्तरों से रेड वेअर की प्रधानता मिली है। धुरियापार का टीला कृषि–कार्यो के कारण क्षत–विक्षत हो चुका है। अतएव यहॉ बहुत सीमित पुरावशेष उपलब्ध हुए है। व्यापक पैमाने पर उत्खनन–कार्य होने की दशा मे सम्भवतः यहॉ से भी रेड वेअर के अवशेष मिले होते। यहॉ के प्रथम काल से, जिसका समय लगभग 1300 ई0 पू0 से 600 ई0 पू0 के बीच रहा है, रेड वेअर के ठीकरे उपलब्ध हुए है[88]। धुरियापार के द्वितीयकाल (लौह युगीन स्तरो से, 600 ई0पू0 से 200 ई0पू0) से एन0 बी0 पी0 वेअर बहुतायत से मिले है[89]। यह पात्र परम्परा धुरियापार के अतिरिक्त

सोहगौरा और इमलीडीह के लौह युगीन स्तरो से भी सीमित मात्रा मे मिली है। इमलीडीह मे एन0 बी0 पी0 का मात्र एक ठीकरा मिला है[90]।

नरहन एव इमलीडीह मे लौहयुगीन स्तरो पर ब्लैक–एण्ड–रेड वेअर पूरी तरह से गायब है। नरहन मे इस स्तर पर ब्लैक–स्लिप्ड वेअर की सख्या पूर्व काल की अपेक्षा अधिक है[91]। रेड–स्लिप्ड वेअर यहाँ अत्यन्त सीमित मात्रा मे मिले है। प्लेन–रेड वेअर यहाँ की प्रमुख मात्र परम्परा है[92]। नरहन मे ब्लैक–स्लिप्ड वेअर के पात्रो मे मुख्यत कटोरे और थालियाँ है[93]। यहाँ रेड वेअर के मुख्य पात्रो मे, थालियाँ, कटोरे, बेसिन्स (तसले) एव कलश का उल्लेख किया जा सकता है[94]। इमलीडीह मे ब्लैक–स्लिप्ड वेअर की सख्या द्वितीय काल की अपेक्षा अधिक है[95]। ग्रे वेअर के कुछ ठीकरे भी यहाँ से उपलब्ध हुए है। यहाँ का तृतीय काल (800 ई0पू0 से 400 ई0पू0) नरहन के द्वितीय काल का समकालीन है।

यहाँ प्रारम्भिक लौहयुगीन स्तरो से जो लघु पुरावशेष मिले है, उनमे मिट्टी की चक्रिका, (Terracotta disc) मृद्भाण्डो से बनी चक्रिका (Pottery disc), बाणाग्र और हड्डी की प्वाइन्ट्स बहुतायत से मिले है। ध्यातव्य है कि नरहन के उत्खनन मे बाणाग्र एव हड्डी की प्वाइन्ट्स की सख्या 255 है। जबकि केवल द्वितीय काल मे इनकी सख्या 194 है[96]। यहाँ से मनके भी मिले है, जो मिट्टी, कॉच एव सुलेमानी पत्थर के बने है[97]। यहाँ से मिट्टी के थपुआ एवं गेद भी मिले है[98]। गेद का सम्बन्ध नि:सदेह इनके खेल–जगत से था, लेकिन इनके खेल का स्वरूप क्या था, कहना मुश्किल है। फिर भी इतना तो कहा ही जा सकता है कि यह खेल इनके मनोरजन का साधन रहा होगा। इसके अतिरिक्त इस परिक्षेत्र मे पासे का खेल भी प्रचलित था जिसका सम्बन्ध नि सदेह इनके मनोरजन से था। नरहन के द्वितीय काल से उपलब्ध हड्डी एव मिट्टी के बने हुए ये पुरावशेष विशेष महत्त्व के है।

प्रारम्भिक ऐतिहासिक कालीन संस्कृति (600 ई0पू0 से 200 ई0 तक)

विभिन्न साहित्यिक स्रोतो से यह स्पष्ट हो चुका है कि छठी शताब्दी ई0पू0 में कोसल राज्य की स्थापना के साथ ही इस क्षेत्र का राजनीतिक इतिहास प्रारम्भ हुआ। रामायण मे उल्लिखित है कि 'कोशल राज्य के पश्चिम मे गोमती, दक्षिण मे सर्पिका या स्यदिका (सई नदी), पूर्व मे सदानीरा तथा उत्तर मे नेपाल की पहाडियॉ थी[99]। बौद्ध साहित्य से भी इसकी पुष्टि होती है[100]। इन साक्ष्यो से स्पष्ट है कि कोशल राज्य मे सरयू के उत्तर और पूर्व का भाग सम्मिलित था। इस प्रकार आधुनिक बहराइच, गोडा, बस्ती, महराजगज, सिद्धार्थनगर, गोरखपुर और देवरिया जनपद पर कोशल का आधिपत्य था। छठीं शदी ई0 पू0 का एक सुप्रसिद्ध राजनीतिक तथ्य, काशी एव कोशल के बीच परस्पर शत्रुता है। महावग्ग जातक मे काशीराज द्वारा कोशल पर आक्रमण का उल्लेख मिलता है। महात्मा बुद्ध के समय कोशल में प्रसेनजित शासन कर रहा था।

कालातर मे विभिन्न राजनीतिक एव भौगोलिक परिस्थितियो ने मगध के नेतृत्व मे साम्राज्य स्थापना मे योग दिया। तत्पश्चात् मौर्य शासको ने अपने कुशल नेतृत्व मे भारतीय उपमहाद्वीप के विशाल भू–भाग पर साम्राज्यवाद को यथेष्ट अर्थ प्रदान किया। पुन शुगो एवं कुषाणो ने भारतीय इतिहास मे अपनी अहम् भूमिका निभायी। इस प्रकार भारतीय इतिहास, विभिन्न उतार–चढावो के दौर से गुजरता हुआ, गुप्त नरेशो के काल मे जाकर कुछ समय के लिए स्थिर हो सका था।

प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग के अन्तर्गत छठी शताब्दी ई0 पू0 से लेकर 200 ई0 तक की सास्कृतिक गतिविधियो का विवेचन अभीष्ट है। इस युग के प्रारम्भ मे भारतीय उपमहाद्वीप मे एक नवीन पात्र–परम्परा अस्तित्व मे आयी, जो लगभग द्वितीय–प्रथम शताब्दी ई0 पू0 तक प्रचलन मे रही। इस पात्र–परम्परा को उत्तरी काली चमकीली (एन0 बी0 पी0) पात्र परम्परा के नाम से अभिहित किया गया। अतएव यहॉ एन0 बी0 पी0 युग एव बाद की कुछ शताब्दियो (लगभग 200 ई0 तक) की सांस्कृतिक गतिविधियो की चर्चा की जा रही है। एन0बी0पी0 युग के पश्चात् शुग एव कुषाण काल की सास्कृतिक गतिविधियो का विवेचन किया जा रहा है।

भारतीय इतिहास के सदर्भ मे छठी शताब्दी ई0 पू0 का महत्त्व बहुआयामी है। यही वह सीमा रेखा है, जहॉ से एक ओर लौह तकनीक का व्यापक पैमाने पर प्रचलन प्रारम्भ हुआ, वहीं दूसरी ओर उत्तरी काली चमकीली मृद्भाण्ड परम्परा अस्तित्व मे आयी। उत्तर भारत के पुरातत्त्व में यह पात्र–परम्परा, अपनी पूर्ववर्ती एव परवर्ती पुरातात्त्विक सस्कृतियो के तिथिक्रम के लिए एक निश्चित आधार प्रस्तुत करती है। भारत के पुरास्थलो पर यह पात्र–परम्परा उसी प्रकार विशिष्ट है, जिस प्रकार यूरोप महाद्वीप के भूमध्य सागर के तटवर्ती क्षेत्रो मे 'टेरा सिगलाटा' नाम की पात्र परम्परा है[101]। इसके अतिरिक्त धार्मिक एव आर्थिक इतिहास के परिप्रेक्ष्य मे भी छठी शदी ई0 पू0 का महत्त्व उल्लेखनीय है। धार्मिक क्षेत्र में जैन एवं बौद्ध धर्मों के उदय से एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का अन्त हुआ, जो शताब्दियो से रूढिगत मान्यताओ मे जकडी हुयी थी। आर्थिक क्षेत्र मे लौह तकनीक के प्रचलन ने गगा घाटी मे द्वितीय नगरीय क्राति के लिए पृष्ठभूमि तैयार की। राजनीतिक इतिहास के लिए भी यह तिथि एक निश्चित आधार प्रस्तुत करती है, क्योकि यही से भारतीय इतिहास के लिखित साक्ष्य प्राप्त होने लगते है।

1934 ई0 मे सर्वप्रथम एन0 बी0 पी0 पात्र परम्परा के साक्ष्य प्रकाश मे आये[102]। तक्षशिला (पाकिस्तान के रावलपिण्डी जिले मे स्थित है।) मे इस पात्र परम्परा से सम्बन्धित तीन टीले है, जिन्हें क्रमश· भीरटीला, सिरकप तथा सिरसुख कहा जाता है। मार्शल ने इसे 'काली काचित पात्र परम्परा' के नाम से अभिहित किया था। मार्शल समझते थे कि यूनानी पात्र परम्परा से मिलती–जुलती यह पात्र परम्परा उसी की अनुकृति है।

इस पात्र परम्परा का प्रचलन मुख्य रूप से उत्तरी भारत, विशेषत. मध्य गगा घाटी (पूर्वी उत्तर प्रदेश एव बिहार) मे ही दृष्टिगोचर होता है। इस भौगोलिक सीमा मे इस तरह के जितने भी पात्र–खण्ड मिले, सभी काले रग के थे। प्रारम्भ मे विद्वानो ने इस पात्र–परम्परा की चमक को पालिश समझ लिया था। उपर्युक्त तथ्यो के पृष्ठाधार मे इस पात्र–परम्परा का नामकरण, उत्तरी काली चमकीली मृद्‌भाण्ड–परम्परा (ओपदार पात्र परम्परा) किया गया। यद्यपि बाद मे इस पात्र–परम्परा के दोनो विशेषणो, उत्तरी एव काले रग, पर आपत्तियॉ उठायी गयी, लेकिन तब तक हम इसे उत्तरी काली चमकीली पात्र–परम्परा के नाम से पुकारने के अभ्यस्त हो चुके थे। अतएव इन विशेषणो के यथेष्ट न होने की दशा मे भी यह नामकरण रूढ हो चुका है। फलत इसे आज भी इसी नाम से पुकारा जाता है। इस पात्र–परम्परा के ठीकरे न केवल उत्तरी भारत, अपितु पूर्वी, दक्षिणी एव पश्चिमी भारत से भी मिलते है। इसके अतिरिक्त प्रारम्भ मे विद्वान् जिसे पालिश समझ बैठे थे, वह पालिश न होकर प्रलेप है।

एन0 बी0 पी0 पात्र परम्परा के अवशेष सरयूपार, विशेषत गोरखपुर परिक्षेत्र के विभिन्न उत्खनित एव सर्वेक्षित स्थलो से मिल चुके है। इन स्थलो मे सोहगौरा, नरहन, इमलीडीह, धुरियापार, तुलसीडीह, ब्रह्मपुर (आजमगढ) एव लालमनपुर (आजमगढ) इत्यादि उल्लेखनीय है। इस पात्र–परम्परा का निर्माण, अच्छी तरह से गूँथी एव मर्दित मिट्‌टी से किया जाता था। चाक पर निर्मित यह पात्र–परम्परा अत्यन्त पतले एवं हल्के रूप मे मिलती है। बर्तन को अत्यन्त ऊँचे तापक्रम पर पकाया गया है। इस मृद्‌भाण्ड–परम्परा के पात्र–प्रकारो मे सीधे किनारे वाली थालियॉ, सीधे एव उन्नतोदर कटोरे, ढक्कन, कोखदार, हॉडियॉ, तथा कलश का उल्लेख किया जा सकता है। बर्तनो की औसत मोटाई के आधार पर इसे तीन श्रेणियो, मोटे, मध्यम एव पतले मे विभाजित किया जा सकता है। इरारो राग्वद्ध पात्र–परम्पराओ मे लाल रग के पात्र, मोटे धूसर पात्र, कृष्ण लेपित मृद्‌भाण्ड उल्लेखनीय है। नरहन मे तृतीय काल से इन पात्रो के साथ ही रज्जु–छाप पात्र का एक ठीकरा भी मिला है[103]। लेकिन यह विन्ध्यक्षेत्र एव मध्य गगा घाटी के नवपाषाणिक स्तरो से मिले कार्डेड वेअर से कुछ भिन्न प्रकार का है[104]। इमलीडीह के तीसरे काल से एन0 बी0 पी0 का एक ठीकरा प्राप्त हुआ है[105]। यद्यपि धुरियापार के द्वितीय काल की प्रतिनिधि पात्र परम्परा एन0 बी0 पी0 है, तथापि इससे सम्बद्ध अन्य पात्र परम्पराओ के ठीकरे भी उपलब्ध हुए है[106]।

लौह उपकरण :

यद्यपि उत्तर भारत मे लोहे का प्रचलन 1000 ई0 पू0 मे प्रारम्भ हो चुका था, तथापि इसका व्यापक रूप से प्रचलन एन0 बी0 पी0 काल मे हुआ। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र लौह तकनीक से प्रभावित था। इस तकनीक के व्यापक प्रचलन का प्रभाव कृषि–कार्य के साथ ही घरेलू उद्योगों एव वास्तुकला पर भी पडा। इन तथ्यो के आलोक मे कहा जा सकता है कि इस युग के लोग लौह अयस्क को पिघलाने एव प्राप्त लोहे को

पीटकर उपकरण बनाने की तकनीक मे प्रगति कर चुके थे। लौह उपकरणों के व्यापक प्रचलन का प्रभाव आर्थिक क्षेत्र मे भी पडा। लौह उपकरणो मे बाण फलक, भाले के शीर्ष, वर्छी, कीले, खुरपी, बसुला, छेनी तथा कडाही, विभिन्न क्षेत्रो से उपलब्ध हुए है। नरहन के उत्खनन से भी तॉबे एव लोहे की बनी वस्तुएँ मिली है[107]। लोहे की लोकप्रियता के कारण तॉबे का प्रयोग अपेक्षाकृत सीमित हो गया। तॉबे का प्रयोग अब सिक्को के निर्माण, अजनशलाकाओ, खिलौनो, मुद्रिकाओ एव मनको आदि के बनाने मे किया जाने लगा[108]।

कृषि एवं पशुपालन :

कृषि इस युग के लोगो की जीविका का प्रमुख साधन था। क्योकि इस युग तक आते–आते शिकार मे प्रयुक्त होने वाले उपकरणो यथा– हड्डी के प्वाइन्ट्स (Bone Points) एव बाण फलको (Arrowheads) की सख्या अत्यन्त सीमित हो गयी थी[109]। इन साक्ष्यो के आलोक मे ऐसा प्रतीत होता है कि इनका जीवन कृषि पर पूरी तरह निर्भर हो चुका था। इस युग के लोग चावल, (Oryza Sativa) गेहूँ, मूँग, कोदो, मटर, खेसारी और तिल की खेती करते रहे होगे। नरहन से इनके दाने उपलब्ध हुए है[110]। फलों मे बेर के बीज (Fruit-ston of Jujube) और ऑवला के टुकडे (Endocrap Pieces of Anwala) भी नरहन से मिले है[111]।

पशुपालन इनके आर्थिक जीवन का दूसरा प्रमुख आधार था। इस युग से सम्बन्धित विभिन्न पुरास्थलो के उत्खनन से गाय, बैल, भैस, भेड, बकरी, घोडे एव सुअर आदि की हड्डियॉ मिली है। नरहन से प्राप्त कुछ सिक्को पर हाथी का अकन हुआ है। सम्भवत ये सभी पशु इनके पालतू रहे होंगे। यद्यपि नरहन के उत्खनन मे इस युग के स्तरो से इन पशुओ की हड्डियॉ नही मिली है, लेकिन यहॉ इसके पूर्व के स्तरो से इन पशुओ की हड्डियॉ मिल चुकी है। मास भी इनके भोजन का एक अग था। इसके प्रमाण स्वरूप पशुओ की कुछ ऐसी हड्डियॉ मिली है जिन पर धारदार हथियार से हलाल करने के निशान मिले है। कृषि–कार्य में भी पशुओं का, विशेषत बैलो का सहयोग लिया जाता रहा होगा। लोहे के बने फालो से द्योतित होता है कि इन हलो को बैल खीचते रहे होगे। भारवहन मे भी बैलो एवं घोडो को प्रयुक्त किया जाता रहा होगा। इसके अतिरिक्त दूध, दही एव घी के लिए भी इनकी उपयोगिता रही होगी। इस प्रकार हम देखते है कि मानव ने कृषि एव पशुपालन की जो परम्परा नवपाषाण काल मे शुरू की थी वह उत्तरोत्तर परिष्कृत होते हुए वर्तमान समय मे भी चल रही है।

अभिलेख एवं मुद्राएँ :

भारतीय इतिहास के पुनर्निर्माण एव उसके स्वरूप को समझने में अभिलेखो की भूमिका विशेष महत्त्वपूर्ण है। भारत में ऐतिहासिक महत्त्व के अभिलेखो की सख्या सर्वाधिक है। इतना ही नही, विश्व मे ऐसा

कोई भी देश नही है, जिसके प्राचीन इतिहास का पुनर्निमाण अभिलेखों पर इतना अधिक निर्भर हो। अभिलेखो के अभाव मे अशोक महान, शक्तिशाली गुप्त नरेश, एक पहेली ही रह जाते। इसके अतिरिक्त हर्ष एव उत्तर भारत पर शासन करने वाले अन्य अनेक राजवशो के इतिहास की जानकारी से हम वचित रह जाते। इस प्रकार इतिहास, विशेषत भारतीय इतिहास के सदर्भ मे, अभिलेखो को प्राथमिक महत्त्व के साधन के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है।

गोरखपुर जनपद से उपलब्ध समस्त अभिलेख दानपरक हैं। इस जनपद से आठ अभिलेख प्राप्त हुए है। इनमे सोहगौरा से प्राप्त ताम्रपत्र विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योकि यह भारत के प्राचीनतम तीन अभिलेखो, पिपरहवा, भट्टप्रोलु मे से एक है। ये सभी अभिलेख कास्य–ताम्र पर उत्कीर्ण है। इनका सम्बन्ध मौर्य, कलचुरि और गाहडवाल युग से है। सोहगौरा से उपलब्ध कास्यपत्राभिलेख मौर्य काल का है। जनपद से एक अभिलेख कलचुरि शासक सोढदेव का भी मिला है। शेष छ. अभिलेखो का सम्बन्ध गाहडवाल राजवश से है। उल्लेखनीय है कि गोरखपुर जनपद से अब तक कोई प्रस्तर अभिलेख उपलब्ध नही हुआ है। यद्यपि सरयूपार के अन्य क्षेत्रो से कुछेक प्रस्तर अभिलेख मिले है, लेकिन इनकी सख्या अत्यन्त सीमित है। अशोक के बाद गुप्तकाल तक की अवधि का एक भी प्रस्तर अभिलेख इस क्षेत्र में नही मिलता, जिसका प्रधान कारण प्रस्तर की अनुपलब्धता है। द्वितीय शताब्दी ई0 पू0 से गुप्तो के उदय के पूर्व की अवधि मे उत्तर–भारत के विभिन्न भागो से प्राप्त होने वाले सभी अभिलेख प्राय. धार्मिक प्रसग से जुडे हुए है। चीनी यात्री ह्वेनसाग ने कुशीनगर मे अशोक द्वारा स्थापित दो स्तम्भ देखे थे। बौद्ध केन्द्रो पर अशोक ने स्तम्भो की स्थापना की थी।

गोरखपुर जनपद मे सोहगौरा से उपलब्ध कास्य पत्राभिलेख सर्वाधिक प्राचीन अभिलेख है। जनपद से कलचुरि एव गाहडवाल वशो के जो अभिलेख मिले है, उनकी व्याख्या यहॉ करना यथेष्ट नही है, क्योकि प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग के लिए निर्धारित समय सीमा के अन्तर्गत वे नही आते है। इसके अतिरिक्त गोरखपुर के सीमावर्ती जनपदो से भी कुछ अभिलेख मिले है। इनकी भी व्याख्या यहॉ सम्भव नही है, क्योकि ये भी निर्धारित समय सीमा एव भौगोलिक सीमा के बाहर है। सोहगौरा कास्य पत्राभिलेख यहॉ व्याख्या की दृष्टि से उपयुक्त है। अतएव निम्नलिखित पक्तियो में इसकी विशेषताओ की चर्चा की जा रही है–

सोहगौरा कांस्य पत्राभिलेख :

यह अभिलेख गोरखपुर जिले के बॉसगॉव तहसील के सोहगौरा ग्राम से मिला था। यह स्थल गोरखपुर वाराणसी राजमार्ग पर स्थित कौडीराम से लगभग 3 किमी0 पूरब, राप्ती एव आमी नदियो के सगम पर स्थित है। यह अभिलेख स्थानीय जमीदार पडित सर्वजीत राम त्रिपाठी को मिला था, लेकिन इसे प्रकाश मे लाने का श्रेय डॉ0 हुई (गोरखपुर के जिलाधिकारी) को दिया गया। डॉ0 टी0 पी0 वर्मा[112] के अनुसार यह अभिलेख बॉसगॉव से प्राप्त हुआ था लेकिन किसी कारण यह सोहगौरा पहुॅच गया। फलतः इसका परिचय

सोहगौरा के साथ जुड गया। सर्वेक्षण के दौरान ज्ञात हुआ कि टीले के दक्षिणी भाग मे भवन–निर्माण के लिए नीव खोदने के दौरान यह अभिलेख प्रकाश मे आया।

अभिलेख कलकत्ता की एशियाटिक सोसायटी के पास सुरक्षित था, लेकिन वर्तमान समय में यह वहॉ से गायब हो चुका है। इसकी भाषा प्राकृत तथा लिपि तीसरी शताब्दी ई0 पू0 की ब्राह्मी है। डॉ0 राजबलि पाण्डेय जैसे कुछ विद्वान् इसे प्राग्–मौर्य युग का मानते है। परन्तु डॉ0 डी0सी0 सरकार का विचार है कि इसके व' (पंक्ति 2), 'ड' (पंक्ति 2) ह्रस्व 'इ' की मात्रा (यथा पक्ति 1 के 'ति' तथा चौथी पक्ति के 'यि' अक्षरो मे), निश्चय ही अशोक के बाद की तिथि की द्योतक है। लेख मे कोई तिथि नही दी गयी है। अभिलेख के ऊपर तीन मजिले मकानो के चित्र, प्राकार मे वृक्ष, कमल की कली तथा मेरू पर चन्द्र चिन्ह का अकन हुआ है। प्रारम्भ मे इसे ताम्र–पत्र स्वीकार किया गया था, किन्तु कालान्तर मे डॉ0 डी0 सी0 सरकार ने अपने निरीक्षण के दौरान इसे कास्य धातु का बताया[113]। इस अभिलेख की ऊँचाई 2 ½ इच, चौडाई 1 7/8 इच एव मोटाई 1 इच है। इसका भार 5 1/5 तोला है। डॉ0 स्मिथ ने इसे ढालकर निर्मित किया गया बताया है। डॉ0 हार्नले ने पट्ट के धरातल के खुरदरे पन को देखकर सम्भावना व्यक्त किया था कि इसका सॉचा बालुकामय मिट्टी से निर्मित किया गया होगा। डॉ0 फलीट का अनुमान है कि इसे (कास्यपत्र को) कडे सॉचे मे ढालकर बनाया गया होगा[114]। कास्यपत्र के चारो कोनो पर चार छिद्र बने हुए हैं, जिनका उपयोग इसे (कास्य पत्र को) टॉगने के लिए किया जाता होगा।

इस अभिलेख का प्रयोजन श्रावस्ती के महामात्यो के शासनादेश पर दो कोष्ठागारों के निर्माण एव उनसे केवल आपात्काल मे (दुर्भिक्ष के समय) अन्न का वितरण है। मौर्यकाल मे 12 वर्षो के दुर्भिक्ष (अकाल) की चर्चा, जैन ग्रन्थ परिशिष्टपर्वन मे भी मिलती है। वस्तुत. इस क्षेत्र मे आज भी प्रतिवर्ष बाढ आती रहती है, जिसकी त्रासदी यहॉ के लोगो को भुगतनी पडती है। सम्भवत बाढ की यह आपदा उस समय भी आती रही होगी, जिसकी चर्चा उक्त अभिलेख मे हुयी है।

यह अभिलेख निम्न तथ्यो को उद्घाटित करता है–

1 प्राचीन भारत मे अकाल की त्रासदी से निपटने के लिए कोष्ठागार निर्माण तथा उसमे संग्रहीत अन्न के वितरण की जानकारी मिलती है। यह अन्न वितरण के लिए प्रथम आभिलेखिक प्रमाण है।

2 अभिलेख के ऊपर वास्तु सरचना का प्रथम बार अकन हुआ है।

3 लेख के ऊपर कोष्ठागारो, कमल की कली, वेदिका से परिवेष्टित वृक्ष (Tree in railing) तथा पर्वत पर चन्द्र के चिन्हो का अकन हुआ है। ये सभी दृश्य मौर्य युगीन आहत मुद्राओ (Punch marked coins) पर दृष्टिगोचर होते है।

4 गोरखपुर जनपद से प्राप्त प्रथम राजकीय अभिलेख।

5 मौर्य काल मे अभिलेख लेखन हेतु धातु का प्रयोग।

6 प्रशासनिक दृष्टि से तृतीय शताब्दी ई0 पू0 मे गोरखपुर परिक्षेत्र श्रावस्ती के महामात्यो के अन्तर्गत आता था।

सिक्के :

सिक्को से जहॉ एक ओर सास्कृतिक, राजनीतिक तथा सामाजिक इतिहास के निर्माण मे सहायता मिलती है, वही दूसरी ओर इसके आगमन से मानव की आर्थिक प्रगति की सूचना भी मिलती है। प्रारम्भिक ऐतिहासिक सस्कृति की एक प्रमुख विशेषता, सिक्को के सर्वप्रथम प्रचलन को माना जा सकता है। आर्थिक जीवन मे जटिलता आ जाने के कारण वस्तु–विनिमय मे परेशानी होने लगी। फलत ताम्र एव रजत के आहत सिक्को का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। ये सिक्के भारत के प्राचीनतम सिक्के है। इन्ही धातुओ से निर्मित लेख रहित ढली हुयी मुद्राओ की गणना, आहत मुद्राओ की समकालिक मुद्रा के रूप मे की जा सकती है। सिक्को के प्रचलन से एन0 बी0 पी0 पात्र परम्परा के काल मे व्यापार–वाणिज्य के क्षेत्र मे विशेष प्रगति हुयी।

गोरखपुर जनपद के विभिन्न क्षेत्रो से प्राचीन मुद्राऍ मिली है, जो रजत, ताम्र एव स्वर्ण धातु की है। इसके अतिरिक्त सीमावर्ती अन्य जनपदो से भी प्राचीन मुद्राऍ उपलब्ध हुयी है, जिनका यहॉ प्रसगत मात्र उल्लेख किया जा रहा है, व्याख्या नही। क्योकि ये जनपद, विषय की भौगोलिक सीमाओ का अतिक्रमण करते है। जनपद के जिन स्थलो से ये मुद्राऍ मिली है वे इस प्रकार है– फरेन्दा तहसील मे बनरसिहा एव परसादयाराम, गोरखपुर सदर तहसील मे गुलरिहा बाजार, कुसमौल या कुसमौली, कटौरा, सहजनवॉ तथा राहुल साकृत्यायन सस्थान अलीनगर, गोरखपुर और बॉसगॉव तहसील मे सोहगौरा, नरहन, दुघरा, मकन्दपुर, गुरसानी, कोटवा, गोपालपुर। इस प्रकार जनपद मे कुल 14 स्थलो से प्राचीन मुद्राऍ मिली है। इनके अतिरिक्त जनपद से कुछ ऐसी भी मुद्राऍ मिली है, जिनके प्राप्ति स्थल अज्ञात हैं। राहुत सास्कृत्यायन सस्थान गोरखपुर, बनरसिहा, सोहगौरा, नरहन, मकन्दवार तथा सहजनवा से प्राप्त मुद्राओं के अतिरिक्त सभी सिक्के निधियो से प्राप्त है। धातुओ मे सर्वाधिक रजत–मुद्राऍ है। सख्या की दृष्टि से रजत के बाद क्रमशः स्वर्ण एव ताम्र मुदाऍ है।

उपर्युक्त स्थलो के अतिरिक्त सीमावर्ती अन्य जनपदो में भी इन मुद्राओ का प्रसार हुआ था। इनमें खारपुर या खानपुर (महराजगज), पिपरहवा–गेनवरिया–कपिलवस्तु (बस्ती) श्रावस्ती (गोण्डा) तथा कुशीनगर से भी प्राचीन मुद्राऍ मिली है।

इस प्रकार सरयूपार क्षेत्र से प्राचीन मुद्राएँ बहुतायत से मिली है। इनमे आहत, कास्ट (Cast), कुषाण, पाचाल, अयोध्या एव गुप्त शासको की मुद्राएँ मिली है। गोरखपुर जनपद से प्राप्त सिक्के मुख्यत आहत, कास्ट (ढली हुयी) अयोध्या, पाचाल, कुषाण, इण्डो ससैनियन, गुप्त एव पूर्व मध्यकालीन है। इनमे कुछ मुद्राएँ उत्खनन एव कुछ धरातल से मिली है। जनपद से उपलब्ध अधिसख्य मुद्राओ का पूर्ण विवरण उपलब्ध न होने के कारण यहाँ उनका सम्यक विवेचन सम्भव नही है।

गोरखपुर जनपद से प्राप्त सिक्को मे आहत मुद्राओ की सख्या सर्वाधिक है। आहत मुद्राएँ रजत, स्वर्ण एव ताम्र, तीनो धातुओ से बनी है। इनमे 309 रजत, 2 स्वर्ण तथा 27 ताम्र की है। नरहन के तीसरे काल से ताँबे का एक कास्ट सिक्का मिला है। इसी काल से एक निधि मिली है, जिसमे 48 आहत सिक्के एव तीन धातु के टुकडे मिले है[115]। रजत आहत मुद्राएँ गुलरिहा बाजार, परसादयाराम तथा नरहन से मिली है। स्वर्ण आहत मुद्राएँ, डोमिनगढ से तथा ताम्र सिक्के बनरसिहा एव सोहगौरा से मिले है।

जनपद से प्राप्त आहत सिक्के लेख रहित है। इन सिक्को के अध्ययन का आधार उन पर अकित चिन्ह है, जिनकी सहायता से इन्हे विभिन्न वर्गों मे वर्गीकृत करने का प्रयास विद्वानो द्वारा किया गया है[116]।

जनपद से उपलब्ध आहत सिक्को की धातुओ के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि तत्कालीन आर्थिक स्थिति सुदृढ थी। ढली हुयी मुद्राएँ सोहगौरा[117] और नरहन[118] से प्राप्त है। कास्ट सिक्के अधिकतर रजत आहत मुद्राओ के साथ मिलते है, तथा इन पर भी आहत मुद्राओ की भाँति पाँच चिन्ह पाये जाते है। अतएव इन्हे मौर्य–युग से सम्बद्ध किया जाता है। गोरखपुर से जो आहत रजत मुद्राएँ मिली है, वे सम्भवत अशोक के काल की रही होगी। अशोक के समय मे मौर्य साम्राज्य काफी समृद्ध था।

गोरखपुर जनपद से अयोध्या एव पाचाल जनपदो की मुद्राएँ प्राप्त हुयी है। एक सिक्का अग्निमित्र का उपलबध हुआ है। ये सभी सिक्के सोहगौरा उत्खनन से प्राप्त हुए है। अयोध्या के सिक्को का इस क्षेत्र से प्राप्त होना स्वाभाविक है, लेकिन सुदूर पाचाल सिक्को का यहाँ मिलना एक अनोखी बात है। इस बात का कोई प्रमाण नही है कि पाचाल नरेश का शासन यहाँ कभी था। ऐसी स्थिति में यही निष्कर्ष निकलता है कि ये सिक्के यात्रा के सिलसिले मे यहाँ आ गये हो।

कुषाण मुद्राओ एव मृण्मूर्तियो की, इस क्षेत्र मे बहुलता के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पूर्वी उत्तर प्रदेश पर कुषाणो का शासन रहा होगा। गोरखपुर के पार्श्ववर्ती जनपदो में सम्भूरिया (देवरिया) तथा पिपरहवा (बस्ती) से भी प्रभूत मात्रा मे कुषाण मुद्राएँ मिली है[119]। जनपद के सोहगौरा, दुघरा, मकन्दवार एव सहजनवॉ से कुषाण मुद्राएँ मिली है। दुघरा और मकन्दवार से प्राप्त सिक्को की धातु एव सख्या अज्ञात है, किन्तु सहजनवॉ एव सोहगौरा से प्राप्त सिक्के ताम्र के है। उपर्युक्त साक्ष्यो के आधार पर यह बात पूरी तरह से स्पष्ट है कि गोरखपुर क्षेत्र कुषाण शासन के अन्तर्गत था। सीमावर्ती बस्ती जनपद के

पिपरहवा नामक स्थल से एक मुद्रा छाप प्राप्त हुआ है, जिस पर *'देवपुत्र बिहारे कपिलवत्थु भिक्खु सघस'* लेख अकित है। उल्लेख्य है कि 'देवपुत्र' शब्द का प्रयोग कुषाण राजाओ के लिए किया जाता था। अतएव इन साक्ष्यो से इस क्षेत्र पर कुषाणो की सत्ता की पुष्टि होती है।

गोरखपुर जनपद के कुसमौली या कुसमौल (सदर तहसील) नामक स्थल से इण्डो–ससैनियन शासको की 8 (आठ) रजत मुद्राएँ प्राप्त हुयी है। ये सिक्के रा0 स0 ल0 से जमाकर्ता व्यक्ति को लौटा दिया गया[120]।

कलावशेष :

(1) वास्तुकला – इस काल मे भवन–निर्माण के क्षेत्र मे मिट्टी, घास, फ़ूस एव बॉस बल्ली से निर्मित भवनो की परम्परा के साथ ही, भट्ठे मे पकी हुयी ईंटो से मकान बनाने की एक नयी परम्परा की शुरूआत हुयी। इसके प्रमाण भारतीय उपमहाद्वीप के विभिन्न क्षेत्रो से मिल चुके है। गोरखपुर जनपद मे प्राचीन सरचनाओ के अवशेष अथवा ईंटो के ढेर सोहगौरा, नरहन, उपधौलिया (निकट चिलुआताल), देवकली (निकट गगहा), ददेवकली (निकट कौडीराम), देईपार (निकट सहजनवॉ), डोमिनगढ (निकट गोरखपुर शहर) तथा पीपीगज के निकट भीटी से उपलब्ध हुए है।

नरहन के तृतीय काल से कच्ची ईंटो से निर्मित भवन के साथ ही मिट्टी एवं लकडी की सरचनाएँ भी मिली है[121]। नरहन के चतुर्थ काल (200 ई0पू0 से 300 ई0पू0) से पकी हुयी ईंटो से निर्मित भवनो के साक्ष्य मिले है। इनमे प्रयुक्त ईंटो का आकार 44 × 23 × 6 सेमी0 है[122]। यहॉ से रिंग–वेल (वलय–कूपो) के प्रमाण भी मिले है। इन कूपो का व्यास 0 70 सेमी0 है। सम्भवत इनका निर्माण स्वच्छता एव सफायी की दृष्टि से किया जाता था। इस युग मे सफायी की दृष्टि से सछिद्र घडों को जोडकर सोख्ता गड्ढों (Sokag-Pits) का निर्माण भी किया जाता था।

सोहगौरा मे एन0 बी0 पी0 के सर्वोच्च स्तर का निर्माण आवास के गिरे हुए मलवे से हुआ है। इन साक्ष्यो (मलवे से उपलब्ध) से ई0 पू0 द्वितीय–तृतीय सदी मे आवास निर्माण की विधि पर प्रकाश पडता है। इनमे प्रयुक्त ईंटो का आकार 45 × 28 × 10 तथा 32 × 24 × 6 सेमी0 है। छत का निर्माण, मिट्टी मे भूसा मिलाकर इसे धरन तथा करी के ऊपर परत के रूप मे जमा दिया जाता था। उत्खनन मे, मिट्टी की छत के खण्ड, पके हुए मिले है। इन पर धरन तथा करी के निशान है[123]।

देवकली मे ईंटो के ढेर मिले है, जिनमे कुछ ही सुरक्षित है। इनका आकार 30 × 19 × 6 सेमी0 है। इन ईंटो से मिलते–जुलते आकार की ईंटे गेनवरिया (सिद्धार्थनगर) के उत्खनन से प्राप्त हुयी है, जिनका

काल प्रथम शताब्दी ई0 से तृतीय शताब्दी ई0 है। अतएव देवकली के ईंटो के लिए भी यही तिथि प्रस्तावित की जा सकती है।

कौडीराम के निकट के देवकली से भी प्राचीन भवन सरचनाओ के साक्ष्य मिले है। यहॉ ईंटो का आकार 20 × 16 × 5 सेमी0 है। इन ईंटो से मिलते–जुलते आकार की ईंटे, श्रावस्ती के तीसरे काल के उपकाल 2 से प्राप्त है[124] जिनका समय प्रथम शदी ई0 से प्रारम्भ होता है।

सहजनवा के निकट स्थित देईपार के टीले से 35 × 25 × 5 सेमी0 आकार की ईंटे मिली है। इन ईंटो से मिलते जुलते आकार की ईंटे (35 × 22 से 21 × 8 × 7) सेमी0 गेनवरिया के द्वितीय काल के द्वितीय चरण (Phase) से मिली है[125]। गेनवरिया के द्वितीय काल के लिए छठी सदी ई0 पू0 से द्वितीय सदी ई0 पू0 के बीच का समय प्रस्तावित है। अतएव देईपार से मिले ईंटो के लिए यह तिथि उपयुक्त होगी।

डोमिनगढ से 44 × 24 × 4 सेमी0 आकार की ईंटे, टीले के दीवार से मिली है। श्रावस्ती के द्वितीय काल के तृतीय चरण से 46 से 42 × 22 5 × 7 सेमी0 आकार की ईंटे मिली है,[126] जो डोमिनगढ की ईंटो से मिलती–जुलती है। श्रावस्ती के दूसरे काल के तीसरे चरण के लिए 125 ई0 पू0 से 50 ई0 पू0 के बीच की तिथि निर्धारित की गयी है। अतएव यही तिथि डोमिनगढ से उपलब्ध ईंटो के लिए भी प्रस्तावित की जा सकती है।

मूर्तिकला (मृण्मूर्ति) :

भारत मे मृण्मूर्तियो का इतिहास बहुत पुराना है। यद्यपि इसकी प्राचीनता ताम्राश्म–युग तक जाती है तथापि एन0 बी0 पी0 काल मे यह उद्योग काफी प्रगति कर चुका था। हडप्पा, मोहनजोदडों, सिन्ध और बलुचिस्तान जैसे ताम्राश्म युगीन स्थलो से प्रचुर मात्रा मे मृण्मूर्तियॉ मिली है। उत्तरी भारत के ऐतिहासिक स्थलो, तक्षशिला, श्रावस्ती, पिपरहवा, अहिच्छत्रा, पाटलिपुत्र, बसाढ, राजघाट, मथुरा, कोसम, बेसनगर सकिसा आदि पुरास्थलो से प्रचुर मात्रा मे मृण्मूर्तियॉ प्रकाश मे आयी है[127]।

मृण्मूर्तियो से जन साधारण की धार्मिक आस्था एव सामाजिक जीवन का द्योतन होता है। वस्तुत. मृण्मूर्ति कला से भारतीय सास्कृतिक चेतना का परिचय मिलता है। मृण्मूर्तियॉ प्राय. धार्मिक एव मनोरजन दोनो ही दृष्टियो से बनायी जाती थी, जिनसे लोक–हृदय प्रतिबिम्बित होता है। इस युग मे हाथी, घोडे, वृषभ, कुत्ते, भेडा (Ram) तथा हिरण आदि पशुओ और कच्छप तथा सर्प आदि सरीसृपों एव चिडियों की हस्त–निर्मित मूर्तियॉ मिलती है। ऑखो को एक गोले (वृत्त) के अन्दर छेद करके बनाया गया है। पशुओ की मृण्मूर्तियो को छोटे–छोटे गोलो (Circlets) के ठप्पे लगाकर (Punch) गहरे रेखाकन तथा किसी चीज से दबाकर बनायी

गयी पत्तियो (Impressed Leaf Desings) के द्वारा सजाया–सँवारा गया है। अधिकॉश मृण्मूर्तियॉ लाल रग की है, जिनके ऊपर गेरू के गहरे घोल का प्रलेप (Red Slip) चढाया गया है।

पशुओ की मृण्मूर्तियो के अलावा मानव मृण्मूर्तियो को सॉचे मे (Mould) ढालकर बनाये गये कतिपय नमूने भी मिलते है। ऑखो को एक छोटे से वृत्त या केवल रेखाकन के द्वारा, और बालो को प्रदर्शित करने के लिए, सिर पर गहरी रेखाएँ खीच दी गयी है, तथा नाक बनाने के लिए मिट्टी को चुटकी से दबा दिया गया है। कालातर मे बडे–बडे कर्णपटल (Ear Obes) और उनमे चक्राकार कर्णफूल (Rosettes), गले मे भारी कामदार हारावली आदि का निर्माण आसञ्जन विधि (Applique Technique) से किया गया है। स्त्री मृण्मूर्तियो को भव्य शिरोवेशभूषा, (Eloborate head dresses) कर्णाभरण एव हारावली से अलकृत किया गया है। स्त्री मृण्मूर्तियो के वस्त्रालकरण पर्याप्त एव लहराते हुए (Flowing) बनाये गए है। हस्तिनापुर से प्राप्त पशु मानवीय–मृण्मूर्ति (Therianthropic Figure) मे मुखाकृति मानव और शरीर पशु का है।

मूर्तिकला के क्षेत्र मे गोरखपुर परिक्षेत्र मे उल्लेखनीय प्रगति हुयी थी। सरयूपार परिक्षेत्र मे उत्खनित महत्त्वपूर्ण स्थलो मे श्रावस्ती, पिपरहवा, सोहगौरा, नरहन, कुशीनगर, फाजिलनगर–सठियॉव आदि का उल्लेख किया जा सकता है, जहॉ से बहुतायत से मृण्मूर्तियॉ मिली है। ये मृण्मूर्तियॉ मौर्य, शुग, कुषाण एव गुप्त युगो से सम्बन्धित है। यहॉ जिन मृण्मूर्तियो की चर्चा की जा रही है, वे उत्खनन एव सर्वेक्षण मे उपलब्ध हुयी है। ध्यातव्य है कि ये सभी मृण्मूर्तियॉ गोरखपुर महानगर के सग्रहालयो मे सुरक्षित है। पूर्वायतन संग्रहालय मे सुरक्षित मृण्मूर्तियॉ सोहगौरा उत्खनन एव सर्वेक्षण से प्राप्त है, जबकि बौद्ध सग्रहालय मे सुरक्षित मूर्तियॉ सर्वेक्षण मे उपलब्ध हुयी है। इन सग्रहालयो मे सग्रहीत मूर्तियॉ सोहगौरा, नरहन, डोमिनगढ, रामूडीह, भौवापार, जगतबेला तथा बनरसिहा जैसे पुरास्थलो से मिली है। बौद्ध सग्रहालय की कुछ मूर्तियों का प्राप्ति–स्थल अज्ञात है[128]। जनपद से मुख्यत, पशु एव मानव (स्त्री एव पुरुष) मूर्तियॉ उपलब्ध हुयी है। इनके अतिरिक्त दो गोल ठप्पे डोमिनगढ से प्राप्त है। एक मूर्ति नागफण की भी है। अध्ययन की सुविधा के लिए इन्हे निम्न प्रकार वर्गीकृत किया गया है[129]।

1 मौर्यकाल

2 शुगकाल

3 कुषाणकाल

4 गुप्तकाल

मौर्यकाल :

पशु मूर्तियॉ · गोरखपुर परिक्षेत्र से उपलब्ध मौर्य–युगीन मृण्मूर्तियो मे पशु मृण्मूर्तियॉ सर्वाधिक हैं, जिनमे वृषभ, अश्व एव भेडा उल्लेखनीय है। जनपद से 11 × 6 सेमी0 आकार की एक अश्व की मूर्ति उपलब्ध हुयी है, जो बौ0 स0 मे सुरक्षित है। अश्व की पीठ पर अस्पष्ट ठप्पे दृष्टिगोचर होते है। जनपद से 10 × 5 सेमी0 आकार की वृषभ–मूर्ति भी मिली है, जिसके मुख व पैर खण्डित है। मूर्ति के ऊपर चक्राकार ठप्पे दर्शनीय है। मूर्ति पर लाल रग का लेप किया गया है।

जनपद के सोहगौरा से भेडे की तीन मूर्तियॉ मिली है। इनमे से एक मूर्ति खण्डित है। खण्डित मूर्ति का आकार 6 × 9 सेमी0 है। भेडे के मस्तक का अर्द्धांश भाग शेष है। जिससे इसकी पहचान हो सकी है। वर्तमान समय मे यह मूर्ति पू0 स0 गो0 वि0 मे सुरक्षित है। दूसरी मूर्ति का आकार 10 × 8 सेमी0 है। मूर्ति पर लाल रग की पालिश यत्र–तत्र दृष्टिगोचर होती है। भेडे की तीसरी मूर्ति भी 10 × 8 सेमी0 आकार की है, जिस पर लाल पालिश लगी हुयी है। मुख्य भाग खण्डित है। यह भी सम्भव है कि यह पशु–आकृति भैसे की हो। यह मूर्ति भी पू0 स0, गो0 वि0 मे सुरक्षित है।

सोहगौरा से ही 4 × 2 सेमी0 आकार की एक लघु पशु–मूर्ति मिली है, जिसका मुख अस्पष्ट है। अतएव मूर्ति किस पशु की है, यह निश्चित करना अत्यन्त कठिन है। मूर्ति मे चार पैर है। यह मूर्ति भी पू0 स0 गो0 वि0 मे सुरक्षित है।

नारी मूर्तियाँ

जनपद से तीन नारी मूर्तियॉ मिली है, जिनमें से दो मातृदेवी की प्रतीत होती हैं तथा तीसरी मूर्ति सामान्य नारी की है। प्रथम दो मूर्तियॉ (मातृदेवी की) कहॉ से उपलब्ध हुयी है? यह ज्ञात नही हो सका है। मूर्तियो का आकार क्रमश 7 5×5 सेमी0, 8.5×6 सेमी0 तथा 6 5×4 5 सेमी0 है। तीनों मूर्तियॉ बौ0 स0 मे सुरक्षित है। प्रथम मूर्ति को सग्रहालय मे कुषाण युग के अन्तर्गत रखा गया है, लेकिन सूक्ष्म विश्लेषण करने पर ऐसा प्रतीत होता है कि यह मूर्ति कुषाण–युगीन न होकर मौर्य–युग की है। तीसरी मूर्ति खण्डित है, जिसका उर्ध्व भाग शेष है। यह पशुमुखी मूर्ति है। इसके उरोज अत्यन्त उभरे हुए है। बायॉ स्तन खण्डित है।

शुगकाल :

नारी मृण्मूर्ति : जनपद के विभिन्न स्थलो से शुगयुगीन मात्र नारी मृण्मूर्तियॉ ही उपलब्ध हुयी हैं, जिन्हे महानगर मे अवस्थित सग्रहालयो,– बौ0 स0 एव पू0 सं0 गो0 वि0 में सुरक्षित रखा गया है। इन मूर्तियो का विवरण निम्न पक्तियो मे दिया जा रहा है।

(i) 12 × 5 सेमी0 आकार की यह देवी प्रतिमा जनपद के किस स्थल से मिली है, यह ज्ञात नही हो सका है। प्रतिमा स्थानक है, जिसके केश दो शैलियो मे सुसज्जित हैं। इसके सिर के ऊपर का जूडा गोलाकार मे है, जो कि शुगयुगीन एक महत्त्वपूर्ण विधा है। इसके दाहिने हाथ मे पुष्प है, जिसका डठल या नलिका हाथ के नीचे तक प्रदर्शित की गयी है। पुष्प को कमल स्वीकार करने की दशा मे यह मूर्ति लक्ष्मी की हो सकती है। प्रतिमा का वाम–हस्त कमर पर अवलम्बित है। प्रतिमा बौ0 स0 मे सुरक्षित है।

(ii) 11 × 6 सेमी0 आकार की सिरविहीन शुकसारिका की यह प्रतिमा भी गोरखपुर जनपद से मिली है, लेकिन प्राप्ति स्थल अज्ञात है। इस स्थानक प्रतिमा का दाहिना हाथ कटि पर है, तथा वाम हस्त से शुक को पकडे हुए है। कमर मे मेखला तथा अधोवस्त्र धारण कराया गया है। यह मूर्ति भी बौ0 सं0 मे सुरक्षित है।

(iii) 11 × 6 सेमी0 आकार की शुक सारिका की स्थानक प्रतिमा जनपद से प्राप्त हुयी है, जिसका प्राप्ति–स्थल अज्ञात है। प्रतिमा के सिर पर केशो के स्थान पर अलकृत पगडी दर्शायी गयी है। कर्ण, कुण्डल युक्त है, तथा गले मे एकावली है, जिसका पेण्डुलम स्तनो से होता हुआ नाभि तक लटका हुआ है। इस प्रतिमा मे अलकृत पगडी, मथुरा से प्राप्त शुगकालीन प्रतिमाओ के समान है। यह मूर्ति भी बौ0 स0 मे सुरक्षित है।

(iv) 6 5 × 5 सेमी0 आकार की नारी प्रतिमा भी जनपद से प्राप्त हुयी है, तथा वर्तमान समय मे बौ0 स0 मे सुरक्षित है। प्रतिमा का केश राशि खण्डित है। गले मे अलकृत एकावली तथा उरोज अत्यधिक उभरे हुए है। दाहिना हाथ पूरी तरह खण्डित हो चुका है, तथा वाम–हस्त का लगभग अर्द्धांश सुरक्षित है। मुखमण्डल पर मुस्कराहट के भाव से ऐसा प्रतीत होता है कि प्रतिमा किसी रमणी की रही होगी।

(v) 15 × 12 सेमी0 आकार की खण्डित मातृदेवी की प्रतिमा जनपद के सोहगौरा नामक स्थल से प्राप्त हुयी है, जो पू0 स0 गो0 वि0 मे रखी गयी है। इस प्रतिमा का मध्य भाग सुरक्षित है। दाहिना हाथ भी खण्डित हो चुका है। लेकिन वाम–हस्त का कुछ अश शेष है। इसके उरोज अलग से चिपकाए गए प्रतीत होते है, जिनके अग्र भाग पर छिद्र बने हुए है।

(vi) खण्डित मातृदेवी की यह प्रतिमा सोहगौरा से मिली है, जिसका आकार 17 × 16 सेमी0 है। मोढे पर बैठी हुयी मूर्ति का दाहिना पैर मिट्टी की पट्टिका पर अवलम्बित है। सिर एव वाम–पाद खण्डित है। गले मे हार का अलकरण है जो वक्षस्थल को स्पर्श कर रहा है। नाभि का प्रदर्शन एक बिन्दु के माध्यम से किया गया है। यह प्रतिमा भी पू0 स0 गो0 वि0 मे सुरक्षित है।

(vii) 6 5 × 5 5 सेमी0 आकार की मातृदेवी की प्रतिमा सोहगौरा से मिली है, जो पू0 सं0 गो0 वि0 मे सुरक्षित है। उक्त सग्रहालय के अध्यक्ष श्री कृष्णानद त्रिपाठी इस प्रतिमा को लक्ष्मी मानते है। प्रतिमा के

दोनो हाथो मे सनाल कमल है। इसके केश सुसज्जित तथा वक्षस्थल से कटि प्रदेश के उर्ध्व भाग तक माला लटक रही है। इसके उरोज अत्यन्त उभरे हुए है।

कुषाण काल :

जनपद से कुषाण–युगीन जो मृण्मूर्तियाँ मिली है, उनमे मानव मूर्तियो की सख्या सर्वाधिक है। इनमे नारी मृण्मूर्तियो की सख्या पुरुष मूर्तियो से अधिक है।

नारी :

जनपद से उपलब्ध अधिकॉश नारी मृण्मूर्तियाँ खण्डित है। इन मृण्मूर्तियो को पू0 स0 गो0 वि0 मे सुरक्षित रखा गया है। नारी मूर्तियो की कुल सख्या लगभग 21 है। इनमे से आठ मूर्तियाँ जनपद के सोहगौरा नामक पुरास्थल से उपलब्ध हुयी है। इसके अतिरिक्त डोमिनगढ से छ. मूर्तियाँ मिली है। नरहन, बनरसिहा, भौवापार एव जगतबेला से भी एक–एक मूर्तियाँ मिली है। शेष तीन मूर्तियो का प्राप्ति–स्थल अज्ञात है।

पुरुष :

जनपद से जो पुरुष मूर्तियाँ मिली है, उनकी सख्या लगभग 11 है। पुरुष मूर्तियाँ भी प्राय खडित ही मिली है। इनमे से अधिकॉश मृण्मूर्तियो का प्राप्ति–स्थल अज्ञात है, जिनकी सख्या लगभग पॉच है। डोमिनगढ से तीन पुरुष मूर्तियाँ मिली है। इसके अतिरिक्त सोहगौरा एव रामूडीह से एक–एक मूर्तियाँ मिली है। भौवापार से पुरुष का एक ऐसा मस्तक मिला है, जिसमे तीन ऑखे प्रदर्शित की गयी है। इन ऑखो से त्रिनेत्र शिव की पहचान की जा सकती है। सिर पर जटाजूट को एक पट्टिका से कसकर व्यवस्थित किया गया है। कुषाण–युगीन पुरुष मूर्तियो मे से तीन मूर्तियाँ पू0 स0 गो0 वि0 एव शेष आठ मूर्तियाँ बौ0 सं0 मे सुरक्षित है।

7 3 × 9 सेमी0 आकार की प्रेमी–युगल की प्रतिमा मिली है, जो बौ0 स0 मे सुरक्षित है। प्रेमी पुरुष, प्रेमिका के दाहिनी ओर खडा है, तथा प्रेमिका (स्त्री) का हाथ पकडे हुए है। दोनो प्रतिमाएँ पगडी धारण की हुयी है। स्त्री के दाहिने हाथ मे चूडियाँ प्रदर्शित है, तथा वाम–हस्त कटि पर अवलम्बित है।

पशु :

कुषाण–युगीन पशु मूर्तियो की सख्या तीन है। इनमे एक मूर्ति खण्डित है, जो सम्भवत वृषभ की है। शेष दो मूर्तियाँ अश्व एव हाथी की है। इन तीनो मूर्तियों का प्राप्ति स्थल अज्ञात है। तीनों मूर्तियाँ बौ0 स0 मे सुरक्षित है।

अन्य :

उपर्युक्त मूर्तियो के अतिरिक्त कुषाण–युगीन दॅतियादार लोढे भी कई स्थलों से मिले है। सोहगौरा के कुषाण कालीन स्तरो से इस प्रकार के लोढे बहुतायत से मिले है। इसके अतिरिक्त डोमिनगढ से 9 सेमी0 व्यास के दो गोल ठप्पे मिले है, जिन्हे पू0 स0 गो0 वि0 मे रखा गया है।

गुप्तकाल

पशु :

गुप्तयुगीन पशु मृण्मूर्तियो मे वृषभ (8×5 सेमी0) तथा नागफण (13 5×9 5 सेमी0) की मूर्तियॉ जनपद से मिली है, जिनका प्राप्ति–स्थल अज्ञात है। वृषभ के मस्तक से लेकर पूरे पीठ पर चक्राकार ठप्पे लगाए गये है। वृषभ के मुख, सीग, कान व पूॅछ खण्डित है। दोनो ही मूर्तियॉ बौ0 सं0 मे सुरक्षित है।

नारी :

गुप्तकाल की तीन खण्डित नारी मृण्मूर्तियॉ जनपद के सोहगौरा नामक स्थल से उपलब्ध हुयी है। इन्हे पू0 स0 गो0 वि0 मे रखा गया है। इनका आकार 3 5 × 2 2 सेमी0, 3 × 2 2 सेमी0 तथा 10 5 × 6 5 सेमी0 है। उक्त नारी मृण्मूर्तियो मे से दो मूर्तियो (3 × 2 2 सेमी0 तथा 10 5 × 6 5 सेमी0) का मात्र शिरोभाग उपलब्ध हो सका है।

मनके :

प्रारम्भिक ऐतिहासिक युग (एन0 बी0 पी0 काल) के लोगो ने अपनी परिष्कृत अभिरूचि का परिचय, विभिन्न प्रकार के आभूषणो के निर्माण के माध्यम से दिया है। विभिन्न पुरास्थलो के उत्खनन से इस सस्कृति के स्तरो से माणिक्य के मनके, चूडियॉ, कडे एव अगूठियॉ मिली है। तामडा पत्थर, (Carnelian) बादली पत्थर (Agate) तथा कॉच के बने हुए बेलनाकार (Spherical) एव त्रिभुजाकार (Tringular) मनके अधिक प्रचलित थे। नरहन के उत्खनन मे तृतीय एव चतुर्थ काल से इस तरह के पुरावशेष मिले है[130]। यहॉ के तृतीय काल से मिट्टी के बने मनके, चूडियॉ एव नाव की आकृति के देह–मर्दक (Boat Shaped Skin Rubbers) मिले है। इसके अतिरिक्त लाल जैस्पर के बने कर्णाभूषण (Ear-Studs) तथा मिट्टी, कॉच एवं बादली पत्थर

की बनी चूडियाँ भी यहाँ से मिली है। चतुर्थ काल से भी लाल जैस्पर (Red Jasper) के बने कर्णाभूषण, ताँबे की बनी अँगूठी एव अजनशलाकाएँ, (Antimony-rods), मिट्टी, काँच, हड्डी, हाथी दाँत एव अगेट (Agate) की बनी चूडियाँ मिली है। उपर्युक्त पुरावशेषो के आलोक मे इस युग के लोगो की आभूषणो के प्रति अभिरूचि का परिचय मिलता है।

हड्डी की शलाकाएँ :

इस युग के स्तरो से हड्डी की शलाकाएँ पर्याप्त मात्रा मे मिली है, लेकिन परवर्ती काल मे इनकी सख्या उत्तरोत्तर घटती हुयी दिखलायी पडती है। इनको पुराविदो ने बाण–फलक (Arrow Points) या अस्थि–निर्मित बेधक (Bone Points) एव लेखनी (Stylus) आदि नाम दिये है। इन्हे बाण फलक मानने की दशा मे यह निष्कर्ष निकलता है कि ये शिकार करते रहे होगे। लेकिन कालान्तर मे इन बाण फलको की सीमित सख्या से ऐसा प्रतीत होता है कि शिकार की ओर से इनका रुझान कम हो रहा था, तथा कृषि को जीविका के साधन के रूप मे स्थापित किया जा रहा था[131]। इन हड्डी की शलाकाओ को यदि लेखनी (Stylus) कहे तो यह स्वीकार करना पडेगा कि इनसे लिखने का काम होता था।

ऐतिहासिक कालीन संस्कृति (200 ई0 से 600 ई0 तक)

गोरखपुर परिक्षेत्र से उपलब्ध कुषाण युगीन मुद्राओ एव मूर्तियो के आधार पर इस क्षेत्र मे कुषाणो, विशेषत कनिष्क एव हुविष्क का शासन स्वीकार किया जा चुका है। यह भी स्पष्ट है कि कुषाणो के अन्त एव गुप्तो के उदय के बीच की अवधि मे स्थानीय राजा शासन करते रहे। गोरखपुर जनपद मे भी हुविष्क के पश्चात् इस राजवश की सत्ता का कोई साक्ष्य नही मिलता।

कुषाणो के अन्त के पश्चात् इस क्षेत्र मे द्वितीय शताब्दी ई0 के मध्य मे स्थानीय राजाओ के सिक्के मिलना प्रारम्भ हो जाते है। स्पष्ट है कि कनिष्क के निर्बल उत्तराधिकारियो की कमजोर स्थिति का लाभ उठाकर, पुन कोशल क्षेत्र मे स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की गयी। स्थानीय राजाओ की सूची इस प्रकार है[132]–

1 कुमुदसेन

2 अजवर्मन

3 माधववर्मन

4 सघमित्र

5 विजयमित्र

6 देवमित्र

7 सत्यमित्र

8 आयुमित्र

इस प्रकार स्पष्ट है कि इस क्षेत्र मे कुषाण सत्ता की समाप्ति के पश्चात् अयोध्या के स्थानीय शासक, गुप्तो के उदय के पूर्व तक शासन करते रहे। चन्द्रगुप्त प्रथम के राज्य विस्तार के सम्बन्ध मे वायु पुराण मे कहा गया है कि 'गुप्त वशीय नरेश अनुगगा, प्रयाग, साकेत, मगध इन सब जनपदो को भोगेगे'[133]। विष्णु पुराण मे कहा गया है कि 'प्रयाग तक विस्तृत, गगा के तटवर्ती प्रदेश को मगध और गुप्त भोगेगे'[134]। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त प्रथम की मुद्राएँ उत्तर प्रदेश मे मथुरा, अयोध्या, सीतापुर, टाडा, गाजीपुर तथा बनारस से प्राप्त हुयी है[135]। यदि उपर्युक्त क्षेत्र गुप्तो के अधीन थे, तो यह निष्कर्ष स्वाभाविक है कि गोरखपुर क्षेत्र भी उसके (चन्द्रगुप्त प्रथम) राज्य के अन्तर्गत रहा होगा। चन्द्रगुप्त प्रथम के उपरान्त भी इस राजवंश के शासको की सत्ता इस क्षेत्र पर कायम रही। प्रो0 राजबलि पाण्डेय के अनुसार इस काल मे गुप्तो की राजधानी पाटलिपुत्र हो गयी थी और गोरखपुर परिक्षेत्र मगध का अभिन्न अग बन गया था[136]।

चन्द्रगुप्त प्रथम के पश्चात् इस क्षेत्र पर समुद्रगुप्त का शासन रहा। गोरखपुर परिक्षेत्र से मिले समुद्रगुप्त की एक स्वर्ण मुद्रा[137] एव अयोध्या मे गुप्तो के जयस्कन्धावार[138] से इसकी पुष्टि होती है।

समुद्रगुप्त के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त सत्तासीन हुआ, लेकिन इस शासक का गुप्त इतिहास मे कोई विशेष योगदान नही है। इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' शासक बना। इसके समय मे श्रावस्ती भुक्ति (प्रान्त) मगध साम्राज्य का एक प्रान्त था, और गोरखपुर इसमे (श्रावस्ती–प्रात मे) पडता था[139]। इसके अतिरिक्त चन्द्रगुप्त की कुछ स्वर्ण मुद्राएँ जनपद के गुरसैनी[140], कोटवा[141] और गोपालपुर[142] से प्राप्त हुयी है। इससे स्पष्ट है कि गोरखपुर परिक्षेत्र पर भी चन्द्रगुप्त द्वितीय का आधिपत्य था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय के पश्चात् कुमारगुप्त शासक बना। कुशीनगर से प्राप्त छ रजत सिक्के तथा कोटवा निधि से प्राप्त 16 सिक्के, गोरखपुर परिक्षेत्र पर उसके शासन को प्रमाणित करते है।

इस प्रकार कुमारगुप्त के पश्चात् क्रमश स्कन्दगुप्त, पुरूगुप्त, कुमारगुप्त द्वितीय, बुद्धगुप्त, नरसिहगुप्त 'बालादित्य' तथा कुमारगुप्त तृतीय ने इस परिक्षेत्र पर अपना आधिपत्य बनाये रखा।

गुप्तो के पश्चात् मौखरियो का भी आधिपत्य इस परिक्षेत्र पर बना रहा। तत्पश्चात् वर्द्धन–वंशीय हर्ष का काल (606–647 ई0) प्रारम्भ होता है। गोरखपुर परिक्षेत्र हर्ष के अधीन शासित रहा।

इस परिक्षेत्र मे सर्वेक्षण के दौरान अनेक स्थलो से ऐतिहासिक युग के भवनो के प्रमाण एव अन्य कलावशेष उपलब्ध हुए है। उत्खनित स्थलो में सोहगौरा[143] एवं नरहन[144] के पॉचवे काल से इस युग से

सम्बन्धित विविध पुरावशेष उपलब्ध हुए है। दोनो ही पुरास्थलों पर ऐतिहासिक युग (कुषाण–गुप्त काल) की शुरूआत एन0 बी0 पी0 परम्परा के ठीक बाद होती है।

पात्र-परम्परा :

इस युग की प्रतिनिधि मृद्भाण्ड–परम्परा, रेड वेअर की है। इसमे मुख्यत कटोरे, थालियॉ, घडे, तसले, (Basins) टोटीदार बर्तन (Spouted Vessels) बर्तन, स्प्रिंकलर तथा ढक्कन (Lids) है[145]। सोहगौरा के पॉचवे काल से रेड वेअर (लाल रग के पात्र) के कुछ ठीकरो पर मुहर लगाकर एव नक्कासी करके उन्हे अलकृत किया गया है[146]। नरहन से एक डिस–आन–स्टैण्ड प्राप्त हुआ है[147]। लाल रग का यह डिस–आन–स्टैण्ड विशेष महत्त्वपूर्ण है। जनपद के अन्य स्थलो, यथा उपधौलिया, गोरसेहरा, राजधानी, देवकली, कोटवा, बासगॉव, सोपाईघाट, असौजी, गोपालपुर एव अन्य बहुत से स्थलो से इस युग से सम्बन्धित पात्रावशेष उपलब्ध हुए है[148]।

लघु पुरावशेष (Small-finds) :

उत्खनित पुरास्थलो से उपलब्ध लघु पुरावशेषो मे पत्थर एव मिट्टी के मनके, तॉबे एव लोहे की कीले, (Copper and Iron nails) मिट्टी के बने लोढे (Terracotta Pestles) तथा मिट्टी के बने स्टैम्प मिले है। खेल से सम्बन्धित वस्तुओ मे मिट्टी की खिलौना गाडी के फ्रेम, हाथी दॉत के बने पासे (Dice made of ivory) तथा बत्तख की आकृति के खिलौने विशेष महत्त्वपूर्ण है।

श्रृगार प्रसाधनो मे मिट्टी, हड्डी एव कॉच की बनी चूडियॉ, तॉबे की अजन शलाका, (Antimony rods) तॉबे की ॲगूठी, (Copper ring) हड्डी एव मिट्टी के बने कर्णाभूषण, (Pendants) सभी उत्खनित स्थलो से प्राप्त हुए है। सोहगौरा से हड्डी की शलाका भी मिली है,[149]। जिसे लेखनी या बाण फलक माना जा सकता है। बहुत सम्भव है कि यह लेखनी ही रही हो, क्योकि शिकार की प्रवृत्ति पूर्वापेक्षा अब क्षीण हो चुकी थी और इस युग तक लेखन कला पर्याप्त विकसित हो चुकी थी, नरहन से 700 ई0 का टूटा हुआ सीलिग (Sealing) मिला है[150] जिस पर दो शब्द–'धर्म हे' (Dharm he) अकित है।

सिक्के :

इतिहास, विशेषत भारतीय इतिहास के निर्माण मे सहयोगी एव साक्षी की भूमिका निभाने वाले प्रामाणिक साधनो मे मुद्राओ का महत्त्वपूर्ण स्थान है। मुद्राएँ न केवल अपने युग की राजनीतिक घटनाओ का बल्कि सम्बन्धित युग की सास्कृतिक गतिविधियो पर भी प्रकाश डालती हैं। इनसे भौतिक समृद्धि पर भी

प्रकाश पडता है। गुप्त–युग तक आते–आते जीवन के हर क्षेत्र मे मुद्राओं का प्रयोग अनिवार्य हो गया था। यही कारण है कि गुप्त–युगीन मुद्राएँ बहुतायत से मिलती है।

गोरखपुर जनपद के अनेक स्थलो से गुप्त शासको की स्वर्ण–मुद्राएँ प्राप्त हुयी है। ये मुद्राएँ समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय एव कुमारगुप्त की है। जनपद के बासगॉव (गोपालपुर) से एक मुद्रा–निधि प्राप्त हुयी है[151]। यहॉ से 20 रजत मुद्राएँ मिली है, जिनमे 7 चन्द्रगुप्त द्वितीय की है। शेष 13 सिक्को के विषय मे कोई विवरण नही है। स्वर्ण–मुद्राएँ दो निधियो से प्राप्त हुयी है। प्रथम बासगॉव तहसील मे स्थित कोटवा निधि[152] तथा द्वितीय निधि[153] का प्राप्ति–स्थल अज्ञात है। द्वितीय निधि से गुप्तकालीन 11 स्वर्ण मुद्राएँ उपलब्ध हुयी है। इनका कोई विवरण उपलब्ध नही है। अतएव इनका सम्बन्ध किस शासक से है, कहना मुश्किल है। कोटवा निधि से चन्द्रगुप्त द्वितीय की 6 (छ) तथा कुमारगुप्त प्रथम की 10 मुद्राएँ उपलब्ध है। इन सिक्को के अतिरिक्त गुरसानी[154] (बासगॉव) से चन्द्रगुप्त द्वितीय का एक सिक्का तथा राहुल साकृत्यायन सस्थान अलीनगर,[155] गोरखपुर से समुद्रगुप्त का एक सिक्का प्राप्त है। इस प्रकार गोरखपुर जनपद गुप्त शासकों के अधीन लम्बे समय तक शासित रहा। गोरखपुर एव निकटवर्ती अन्य जनपदो (पूर्वोत्तर प्रदेश) से मिली निधियो एव अभिलेखो के आधार पर विद्वानो का एक वर्ग इस क्षेत्र को गुप्तो का आदि राज्य मानने को तैयार है। इन मुद्राओ से गुप्त शासको की आर्थिक समृद्धि के साथ ही साथ उनके सामाजिक एव सास्कृतिक अवदान पर भी प्रकाश पडता है।

वास्तुकला :

वस्तुत गुप्त–युग को 'भारतीय इतिहास का स्वर्ण युग', गुप्त नरेशो की सास्कृतिक उपलब्धियो के विशेष सन्दर्भ मे ही कहा गया है। सस्कृति के विविध क्षेत्रो के साथ ही साथ गुप्त–युगीन वास्तु और स्थापत्य का क्षेत्र भी काफी समृद्ध रहा। वस्तुत इस युग की कीर्ति कला दृश्य रचनाओ द्वारा चिरस्थायी बना दी गयी है[156]।

इस युग मे पूरे उत्तरी भारत मे एक अद्भुत कलात्मक क्रियाशीलता दिखायी देती है। गुप्त युगीन वास्तुकला के सर्वोत्तम उदाहरण मदिर है। गुप्तकालीन मंदिरों का निर्माण एक ऊँचे चबूतरे पर हुआ था, जिन पर चढने के लिए चारो ओर से सीढियॉ बनायी गयी थी। प्रारम्भ में मदिरो की छत चपटी बनायी जाती थी, किन्तु कालान्तर मे शिखर भी बनाया जाने लगा। मन्दिर मे मूर्ति रखने के लिए चौकोर या गोलाकार गर्भगृह बनाया जाता था। यह तीन ओर से दीवारो से घिरा रहता था तथा एक ओर प्रवेश द्वार बनाया जाता था। गर्भगृह के प्रवेश द्वार पर बने चौखट पर मकरवाहिनी गगा और कूर्मवाहिनी यमुना की आकृतियॉ उत्कीर्ण

मिलती है, जो गुप्तकला की अपनी विशेषता है। इसके अतिरिक्त हस–मिथुन, स्वस्तिक, श्रीवृक्ष, मगल–कलश, शख, पद्म आदि पवित्र मागलिक चिन्हो एव प्रतीको का भी अकन किया गया है। प्रारम्भ मे गर्भगृह के सामने एक स्तम्भ–युक्त मण्डप बनाया जाता था, किन्तु कालान्तर मे गर्भगृह के चारो ओर इसे बनाया जाने लगा।

इस प्रकार गुप्त–युग तक मदिरो का निर्माण व्यापक पैमाने पर होने लगा था। इस युग के मदिरो मे तिगवा का विष्णु मन्दिर, एरण का विष्णु मन्दिर, नचना कुठार का पार्वती मन्दिर, भूमरा का शिव मन्दिर (ये सभी मन्दिर मध्य प्रदेश मे अवस्थित है) तथा उ0 प्र0 मे देवगढ का दशावतार मन्दिर एव भीतरगॉव का मन्दिर विशेष महत्त्वपूर्ण है।

गोरखपुर परिक्षेत्र मे इस तरह के मन्दिरो के प्रमाण नही मिलते। इस युग से सम्बन्धित कुछ स्थलो पर अधिक से अधिक दीवालो के अवशेष और यत्र–तत्र बिखरे हुए प्राचीन ईंटो के अतिरिक्त और कुछ नही मिलता। इन ध्वसावशेषो (मलवो) के आधार पर समूचे भवन की निर्माण–योजना अन्धकार मे ही रह जाती है। बिखरे हुए इन मलवो के आधार पर हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर नही पहुॅच पाते। लेकिन बिखरे हुए ईंटो के आधार पर यह सम्भावना व्यक्त की जा सकती है कि, ये मन्दिर के ही अवशेष रहे होंगे। इनका काल निर्धारण, ईंटो के आकार–प्रकार के आधार पर ही किया जाता है। जिन पुरास्थलो पर इन भवन या मन्दिर सरचनाओ के अवशेष मिले है, उनमे उसरैन, धुरियापार तथा देवकली (निकट गगहा) का उल्लेख किया जा सकता है। देवकली से प्राप्त ईंटो का आकार 55 × 23 सेमी0 से 21 × 8 सेमी0 है। इसका समय प्रथम शताब्दी ई0 से तृतीय शताब्दी ई0 है। सोहगौरा के पचम काल से वलय–कूपो (Ring-well) के प्रमाण मिले है। इन वलय कूपो का निर्माण सफायी की दृष्टि से किया जाता होगा। नरहन मे पॉचवे काल के भवनो को ग्रामीणो ने तोडकर उनमे प्रयुक्त ईंटो को लूट लिया है। 1980 में गोरखपुर विश्वविद्यालय की ओर से फाजिलनगर–सठियॉव (जनपद कुशीनगर) मे उत्खनन कार्य हुआ, जिसमे गुप्त–कालीन भवनों के साक्ष्य व्यापक पैमाने पर प्राप्त हुए। ये भवन पकी ईंटो से बनाये गये थे, जिनके ध्वंसावशेष प्राप्त हुए हैं।

इस प्रकार हम देखते है कि आवास–गृहो के निर्माण की जो परम्परा नवपाषाण काल मे प्रारम्भ हुयी, वह उत्तरोत्तर परिष्कृत होती रही। फलत पकी ईंटो से भवनों का निर्माण किया जाने लगा। लेकिन यह तथ्य विशेष महत्त्वपूर्ण है कि नवपाषाण काल के कच्चे–भवनो (लकडी–मिट्टी एव फूश के छप्पर) की परम्परा आज भी प्रवहमान है।

कृषि एवं पशुपालन :

जनपद मे अवस्थित पुरास्थलो, सोहगौरा, नरहन एव धुरियापार के उत्खनन मे ऐतिहासिक काल के स्तरो से अनाज के दानो के प्रमाण नही मिले है। फिर भी पूर्ववर्ती स्तरो से मिले अनाज के कार्बनीकृत दानो के आलोक मे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते है कि, इस युग मे कृषि–कार्य बडे पैमाने पर की जा रही थी। कृषि की यह परम्परा नवपाषाण युग मे प्रारम्भ हुयी थी, जो क्रमश विकसित होती रही है। साहित्यिक साक्ष्यो से भी इस युग मे प्रचलित कृषि पर प्रकाश पडता है। इस युग मे धान, गेहूँ, गन्ना, जूट, तिलहन, कपास, ज्वार, मसाले, धूप, नील आदि प्रभुत मात्रा मे उत्पन्न होते थे। दलहन मे मूँग, मसूर, खेसारी की खेती भी सम्भवत होती थी, क्योकि नरहन के तीसरे काल से इनके कार्बनीकृत दाने उपलब्ध हुए है। फलों में बेर एव ऑवला के प्रमाण मिले है। अतएव उक्त फलो की खेती भी होती रही होगी। इस प्रकार हम देखते है कि इस युग (गुप्तकाल) मे कृषि काफी विकसित हो चुकी थी, जिसमे गुप्त शासको का समुचित सहयोग रहा होगा। सिचाई के साधनो की भी समुचित व्यवस्था की गयी थी। कृषि इस युग का प्रमुख उद्योग था। यह जीविका का प्रमुख साधन भी था।

इस काल के लोग पशुपालक भी थे। इनके पालतू पशुओ मे से कुछ कृषि–कार्य के लिए भी उपयोगी थे। इसके अतिरिक्त ये दूध–दही एव घी के भी स्रोत थे। इनके पालतू पशुओ मे गाय, बैल, भैस, भेड, बकरी, घोडे, हाथी एव सूअर का उल्लेख किया जा सकता है। यद्यपि जनपद मे उत्खनित स्थलों पर इस युग के स्तरो से किसी पशु के जीवाश्म (Fossils) नही मिले है, तथापि मृण्मूर्तियॉ मिली है। पूर्ववर्ती स्तरो से उक्त पशुओ की हड्डियॉ मिली है, जिनमे से कुछ पर धारदार हथियार से वध करने के निशान मिले हैं। इस आधार पर अनुमान लगाया जा सकता है कि सम्भवत ये मासभक्षी भी थे।

मूर्तिकला :

इस युग मे मूर्तिकला का सम्यक् रूपेण विकास हुआ। इसमे मानव एव पशु मूर्तियो का बाहुल्य है[157]। मानव–मूर्तियो मे स्त्री एव पुरुष दोनो है। इन मानव–मूर्तियों का सम्बन्ध हिन्दू देवी–देवताओ से जोडा गया है। इस युग मे बुद्ध की भी कुछ मूर्तियॉ बनायी गयी है। इस युग के मूर्ति–शिल्पियो ने कुषाण–युगीन नग्नता एव पूर्व मध्यकालीन प्रतीकात्मक सूक्ष्मता के बीच सतुलित समन्वय स्थापित करने में सफलता प्राप्त की है[158]। यही कारण है कि गुप्तयुगीन मूर्तियो मे आद्योपान्त आध्यात्मिकता, भद्रता एवं शालीनता दृष्टिगोचर होती है[159]।

इस युग की मूर्तियो पर गान्धार शैली का प्रभाव नही पडा है। गुप्त युग की तीन बुद्ध मूर्तियॉ उल्लेखनीय है–

1 सारनाथ की बुद्ध मूर्ति

2 मथुरा की बुद्ध मूर्ति

3 सुल्तानगज की बुद्ध मूर्ति

उल्लेखनीय है कि गोरखपुर जनपद से गुप्तयुगीन कोई प्रस्तर–मूर्ति नही मिली है।

मृण्मूर्ति कला :

इस युग मे प्रस्तर मूर्तियो की भॉति मृण्मूर्तियो का निर्माण भी किया गया। इनमे विष्णु, कार्तिकेय, दुर्गा, गगा–यमुना आदि देवी–देवताओ की मूर्तियॉ बनायी गयी। उक्त मूर्तियॉ पहाडपुर, राजघाट, भीटा, कौशाम्बी, श्रावस्ती, पवैया, अहिच्छत्र, मथुरा आदि से प्राप्त हुयी है। अहिच्छत्र की मूर्तियो मे गगा–यमुना की मूर्तियॉ तथा पार्वती का सुन्दर सिर उल्लेखनीय है। श्रावस्ती से जटा–जूटधारी शिव के सिर की मूर्ति मिली है।

गोरखपुर जनपद से वृषभ (8 × 5 सेमी0) तथा नागफण (13 × 9 5 सेमी0) की मूर्तियॉ मिली है। दोनो मूर्तियॉ गोरखपुर महानगर मे अवस्थित सग्रहालय (बौ0 स0 स0) मे संग्रहीत है। इसके अतिरिक्त सोहगौरा के गुप्तकालीन स्तरो से तीन खण्डित नारी मूर्तियॉ मिली है। अत्यन्त घिसी अवस्था मे होने के कारण इनकी व्याख्या सम्भव नही है। इन मूर्तियो के आभूषण, केश–सज्जा तथा मुखाकृति के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि ये नारी मूर्तियॉ है। तीनो मूर्तियॉ गोरखपुर विश्वविद्यालय के पूर्वायतन सग्रहालय मे सग्रहीत है। नरहन के पॉचवे काल से मातृदेवी की मूतियॉ मिली है[160]।

संदर्भ :

1 *आई0 ए0 आर0*, 1961–62, पृष्ठ–56

2 तत्रैव, 1974–75, पृष्ठ 46–47

3 चतुर्वेदी, एस0 एन0 एडवास आफ विन्ध्यन निओलिथिक एण्ड चाल्कोलिथिक कल्चर्स टू दि हिमालय तराई, एक्सकेवेशन एण्ड एक्सप्लोरेशन्स इन दि सरयूपार रीजन आफ उत्तर प्रदेश, *मैन एण्ड इनवार्नमेण्ट*, वाल्यूम 9, पृष्ठ–103

4 तत्रैव

5 सिह, पुरुषोत्तम आर्क्यालाजिकल एक्सकेवेशन ऐट इमलीडीह खुर्द, *प्राग्धारा* न0 3, 1992–93, पृष्ठ 21–30

6 तत्रैव, पृष्ठ–23

7 तत्रैव

8 तत्रैव, पृष्ठ 30

9 तत्रैव

10 तत्रैव

11 सकालिया, एच0 डी0 1974, *दि प्री हिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान*, पूना पृष्ठ 295–96, शर्मा, जी0 आर0, मिश्रा वी0 डी0, मडल डी0, मिश्रा बी0 बी0, एण्ड पाल, जे0 एन0, 1980, *बिगिनिंग्स आफ एग्रीकल्चर*, इलाहाबाद, पृष्ठ 149–152

12 मिश्र, वी0 डी0 *सम ऐस्पेक्ट्स आफ इण्डियन आर्क्यालाजी*, इलाहाबाद, 1977 पृष्ठ 108

13 शर्मा जी0 आर0, मिश्रा वी0 डी0, मडल डी0, मिश्रा बी0 बी0 एण्ड पाल जे0 एन0, 1980, *पूर्वोद्धृत*, इलाहाबाद, पृष्ठ 153

14 चतुर्वेदी, एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–102

15 तत्रैव, पृष्ठ–102

16 सिह, पुरूषोत्तम, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ–23

17 तत्रैव, पृष्ठ 23

18 तत्रैव, पृष्ठ 24

19 सिह, पुरूषोत्तम, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 31

20 सारस्वत, के0 एस0, सीड एण्ड फ्रूट रिमेस ऐट ऐन्सिएण्ट इमलीडीह खुर्द, *प्राग्धारा* न0 3, 1992–93, पृष्ठ 39

21 तत्रैव, पृष्ठ 39

22 तत्रैव

23 तत्रैव

24 चतुर्वेदी, एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 107

25 इण्डियन आर्क्यालाजिकल रिव्यू, 1961–62, पृष्ठ–56

26 तत्रैव, 1974–75, पृष्ठ 46–47

27 चतुर्वेदी, एस0 एन0, *मैन एण्ड एनवर्नमेण्ट*, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 104

28 सिह, पुरूषोत्तम, सिह अशोक कुमार और सिह इन्द्रजीत, 1991–92, ट्रायल डिग्गिग ऐट धुरियापार, *प्राग्धारा*, अक 2, पृष्ठ 55

29 सिह, पुरूषोत्तम, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 31

30 चतुर्वेदी, एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 104

31 सिह, पुरूषोत्तम, 1994, *एक्सकेवेशन ऐट नरहन*, पृष्ठ 15

32 सिह पुरूषोत्तम, 1992–93, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 32

33 तत्रैव, पृष्ठ 32

34 तत्रैव

35 सिह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत* पृष्ठ 15

36 चतुर्वेदी, एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 104

37 सिह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 15

38 तत्रैव

39 तत्रैव

40 साररस्वत, के0एस0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 39

41 सिह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत* पृष्ठ 15

42 सिह, पुरूषोत्तम, 1992–93, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 32

43 सिह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 18

44 चतुर्वेदी एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 105

45 तत्रैव

46 तत्रैव

47 तत्रैव

48 सिह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 19

49 तत्रैव

50 तत्रैव, पृष्ठ 18

51 तत्रैव,

52 चतुर्वेदी, एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 107

53 सिह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 32

54 तत्रैव,

55 मिश्र, बी0बी0, चाल्कोलिथिक कल्चर आफ दि नार्दर्न विन्ध्याज एण्ड दि मिड गगा वैली, *पीपिग थ्रु दि पास्ट*, (जी0 आर0 शर्मा मेमोरियल वाल्यूम), 2000 ई0, पृष्ठ 80

56 तत्रैव,

57 पाण्डेय, जे0 एन0, *पुरातत्त्व विमर्श*, 1983 पृष्ठ 374

58 झा, डी0 एन0, एव श्रीमाली कृष्णमोहन (सपादक), 1981, *प्राचीन भारत का इतिहास*, पृष्ठ 110

59 तत्रैव

60 तत्रैव

61 पाण्डेय जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 378

62 श्री कृष्णानद त्रिपाठी से व्यक्तिगत विमर्श के आधार पर

63 *इ0 आर्क0*, (1974–75), पृष्ठ 47

64 तत्रैव

65 तत्रैव

66 सिह पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 19

67 सिह पुरुषोत्तम, तत्रैव, पृष्ठ 19

68 इन स्थलो की पहचान तृतीय अध्याय मे हो चुकी है।

69 सिह, पुरुषोत्तम, 1994 *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 19

70 पाण्डेय जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत* पृष्ठ 385

71 सिह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 19

72 पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 374

73 सिह पुरुषोत्तम, *पूर्वोद्धृत,* 1994, पृष्ठ 22

74 तत्रैव

75 पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 385

76 तत्रैव

77 सिह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 19

78 तत्रैव, पृष्ठ 26

79 पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 385

80 सिह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 15

81 पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत* पृष्ठ 385

82 तत्रैव

83 सिह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 18

84 तत्रैव, पृष्ठ 19

85 पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 386

86 तत्रैव

87 सिह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 19

88 सिह, पुरुषोत्तम, सिह अशोक कुमार और सिह इन्द्रजीत, 1991–92, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 55

89 तत्रैव, पृष्ठ 58

90 सिह, पुरुषोत्तम, 1992–93, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 34

91 सिह पुरुषोत्तम 1994, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 19

92 तत्रैव

93 तत्रैव

94 तत्रैव

95 सिह, पुरुषोत्तम, 1992–93, *पूर्वोद्धृत,* पृष्ठ 34

96 सिह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 19

97 तत्रैव

98 तवैव

99 *रामायण*, 2 49, 11–12, 50–1, 7, 104, 15

100 *प्रा0 रा0 इ0*, पृष्ठ 78

101 पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 404

102 तत्रैव

103 सिह, पुरुषोत्तम, 1992–93, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 22

104 तत्रैव

105 सिह, पुरुषोत्तम, 1992–93, पृष्ठ 34

106 सिह पी0 अशोक कुमार सिह, इन्द्रजीत सिह, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 58

107 सिह, पी0, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 23

108 पाण्डेय, जे0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 414

109 सिह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 23

110 तत्रैव

111 तत्रैव

112 वर्मा, टी0 पी0, वाल्यूम 17, पृष्ठ 12 (1991)

113 सरकार, डी0 सी0, नोट्स ऑन सम इन्सक्रिप्सन्स इन दि कलेक्शन आफ दी एशियाटिक सोसायटी, *जे0 ए0 एस0 एल0*, वाल्यूम 8 (1952), पृष्ठ 1–3

114 फ्लीट, जे0 एफ0, टैक्स्ट्स ऑन सोहगौरा कापर प्लेट, *जे0 आर0 ए0 एस0*, वाल्यूम 21 (1907), पृष्ठ 509–533

115 पुरुषोत्तम, सिह, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 23

116 गुप्त, पी0 एल0, 1955, *पचमार्क्ड क्वायन्स ऑफ एन्श्येन्ट इण्डिया*

117 प्रो0 शैलनाथ चतुर्वेदी, 1974, सोहगौरा उत्खनन (रिपोर्ट अप्रकाशित)

118 वर्मा, टी0 पी0, ए नोट ऑन ए कापर क्वायन्स फ्राम नरहन 'द्रष्टव्य, *भारती*, न्यू सीरीज 3, 1985, पृष्ठ 103–64

119 *क्वा0 हो0 यू0 पी0* टी0 टी0 आर0 नं0 11 पृष्ठ 140–41, (1928–29)

120 *क्वा0 हो0 यू0 पी0*, टी0 टी0 आर0 नं0 8, पृष्ठ 84 (1911–12)

121 सिह, पुरुषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 22

122 तत्रैव, पृष्ठ 26

123 चतुर्वेदी, एस0 एन0, 1974, *पूर्वोद्धृत*

124 सिन्हा, के0 के0, *एक्सकेवेशन ऐट श्रावस्ती*, पृष्ठ 20 (1959)

125 श्रीवास्तव, के0 एम0, *डिस्कवरी ऑफ कपिलवस्तु*, पृष्ठ 62 एव 67

126 सिन्हा, के0 के0, पूर्वोद्धृत, पृष्ठ 15 एव 18

127 अग्रवाल, वी0 एस0, टेराकोटा फिगुराइन्स ऑफ अहिच्छत्रा, डिस्ट्रिक बरेली, *एन्श्येण्ट इण्डिया* न0 4, पृष्ठ 105 (1947–1948)

128 श्री कृष्णानन्द त्रिपाठी से विमर्श के आधार पर

129 सग्रहालय मे विभिन्न मूर्तियो के लिए प्रस्तावित युगो का उल्लेख यहाँ हुआ है।

130 सिह, पुरूषोत्तम, 1994 *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 22–27

131 तत्रैव, पृष्ठ 23

132 शाही, टी0 पी0, *अयोध्या का इतिहास*, पृष्ठ 103 (अप्रकाशित शोध प्रबन्ध)

133 पार्जिटर, एफ0 ई0, *पुराण टेक्सट्स ऑन दि डाइनेस्टिज आफ दि कलिएज*, पृष्ठ 53

134 तत्रैव, पृष्ठ 53, पाद टिप्पणी 8

135 गोयल, श्रीराम, *गुप्त साम्राज्य का इतिहास*, पृष्ठ 46

136 पाण्डेय, राजबलि, *गोरखपुर जनपद का इतिहास*, पृष्ठ 167

137 राहुल साकृत्यायन सस्थान, अलीनगर गोरखपुर मे सुरक्षित है।

138 महानौहस्त्यश्च जयस्कन्धावारा जायोद्धया वासका सर्वराज्योच्छेतु द्रष्टव्य, सरकार, *सेलेक्ट इन्सक्रिप्सन्स*, पृष्ठ 265

139 *गो0 ज0 इ0*, पृष्ठ 167

140 *क्वा0 हो0 यू0 पी0*, टी0 टी0 आर0 न0 29, पृष्ठ 92

141 *पी0 ए0 एस0 बी0*, पृष्ठ 182 (1887)

142 *जे0 आर0 ए0 एस0*, पृष्ठ 49 (1893)

143 चतुर्वेदी, एस0 एन0, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 103

144 सिह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 27

145 *इण्डियन आर्क्यालॉजी*, ए रिव्यू, 1974–75, पृष्ठ 47

146 तत्रैव

147 सिह, पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 29

148 द्रष्टव्य, इसी शोध प्रबन्ध का तृतीय अध्याय

149 *इण्डियन आर्क्यालाजी ए रिव्यू*, 1974–75, पृष्ठ 47

150 सिह, पुरूषोत्तम, 1994 *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 29

151 *जे0 आर0 ए0 एस0*, पृष्ठ 49 (1893)

152 *पी0 ए0 एस0 बी0*, पृष्ठ 182 (1887), स्मिथ, *जे0 आर0 ए0 एस0*, पृष्ठ 46 (1889)

153 *क्वा0 हो0 यू0 पी0*, टी0 टी0 आर0 न0 9, (6, 7, 1987) पृष्ठ 195

154 तत्रैव, टी0 टी0 आर0 न0 29, (1913–14) पृष्ठ 94

155 राहुल साकृत्यायन सस्थान के निदेशक से प्राप्त सूचना के आधार इस सिक्के की चर्चा की गयी है।

156 अग्रवाल, वी0 एस0, *वाकाटक गुप्त एज*, पृष्ठ 446

157 *इण्डियन आर्क्यालाजी*, ए रिव्यू, 1974–75, पृष्ठ 47

158 श्रीवास्तव, के0 सी0, *प्राचीन भारत का इतिहास तथा सस्कृति*, पृष्ठ 458

159 तत्रैव

160 सिह पुरूषोत्तम, 1994, *पूर्वोद्धृत*, पृष्ठ 27

उपसंहार

गोरखपुर परिक्षेत्र मध्यगगा घाटी मे सरयू–सदानीरा अतर्वेदी का ऐसा अतस्तल है, जिसका महत्त्व बहुआयामी है। भारत के आध्यात्मिक आकाश मे गौतमबुद्ध जैसे देदीप्यमान नक्षत्र का उदय इसी परिक्षेत्र मे हुआ था, जिसने विश्व को आध्यात्मिकता का पाठ पढाया। इस परिक्षेत्र के आध्यात्मिक महत्त्व का अनुमान इस तथ्य से लगाया जा सकता है कि धरती के गर्भ मे छिपे हुए निर्जीव, भौतिक पुरावशेषो के खोजी पुराविद् भी एक समय मे तथागत से जुडे हुए क्षेत्रो की सीमा मे ही कार्य करते रहे। इनका एक मात्र उद्‌देश्य, बुद्ध से सम्बन्धित स्थलो की पहचान करना था।

ध्यातव्य है कि सोहगौरा के उत्खनन के समय तक (1961–62) पूर्व बुद्ध–युग का इतिहास अधकारमय रहा है, जिसे उद्‌घाटित करने के प्रयास समय–समय पर होते रहे है। इसमे कुछ अग्रेज पुराविदो एव प्रशासनिक अधिकारियो यथा, ए0सी0एल0 कार्लायल, डॉ0 फ्यूहरर, ए0 स्वीटन (कमिश्नर गोरखपुर), डॉ0 हुई (जिलाधिकारी गोरखपुर), डब्लू0 सी0 पेप्पे, तथा पी0सी0 मुकर्जी का नाम लिया जा सकता है। इनके द्वारा किये गये कार्यों की विस्तृत चर्चा इस शोध–प्रबन्ध के द्वितीय अध्याय मे की जा चुकी है। इस प्रकार बुखनन से लेकर सोहगौरा उत्खनन तक एव उसके बाद के कुछेक दशको मे इस क्षेत्र के पुरातत्त्व पर जो कार्य किए गए, उनके आधार पर जनपद के सास्कृतिक इतिहास का कोई निश्चित स्वरूप स्पष्ट नही हो पा रहा था। अतएव प्रस्तुत शोध–प्रबंध मे उपर्युक्त अनुसंधानो एवं स्वय द्वारा सर्वेक्षित स्थलों के आलोक मे जनपद के सास्कृतिक स्वरूप को उद्‌घाटित करने का प्रयास किया गया है।

भारत मे क्षेत्रीय पुरातत्त्व पर अनेक कृतियॉ अस्तित्व मे आ चुकी हैं। इनमे आर्क्यालजी आफ गुजरात[1] आर्क्यालजी आफ कुमायूँ[2], आर्क्यालजी ऑफ पाचाल[3], आर्क्यालजी आफ वैशाली[4] आर्क्यालजी ऑफ लखनऊ[5], आर्क्यालजी ऑफ पाटलिपुत्र[6], तथा आर्क्यालजी ऑफ तमिलनाडु[7] उल्लेखनीय है। वस्तुत क्षेत्रीय पुरातत्त्व पर अनुसधान की शुरूआत प्रो0 एच0डी0 साकलिया ने की। उपर्युक्त अनुसधानो से क्षेत्रीय पुरातत्त्व के आलोक मे विभिन्न युगो मे मानव की जीवन–पद्धति पर सम्यक् प्रकाश पडता है। इन ग्रन्थो से मानव के सास्कृतिक

यात्रा मे आए विभिन्न पडावो पर भी यथेष्ट प्रकाश पडता है। प्रस्तुत शोधप्रबध– "गोरखपुर जनपद का पुरातत्त्व" भी क्षेत्रीय पुरातत्त्व पर किये गये कार्यों की श्रृखला मे एक कडी के रूप मे है।

शोधकर्ता ने सर्वेक्षण के लिए जनपद मे प्रवाहित नदियो को आधार बनाया है, क्योकि यह विदित है कि विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओ का जन्म नदियो के तटवर्ती इलाको मे ही हुआ है। मानव सभ्यता के विकास मे नदी घाटियो का अप्रतिम योगदान रहा है। प्रारम्भ से ही नदियॉ मानव के विकास के निमित्त उर्बर भूमि प्रदान करती रही है। गोरखपुर परिक्षेत्र मे नदियो का जाल फैला हुआ है, अतएव यह क्षेत्र पुरातत्त्व की दृष्टि से अत्यत समृद्ध है। यही कारण है कि यह क्षेत्र समय–समय पर अनेक पुराविदो एव पुरातत्त्व–प्रेमियो को अपनी ओर आकर्षित करता रहा है।

यह शोध प्रबन्ध पॉच अध्यायो मे विभक्त है। यह अध्याय (उपसहार) पूर्ववर्ती अध्यायो मे विवेचित तथ्यो का निष्कर्ष रूप मे प्रस्तुतीकरण है। इसके पूर्व के चार अध्यायो मे जनपद के राजनीतिक, सामाजिक एव सास्कृतिक परिवेश एव पृष्ठभूमि को मूलत विभिन्न स्थलो से उपलब्ध, अभिलेखो, सिक्को, मृदभाण्ड उद्योगो एव मृण्मूर्तियो के पुरातात्त्विक–मथन के आलोक मे प्रस्तुत करने की चेष्टा की गयी है। वस्तुत जनपद मे अब तक जो कार्य हुए है वे प्राय खण्डित है। अतएव उनसे जनपद के पुरातत्त्व का कोई निश्चित स्वरूप द्योतित नही हो रहा था। इस शोध प्रबध का सृजन इसी अभाव की पूर्ति के विशेष उद्देश्य से किया गया है।

प्रथम अध्याय मे जनपद की सामान्य विशेषताओ की चर्चा की गयी है, जिन्हे नौ उपविभागो मे विभक्त किया गया है। प्रथम उपविभाग मे जनपद के विशेष सदर्भ मे विषय (पुरातत्त्व) के महत्त्व की चर्चा करके उन कारणो का उल्लेख किया गया है, जिनसे प्रेरित होकर मैंने शोध–कार्य के निमित्त विषय के रूप मे "गोरखपुर जनपद के पुरातत्त्व" को चुना। द्वितीय उपविभाग मे जनपद का सामान्य परिचय दिया गया है, जिसके अतर्गत जनपद की भौगोलिक स्थिति एव गोरखपुर महानगर में अवस्थित विभिन्न संस्थाओ का उल्लेख किया गया है। तृतीय उपविभाग मे जनपद का ऐतिहासिक परिचय दिया गया है, जिसमें जनपद के नामकरण की पृष्ठभूमि मे कनफटा योगी गोरखनाथ को उत्तरदायी ठहराया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न राजवशो के समय मे जनपद की राजनीतिक स्थिति का उल्लेख किया गया है, जिसके लिए मुख्य रूप से डॉ० राजबलि पाण्डेयकृत "गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियो का इतिहास", डॉ० विशुद्धानन्द पाठककृत 'हिस्ट्री आफ कोशल', उत्तर–प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स गोरखपुर' तथा विकास पुस्तिका (गोरखपुर मडल) 1995–96 और 1996–97 पर निर्भर रहना पडा है। प्रथम दो कृतियों मे जनपद के इतिहास की विस्तृत चर्चा की गयी है। इन कृतियो मे लेखकद्वय ने जनपद के महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक बिन्दुओ पर विचार–मथन किया है, फिर भी ज्ञान तो निस्सीम है, जिसे किसी ग्रन्थ की सीमा मे बॉधा नही जा सकता।

अतएव इस परिक्षेत्र मे कुछ तथ्यो को आज भी अनुसधान की आवश्यकता है। चतुर्थ उपविभाग मे जनपद के क्षेत्रफल का उल्लेख किया गया है। इसके अतिरिक्त सरयूपार परिक्षेत्र की भौगोलिक स्थिति एव क्षेत्रफल पर भी प्रकाश डाला गया है। पचम उपविभाग मे जनपद के तहसीलो की चर्चा की गयी है। इनमे से कुछ तहसीले पुरातात्त्विक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है, जिनका उल्लेख विभिन्न संस्कृतियो के परिप्रेक्ष्य मे किया गया है। षष्टम् उपविभाग मे जल के महत्त्व, एव उसके प्राकृतिक स्रोत के रूप मे सम्पूर्ण जनपद मे प्रवाहित नदियो एव झीलो का उल्लेख किया गया है। ध्यातव्य है कि नदियो के तटवर्ती इलाके प्रारम्भ से ही मानव–जाति के लिए आकर्षक एव उपयोगी रहे है। सप्तम् उपविभाग मे समुद्र से जनपद की दूरी एव ऊँचाई के आधार पर जनपद के जलवायु पर प्रकाश डाला गया है। ध्यातव्य है कि यहॉ की जलवायु मे जाडे एव गर्मी का सतुलित समन्वय है। इस क्षेत्र मे जाडे एव गर्मी के सतुलन की पृष्ठभूमि मे हिमालय से निकटता भी एक प्रमुख कारक है। अष्टम उपविभाग मे जनपद मे अवस्थित वन–क्षेत्र एव उसमे रहने वाले जीव–जन्तुओ का उल्लेख हुआ है। ध्यातव्य है कि यहॉ के जगल प्राय मानव–बस्तियो के निकट है, ऐसी दशा मे कभी–कभी लोगो के द्वारा जगली पशुओ का शिकार भी कर लिया जाता है। यहॉ के जगल इमारती लकडी की दृष्टि से अत्यत समृद्ध है। नवम् उपविभाग मे जनपद की जनसख्या एव लिगानुपात का उल्लेख किया गया है। जहॉ तक आबादी का प्रश्न है, उत्तर प्रदेश के अन्य क्षेत्रो की तुलना मे इस जनपद की आबादी घनी है। क्योकि प्रदेश मे प्रति वर्ग किलोमीटर 473 व्यक्ति एव जनपद मे प्रतिवर्ग किलोमीटर 880 व्यक्ति निवास करते है।

द्वितीय अध्याय के अतर्गत, 1800 ई0 मे भारतीय प्रायद्वीप के पुरातात्त्विक क्षितिज पर डॉ0 फ्रांसिस बुखानन के आगमन से लेकर अद्यतन इस परिक्षेत्र मे समय–समय पर किये गये पुरातात्त्विक अध्ययन मे पूरे परिक्षेत्र का व्यापक सर्वेक्षण किया गया। फलत. जनपद एव समीपवर्ती जनपदो मे अवस्थित अनेक पुरास्थल प्रकाश मे आए। अनुसधान की इस प्रक्रिया मे मुख्य रूप से अग्रेज पुराविदों, प्रशासनिक अधिकारियो एव स्थानीय प्रबुद्ध–व्यक्तियो ने अपनी नैसर्गिक अभिरुचि दिखायी। इसी क्रम मे 1956 ई0 मे गोरखपुर विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद यहॉ के पुराविदो एव इतिहासकारो ने अपने पुरातात्त्विक अध्ययन के आधार पर इस परिक्षेत्र से जुडी हुयी अनेक ऐतिहासिक समस्याओ के समाधान के लिए सम्यक् प्रयास किया। जनपद के पुरातात्त्विक अध्ययन की श्रृखला को आगे बढाने मे बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के पुराविदो ने भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस प्रकार द्वितीय अध्याय मे 1807 से लेकर अब तक किये गये पुरातात्त्विक–मथन का इतिवृत्त प्रस्तुत किया गया है।

तृतीय अध्याय मे उन स्थलो एव वहॉ से उपलब्ध पुरावशेषो का परिचय दिया गया है, जिनका सम्बन्ध नवपाषाण युग से लेकर ऐतिहासिक युग (600ई0) तक है। इस प्रकार इस अध्याय का सृजन जनपद

के सास्कृतिक अनुक्रम के विशेष पृष्ठाधार मे हुआ है। विभिन्न सदर्भों मे इस बात की चर्चा पहले ही की जा चुकी है कि इस क्षेत्र मे पहली बार मानव का आगमन नवपाषाणयुग मे हुआ।

आमी एव राप्ती नदियो के सगम पर अवस्थित सोहगौरा, नवपाषाण काल से लेकर मध्यकाल तक की सस्कृतियो की क्रीडास्थली रहा है। उल्लेखनीय है कि यहॉ विभिन्न सस्कृतियो से जुडे हुए पुरास्थल पूरे जनपद मे विद्यमान है, जिनकी चर्चा तृतीय अध्याय मे की जा चुकी है। इस परिक्षेत्र मे सोहगौरा के समान ही कुछ ऐसे पुरास्थल भी विद्यमान है, जिनके अतस्तल मे विभिन्न सस्कृतियो के अवशेष छिपे हुए है। ध्यातव्य है कि ऐसे पुरास्थल सर्वेक्षण के दौरान प्रकाश मे आए है, जहॉ उत्खनन की विशेष आवश्यकता है। उक्त स्थलो की चर्चा, सम्बन्धित सस्कृतियो के अनुक्रम का उल्लेख करते समय अनेक बार हुयी है। सम्पूर्ण सास्कृतिक अनुक्रम इस प्रकार है[8]

1	नवपाषाण काल	प्रमुख स्थल सोहगौरा, इमलीडीह, लहुरादेवा, (बस्ती जनपद), सूसीपार, रामनगर घाट, बडगो एव गेडार।
2	ताम्रपाषाण काल	प्रमुख स्थल सोहगौरा, इमलीडीह, नरहन, धुरियापार, सिकरीगज, बडगो, चिलवनखोर, बाडोडीह, नेवास तथा गेनवरा।
3	प्रारम्भिक लौह काल (प्री0 एन0 बी0 पी0 काल)	प्रमुख स्थल रामग्राम, देवदह, पिकलीकानन, कपिलवस्तु, कुशीनगर तथा पावा।
4	प्रारम्भिक ऐतिहासिक काल (एन0 बी0 पी0 काल)	प्रमुख स्थल सोहगौरा (चतुर्थ काल), इमलीडीह (तृतीय काल), नरहन (तृतीय एव चतुर्थ काल), धुरियापार (द्वितीय एव तृतीय काल), गोपालपुर, मकन्दवार, बदरा तिवारी, बढयापार, कोठा, सोनपिपरी, उपधौलिया, गोरसेहरा, गुरुम्ही, देवकली (निकट गगहा), इटार, गेनवरा, जद्दूपट्टी, सिकरीगज, झौवा, असौजी, दुघरा, उरुवा बाजार, कुरी बाजार, महादेवा बाजार, उसरैन, बनरसिहा, गिरधरपुर–दुबवलिया और डोमिनगढ।
5	ऐतिहासिक काल (शुग, कुषाण, गुप्त)	प्रमुख स्थल देवकली (निकट कौडीराम), राजधानी, कोटवा, सोपाइघाट, भीटी तिवारी, मल्लौर, असुरन का पोखरा, सरया, पिपराइच, बासगॉव गेनवरा और भरोहिया।

ध्यातव्य है कि उपर्युक्त नवपाषाणिक एव ताम्रपाषाणिक स्थलो मे से कुछ, जनपद की भौगोलिक सीमाओ के बाहर, निकटवर्ती जनपदो मे अवस्थित है।

इसके बाद प्रारम्भिक मध्यकालीन सस्कृतियो के प्रमाण मिलते हैं, जिनको इस अध्ययन मे सम्मिलित नही किया गया है।

चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत विभिन्न युगो मे, पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आधार पर मानव की जीवन–पद्धति को समझने की कोशिश की गयी है। यह अध्याय भी तृतीय अध्याय की भॉति, नवपाषाण काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक, पॉच सास्कृतिक कालो मे विभक्त किया गया है। पुरातात्त्विक ज्ञान की वर्तमान अवस्था मे नवपाषाण काल को इस परिक्षेत्र की प्राचीनतम सस्कृति स्वीकार किया गया है। इसी अवधि मे विन्ध्यक्षेत्र के मानव का आगमन यहॉ हुआ। नवपाषाण काल मे पहुॅचते–पहुॅचते मानव ने अपने आदिम जीवन से उबरने के लिए कुछ नये प्रयोग किये। इसी **युग** मे पहली बार एक ऐसी परम्परा की शुरूआत की गयी जो आज भी किचित् परिवर्तनो के साथ प्रवहमान है। सरयूपार के जिन पुरास्थलो से नवपाषाणिक अवशेष मिले है, उनमे सोहगौरा, इमलीडीह, लहुरादेवा (बस्ती जनपद), सूसीपार, रामनगरघाट, बडगों एव गेडार का उल्लेख किया जा सकता है।

चतुर्थ अध्याय के द्वितीय खण्ड मे ताम्रपाषाणिक मानव की जीवन–पद्धति पर प्रकाश डाला गया है। इस सस्कृति के अवशेष मुख्यत जनपद के सोहगौरा (द्वितीय एव तृतीय काल), इमलीडीह (द्वितीय काल), नरहन (प्रथम काल) एव धुरियापार (प्रथम काल) के अतिरिक्त सतकबीर नगर जनपद मे अवस्थित बडगो, चिलवनखोर, बाडोडीह, नेवास तथा गेनवरा से उपलब्ध हुए है।

तृतीय खण्ड मे प्राक् एन0बी0पी0डब्लू0 प्रयोक्ता और लौह–प्रयोक्ता लोगो की जीवन–पद्धति पर प्रकाश डाला गया है। लौह–युगीन स्थलो मे मुख्यतया रामग्राम, देवदह पिकलीकानन तथा समीपवर्ती जनपद कुशीनगर एव इसी जनपद मे अवस्थित पावा का उल्लेख किया जा सकता है। इन स्थलो में कुशीनगर एव पावा का उत्खनन हो चुका है। ध्यातव्य है कि कुशीनगर एवं पावा के अतिरिक्त अन्य लौह युगीन स्थलो की पहचान विवादग्रस्त है। उपलब्ध साक्ष्यो के आलोक मे विद्वानो ने इनकी पहचान करने की कोशिश की है।

चतुर्थ खण्ड मे प्रारम्भिक ऐतिहासिक युगीन मानव की जीवन–पद्धति को उद्घाटित किया गया है। इस काल का सम्बन्ध एन0बी0पी0डब्लू0 सस्कृति से है। सर्वेक्षण के दौरान लगभग 30 पुरास्थल ऐसे मिले जो कि अतीत मे प्रारम्भिक ऐतिहासिक मानव की क्रीडास्थली रहे होंगे। इन स्थलो का विस्तृत परिचय तृतीय अध्याय मे दिया गया है।

इस अध्याय के पॉचवे खण्ड मे ऐतिहासिक काल (200 ई0 से 600 ई0), अर्थात् कुषाण एव गुप्त युगीन मानव के क्रिया–कलापो का अध्ययन, पुरातात्त्विक साक्ष्यों के आलोक मे किया गया है। वस्तुत इस युग मे लोगो की धार्मिक प्रवृत्ति का विकास बडी तेजी के साथ हुआ है। फलत विभिन्न देवी देवताओ की मूर्तियो का निर्माण किया गया। इस युग के शासक अत्यंत सहिष्णु थे, अतएव उन्होने सभी धर्मो को प्रोत्साहन दिया।

इस प्रकार हम देखते है कि गोरखपुर परिक्षेत्र मे अपने आगमन के समय तक मानव–जाति ने एक लम्बी यात्रा पूरी कर लिया था। अब वह अपनी मानवेतर एव मानवसम स्थितियो से उबरकर विकसित मानव बन चुका था। प्रस्तुत शोध–प्रबन्ध मे नवपाषाण काल से लेकर ऐतिहासिक काल तक, मानव की विकारा--यात्रा का क्रमिक अध्ययन किया गया है।

सदर्भ :

1 सकालिया, एच0डी0, 1941, *आर्क्यालजी आफ गुजरात,* नटवर लाल एण्ड कम्पनी, बाम्बे।

2 नौटियाल, के0 पी0, 1969, *आर्क्यालजी आफ कुमायूँ,* चौखाम्भा बनारस।

3 सिह, शिवबहादुर, 1979, *आर्क्यालजी आफ पाचाल,* आगम काला प्रकाशन, दिल्ली।

4 कुमार, दिलीप 1986, *आर्क्यालजी आफ वैशाली,* रामानन्द विद्याभवन, नई दिल्ली।

5 सिह, एच0 डी0 1972, *आर्क्यालजी आफ लखनऊ,* परितोष प्रकाशन, लखनऊ।

6 कुमार, ब्रजमोहन, 1987, *आर्क्यालजी आफ पाटलिपुत्र,* रामानन्द विद्याभवन, दिल्ली।

7 राजन, के0 1994, *आर्क्यालजी आफ तमिलनाडु,* बुक इण्डिया पब्लिसिग कम्पनी, दिल्ली।

8 विशेष के लिए, द्रष्टव्य इसी शोध प्रबन्ध का तृतीय अध्याय।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

मूल ग्रन्थ

ऋग्वेद : सायण भाष्य सहित 5 खण्ड, वैदिक एवं संशोधन मंडल, पूना, 1933–51

अथर्ववेद : सुबोध भाष्य, दामोदर सावतलेकर, स्वाध्याय मंडल, पारडी (सूरत) 1950

शतपथ ब्राह्मण : सायण और हरिस्वामी, भाष्य सहित, बम्बई, 1950

महाभारत : गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० 2021, क्रिटिकल एडीसन, पूना

: सम्पादक, प्रतापचन्द्र राय, कलकत्ता

: अनुवाद, प्रतापचन्द्र राय, कलकत्ता

रामायण : गीताप्रेस, गोरखपुर, सं० 2021

: हिन्दी माध्यम व्याख्या सहित, व्याख्याकार पंडित द्वारिका प्रसाद शर्मा, चतुर्वेदी (10 भागों में)

पद्मपुराण : गुरूमण्डल ग्रन्थमाला, सं० 18, कलकत्ता 1957–59

विष्णुपुराण : बम्बई, 1989

: अग्रेजी अनुवाद, एच०एच० विल्सन, लंदन, 1864–70

विष्णु स्मृति : बीस स्मृतियाँ, बरेली, 1966

अष्टाध्यायी : अष्टाध्यायी आफ पाणिनि, सम्पादक, श्रीशचन्द्र बसु

कलियुगराजवृत्तांत : एम० कृष्णामाचारियर, *हिस्ट्री आफ क्लैसिकल संस्कृत लिटरेचर*, मद्रास, 1927

कथासरित्सागर : सोमदेव, दिल्ली, 1970 (प्रथम संस्करण), पुनर्मुद्रण (1977)

मुद्राराक्षस : (शूद्रक कृत) सम्पादक, आर०के० ध्रुव, पूना, 1930

सौन्दरनन्द : अश्वघोष

उदान : सम्पादक, पी० स्टाइनयल, पालिटेक्स्ट सोसायटी, लंदन 1885; नालंदा देवनागरी संस्करण, 1959; अंग्रेजी अनुवाद, डी०एस० स्ट्रांग, लंदन, 1902

जातक : अनुदित, ई०बी० कावेल, लंदन, 1957

थेरगाथा : सम्पादक, एच० ओल्डेनवर्ग, पालि टेक्स्ट सोसायटी, लंदन 1883; नालंदा देवनागरी संस्करण 1959, अंग्रेजी अनुवाद,, श्रीमती रिज डेविड्स, *सम्स आफ अर्ली बुद्धिस्ट्स,* जिल्द 2, ब्रदरेन, लंदन, 1964

दीर्घनिकाय : सम्पादक, टी०डब्लू०, रीज डेविड्स और जे०इ० कारपेन्टर, तीन जिल्दों में सम्पन्न, पालिटेक्स्ट सोसाइटी, लंदन, 1890–1911, नालंदा देवनागरी संस्करण, तीन जिल्दों में सम्पन्न, 1958; अंग्रेजी अनुवाद, *रिज डेविड्स, डायलाग्स आफ दि बुद्ध,* तीन जिल्दों में, *सेक्रेड बुक्स आफ दि बुद्धिस्ट्स* लंदन, 1899–1926; हिन्दी अनुवाद राहुल सांकृत्यान, *सारनाथ,* 1936

दिव्यावदान : सम्पादक, ई० बी० कावेल और आर० ए० नेल, कैम्ब्रिज, 1886; दि मिथिला इन्स्टीट्यूट, दरभंगा, बिहार, 1959

धम्मपद : सम्पादक एस० एस० थेर, पालिटेक्स्ट सोसायटी, लदन 1914; नालंदा देवनागरी संस्करण; अंग्रेजी अनुवाद, एफ० मैक्समूलर, *सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट,* जिल्द 10, (भारतीय-संस्करण), दिल्ली 1965, अंग्रेजी अनुवाद, राधाकृष्ण, मद्रास, 1974

बुद्धचरित : सूर्यनारायण चौधरी द्वारा अनुदित, 2 वाल्यूम्स, बनारस 1942

महापरिनिव्वानसुत्त : गोरखपुर जनपद में उद्धृत अंश

सहायक ग्रन्थ :

अग्रवाल, वासुदेव शरण : *मत्स्य पुराण : ए स्टडी,* काशीराज ट्रस्ट प्रकाशन, वाराणसी

: *वाकाटक गुप्त एज* (आर० सी० मजूमदार और ए० एस० अल्टेकर) में, पृष्ठ 446, नई दिल्ली, 1967 (1986 रिप्रिंट)

: टेराकोट्टा फिगुराइन्स आफ अहिच्छत्रा (डिस्ट्रिक्ट बरेली), *ऐन्सियण्ट इण्डिया* नं० 4, पृष्ठ 105, नई दिल्ली, 1947–48

ओम प्रकाश : *उत्तर प्रदेश डिस्ट्रिक्ट गजेटियर्स गोरखपुर,* इलाहाबाद, १९८७

उपाध्याय, भरत सिंह : *बुद्धकालीन भारतीय भूगोल,* प्रयाग, प्रथम संस्करण 1883

कनिंघम, अलेक्जेण्डर : *ऐन्सियण्ट ज्यागर्फी आफ इण्डिया,* कलकत्ता 1924, नवीन संस्करण वाराणसी, 1963

कुमार, ब्रजमोहन : *आर्क्यालजी आफ पाटलिपुत्र,* रामानन्द विद्या भवन, नई दिल्ली, 1987

कुमार, दिलीप : *आर्क्यालजी आफ वैशाली,* रामानन्द विद्या भवन, नई दिल्ली, 1986

गोयल, श्रीराम : *गुप्त साम्राज्य का इतिहास,* कुसुमांजलि प्रकाशन,जयपुर, 1987

गुप्त, पी० एल० : *ए बिब्लियोग्रैफी आफ दि हार्ड्स आफ पंचमार्क्ड क्वायन्स आफ एन्सियण्ट इण्डिया*, दि न्यूमिस्मैटिक सोसायटी आफ इण्डिया, बम्बई, 1955

चतुर्वेदी, एस० एन० : *एक्सकेवेशन ऐट सोहगौरा*, गोरखपुर, 1974–75 (अप्रकाशित)

: एडवांस आफ विन्ध्यन नियोलिथिक एण्ड चाल्कोलिथिक कल्चर्स टू दि हिमालयन तराई, एक्सकेवेशन एण्ड एक्सप्लोरेशन्स इन दि सरयूपार रीजन आफ उत्तर प्रदेश, *मैन एण्ड एनवाइरनमेंट*, वाल्यूम 9, 1985, पृष्ठ 101–108·

: एक्सकेवेशन ऐट सठियाँव–फाजिलनगर, डिस्ट्रिक्ट देवरिया एण्ड एक्सप्लोरेशंस इन दि डिस्ट्रिक्ट आफ गोरखपुर एण्ड बस्ती आफ उत्तर प्रदेश, *हिस्ट्री एण्ड आर्क्यालाजी*, वाल्यूम 1 नं० 1–2, इलाहाबाद यूनिवर्सिटी, 1980, पृष्ठ 333–340

जैन, जे० सी० : *लाइफ इन ऐन्सियण्ट इण्डिया*, न्यू बुक कम्पनी, बाम्बे 1947

झा, डी० एन० एवं
कृष्णमोहन श्रीमाली (सम्पा०): *प्राचीन भारत का इतिहास*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, प्रथम संस्करण 1981

तिवारी, आर० एवं
आर० के० श्रीवास्तव : एक्सप्लोरेशंस एलांग दि आमी रिवर एण्ड इन इट्स नियर बाई एरियाज इन डिस्ट्रिक्ट सिद्धार्थ नगर, बस्ती एण्ड गोरखपुर, *प्राग्धारा*, अंक 4, 1993–94, पृष्ठ 13–40

दत्त, नलिनाक्ष एवं
कृष्णदत्त बाजपेयी : *उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास*, लखनऊ, 1956 .

नियोगी, रोमा : *हिस्ट्री आफ दि गाहड़वाल डाइनेस्टी*, कलकत्ता, 1959 .

नौटियाल, के० पी० : *आर्क्यालजी आफ कुमायूं*, चौखम्भा, बनारस, 1969 .

पाण्डेय, जे० एन० : *पुरातत्त्व विमर्श*, विद्या प्रकाशन, यूनिवर्सिटी रोड इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1983

पाण्डेय, रामनिहोर : *प्राचीन भारत का राजनीतिक इतिहास*, प्रामानिक पब्लिकेशंस, इलाहाबाद प्रथम संस्करण 1983

पाण्डेय, राजबलि : *गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास*, गोरखपुर, सं० 2035

पाठक, विशुद्धानंद : *हिस्ट्री आफ कोशल*, वाराणसी, 1963

पार्जिटर, एफ० ई० : *ऐन्सियण्ट इण्डियन हिस्टारिकल ट्रेडीसन*, लंदन 1922

पार्जिटर, एफ० ई० : *दि पुराण टेक्सट्स आफ दि डाइनेस्टीज आफ दि कलि- एज,* द्वितीय संस्करण, वाराणसी, 1962

पाण्डेय, जगत नारायन : *संसाधन उपयोग और संरक्षण,* वसुन्धरा प्रकाशन गोरखपुर, 1991

पेप्पे, डब्लू० सी० : पिपरहवा स्तूप कन्टेनिंग रैलिक्स आफ बुद्ध, *जर्नल आफ दि रायल एसियाटिक सोसायटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एण्ड आयरलैण्ड,* 1998 पृष्ठ 575

फ्लीट, जान फेथपुल : *कार्पस इन्सक्रिप्शंस इण्डिकेरम,* वाल्यूम 3, वाराणसी, 1970

: टेक्ट्स आन सोहगौरा कापर प्लेट, *जे० आर० ए० एस०,* वाल्यूम 21 (1907), पृष्ठ 509–533

फ्यूहरर, ए० : *मान्यूमेण्टल एण्टीक्वीटीज एण्ड इन्सक्रिप्शंस आफ नार्थ वेस्टर्न प्राविन्सेज एण्ड अवध,* वाराणसी, 1969

बनर्जी, ए० के० : *दि नाथ योगी सम्प्रदाय एण्ड दि गोरखपुर टेम्पुल,* गोरखपुर, 1964

भट्टाचार्य, एस० सी०, वी० डी० मिश्र एवं जे० एन० पाल : *पीपिंग थ्रू दि पास्ट (प्रो० जी० आर० शर्मा मोमोरियल वाल्यूम),* इलाहाबाद, 2000, पृष्ठ 66–85

मजूमदार, आर० सी० एण्ड (ए० डी० पुसलकर (सम्पा०) : *हिस्ट्री एण्ड कल्चर आफ दि इण्डियन पीपुल्स,* भाग–2, बाम्बे 1951 (*दि एज आफ इम्पीरियल युनिटी*)

माथुर, बी० कुमार : *ऐतिहासिक स्थानावलियाँ,* शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1969

माण्टगोमरी, मार्टिन : *ईस्टर्न इण्डिया,* वाल्यूम 2, लंदन, 1938

मुकर्जी, पी० सी० : *एन्टीक्वीटीज आफ कपिलवस्तु, तराई ऑफ नेपाल,* (1899), वाराणसी 1969

: *इन्ट्रोडक्सन नरेटिव आफ माई टूर,* 1899

मित्रा, डी० : *बुद्धिस्ट मान्यूमेण्ट्स,* कलकत्ता, 1972

मिश्र, राम सहाय : *मानचित्रावली तथा भौगोलिक वर्णन, गोरखपुर जनपद,* 1972 (भारत के महासर्वेक्षक के आज्ञानुसार, भारत सर्वेक्षण विभागीय मानचित्र पर आधारित)

मिश्र, वी० डी० : *सम ऐस्पेक्ट्स आफ इण्डियन आर्क्यालाजी,* इलाहाबाद, 1977

मैकडोनल, ए० ए० एण्ड कीथ, ए० बी० : *वैदिक इण्डेक्स ऑफ नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स,* वाल्यूम I एण्ड II, दिल्ली, 1950

रिज, डेविड्स : *बुद्धिस्ट इण्डिया*, कलकत्ता 1902, लंदन, 1903

राय चौधरी, हेमचन्द्र : *प्राचीन भारत का राजनैतिक इतिहास*, किताब महल, इलाहाबाद, 1976

राजन, के० : *आर्क्यालजी आफ तमिलनाडु*, बुक इण्डिया पब्लिसिंग कम्पनी, 1994

राकहिल : *दि लाइफ आफ दि बुद्धा*, वाराणसी, 1972

लॉ, बी० सी० : *हिस्टारिकल ज्यागर्फी आफ इण्डिया*, दिल्ली, 1939

: *प्राचीन भारत का ऐतिहासिक भूगोल*, लखनऊ, 1972

वर्मा, राधाकान्त : *क्षेत्रीय पुरातत्त्व*, इंलाहाबाद, 2000 ई०

वर्मा, टी० पी० : ए नोट आन दी कापर क्वायन्स फ्राम नरहन, द्रष्टव्य, *भारती न्यू सीरीज* 3, 1985, पृष्ठ 163–64

: आइडेन्टिफिकेशन आफ प्लेस नेम्स इन सोहगौरा, ब्रांज प्लेट, *जे०ए ०एस०इ०*, वाल्यूम 17, पृष्ठ 12 एवं आगे (1991)

वाटर्स, टी० : *आन युवान–च्वांग ट्रवेल्स इन इण्डिया*, वाल्यूम I एण्ड II, लंदन, 1904, दिल्ली 1959

वैशम, ए० एल० : *स्टडीज इन इण्डियन हिस्ट्री एण्ड कल्चर*, सम्बोधि पब्लिकेशन्स, कलकत्ता 1964

शर्मा, जी०आर० : *भारतीय संस्कृति, पुरातात्त्विक आधार*, नेशनल पब्लिसिंग हाउस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 1985

शर्मा, जी० आर०, मिश्र, वी० डी०, मंडल, डी०, मिश्र, बी० बी० एण्ड पाल, जे० एन० : *विगिनिंग्स आफ एग्रीकल्चर*, इलाहाबाद, 1980 .

स्मिथ, वी० ए० : *दि अर्ली हिस्ट्री आफ इण्डिया*, आक्सफोर्ड, 1924 .

: दि रिमेंस नियर कसया, इलाहाबाद, 1896, *जे० आर० ए० एस०* (1902) पृष्ठ 139

सरकार, डी० सी० : नोट्स आन सम इन्सक्रिप्शंस इन दि कलेक्शन आफ दि एशियाटिक सोसायटी, *जे० ए० एस० एल०*, वाल्यूम 8, 1952, पृष्ठ 103

सिन्हा, के० के० : *एक्सकेवेशन ऐट श्रावस्ती*– 1959, वाराणसी 1967

सिंह, पुरुषोत्तम : *एक्सकेवेशन ऐट नरहन*, बी० आर० पब्लिकेशंस, नई दिल्ली, 1994

: आर्क्यालाजिकल एक्सकेवेशन ऐट इमलीडीह खुर्द–1992, *प्राग्धारा* अंक 3, 1992–93, पृष्ठ 21–35

सिंह, पुरुषोत्तम, माखन लाल : एवं सिंह, अशोक कुमार — एक्सकेवेशन ऐट नरहन-1983-85, *पुरातत्त्व* नं० 15, 1985-86, पृष्ठ 117-120

सिह, पुरुषोत्तम, सिंह, अशोक कुमार एण्ड सिंह, इन्द्रजीत : ट्रायल डिगिंग ऐट धुरियापार, *प्राग्धारा*, अंक 2, 1991-92, पृष्ठ 58

सारस्वत, के० एस० : सीड एण्ड फ्रूट रिमेन्स ऐट इमलीडीह खुर्द- ए प्रीलिमिनरी रिपोर्ट, *प्राग्धारा*, अंक 3, 1992-93, पृष्ठ 37-41

सिंह, यू० एण्ड पाण्डेय, जे० एन० : *चेंजेज इन दि कोर्स आफ रिवर राप्ती एण्ड देयर इफेक्ट्स आन सेटिलमेण्ट्स*, यू० जी० सी० प्रोजेक्ट, गोरखपुर, 1973

सिंह, शिव बहादुर : *आर्क्यालजी आफ पांचाल*, आगम काला प्रकाशन, दिल्ली, 1979

सिंह, एच० डी० : *आर्क्यालजी आफ लखनऊ*, परितोष प्रकाशन, लखनऊ, 1972

सिंह, डी० पी० एण्ड सिंह जे० के० : आजमगढ़ जनपद का मूलभूत इतिहास, अग्रगामी अध्ययन, *भारतीय इतिहास संकलन समिति पत्रिका*, वाराणसी, पृष्ठ 350

संकालिया, एच० डी० : *दि प्री हिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री आफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान*, पूना, 1974

: *आर्क्यालजी आफ गुजरात*, नटरवलाल एण्ड कम्पनी, बाम्बे, 1941

हार्डी : *मैनुअल आफ बुद्धिज्म इन इट्स माडर्न डेवलपमेण्ट*, चौखम्भा बनारस, 1967, XVI

हापकिन्स, इ० डब्ल्यू० : *दि रिलीजन्स ऑफ इण्डिया*, नई दिल्ली, 1972

श्रीवास्तव, के० एम० : *डिस्कवरी ऑफ कपिलवस्तु*, नई दिल्ली, 1986

श्रीवास्तव, ए०के० : क्वायंस होर्ड्स आफ यू०पी०

त्रिपाठी, आर० एस० : हिस्ट्री आफ ऐन्सियण्ट इण्डिया, दिल्ली, 1960

शोध-पत्रिकाएं एवं रिपोर्ट

आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, रिपोर्ट

आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, एनुअल रिपोर्ट

इण्डियन आर्क्यालाजी – ए रिव्यू : आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, नई दिल्ली

इण्डियन आर्क्यालाजिकल पालिसी, 1915, कलकत्ता (1916)

एपिग्रैफिया इण्डिका

एन्सियण्ट इण्डिया : बुलेटिन आफ आर्क्यालाजिकल सर्वे आफ इण्डिया, नई दिल्ली

जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी

जर्नल आफ दि एपिग्रैफिकल सोसायटी आफ इण्डिया

जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ लदन

जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल

प्रोसीडिंग आफ दि एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल

मैन एण्ड इनवाइरनमेण्ट : बुलेटिन आफ आई० एस० पी० क्यू० एस०, पुणे

हिस्ट्री एण्ड आर्क्यालजी : जर्नल आफ दि डिपार्टमेण्ट आफ ऐन्सियण्ट हिस्ट्री कल्चर एण्ड आर्क्यालजी, यूनिवर्सिटी आफ इलाहाबाद

प्राग्धारा : राज्य पुरातत्त्व विभाग, लखनऊ

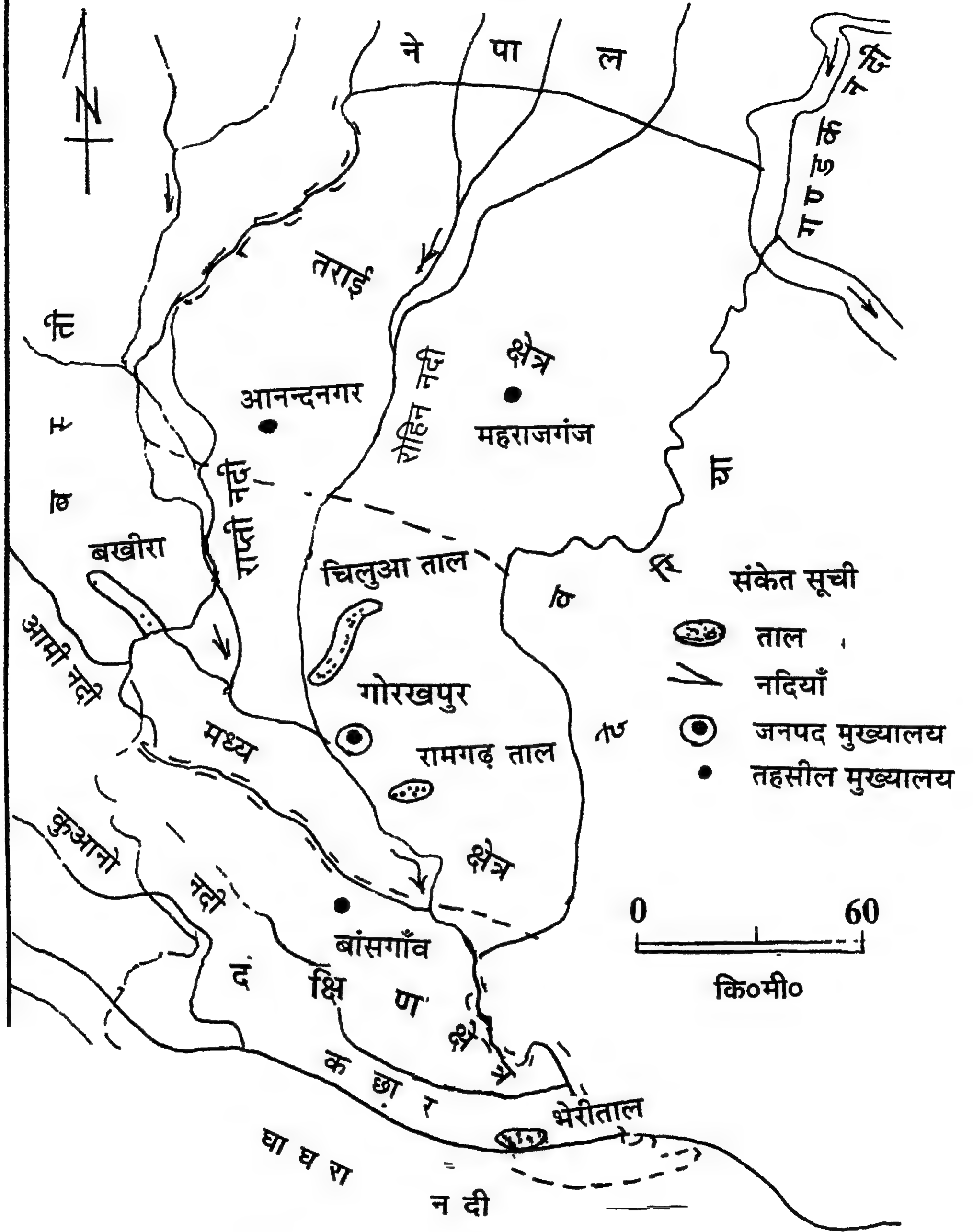
पुरातत्त्व : बुलेटिन आफ इण्डियन आर्क्यालाजिकल सोसायटी, नई दिल्ली

युग-युगीन सरयूपार : उ० प्र० इतिहास संकलन समिति पत्रिका, वाराणसी, 1987

विकास पुस्तिका (गोरखपुर मंडल) : सूचना एवं जनसम्पर्क विभाग, उ० प्र०

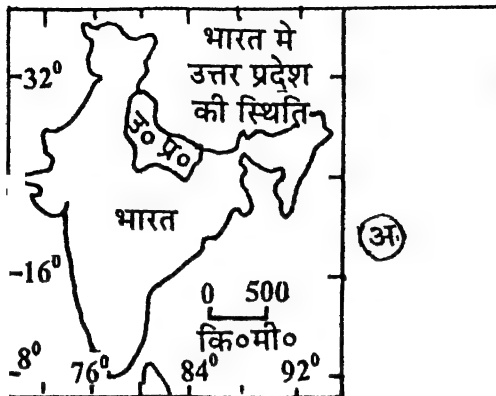
भारती : बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी

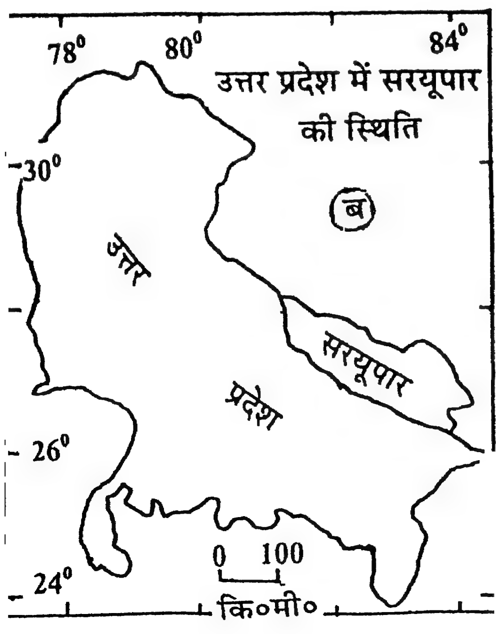
गोरखपुर जनपद का भौतिक विभाजन



मानचित्र संख्या-1

सरयूपार मैदान के नवपाषाणिक-ताम्रपाषाणिक एवं बौद्ध स्थल





(स)

ने पा ल

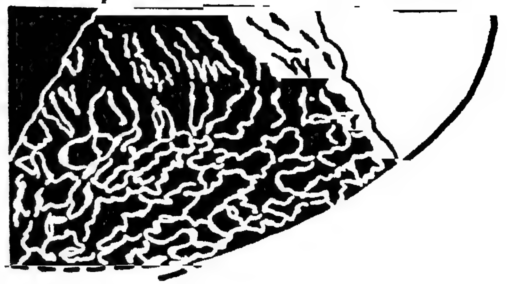
बहराइच
श्रावस्ती
पिपरहवा
गोण्डा
बस्ती
सूसीपार
रामनगर
लहुरादेवा
बड़गो
गेड़ार
गोरखपुर
सोहगौरा
इमलीडीह
कुशीनगर
फाजिलनगर
देवरिया
नरहन

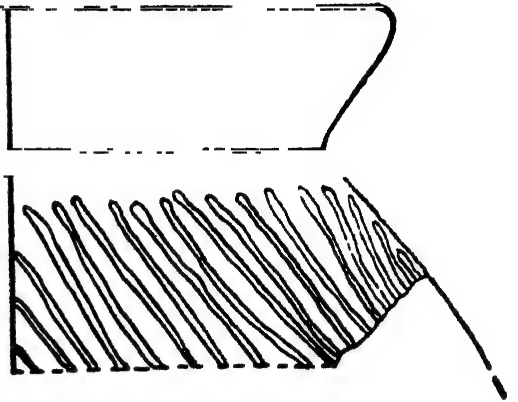
घा घ रा न दी

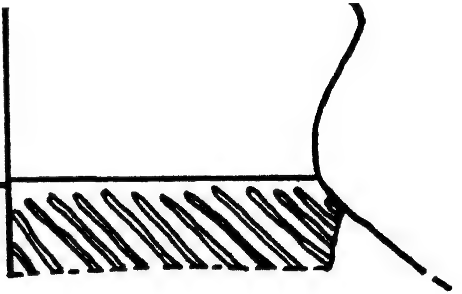
बि हा र

संकेत सूची
- नवपाषाणिक एवं ताम्रपाषाणिक स्थल
- बौद्ध स्थल
- जनपद मुख्यालय

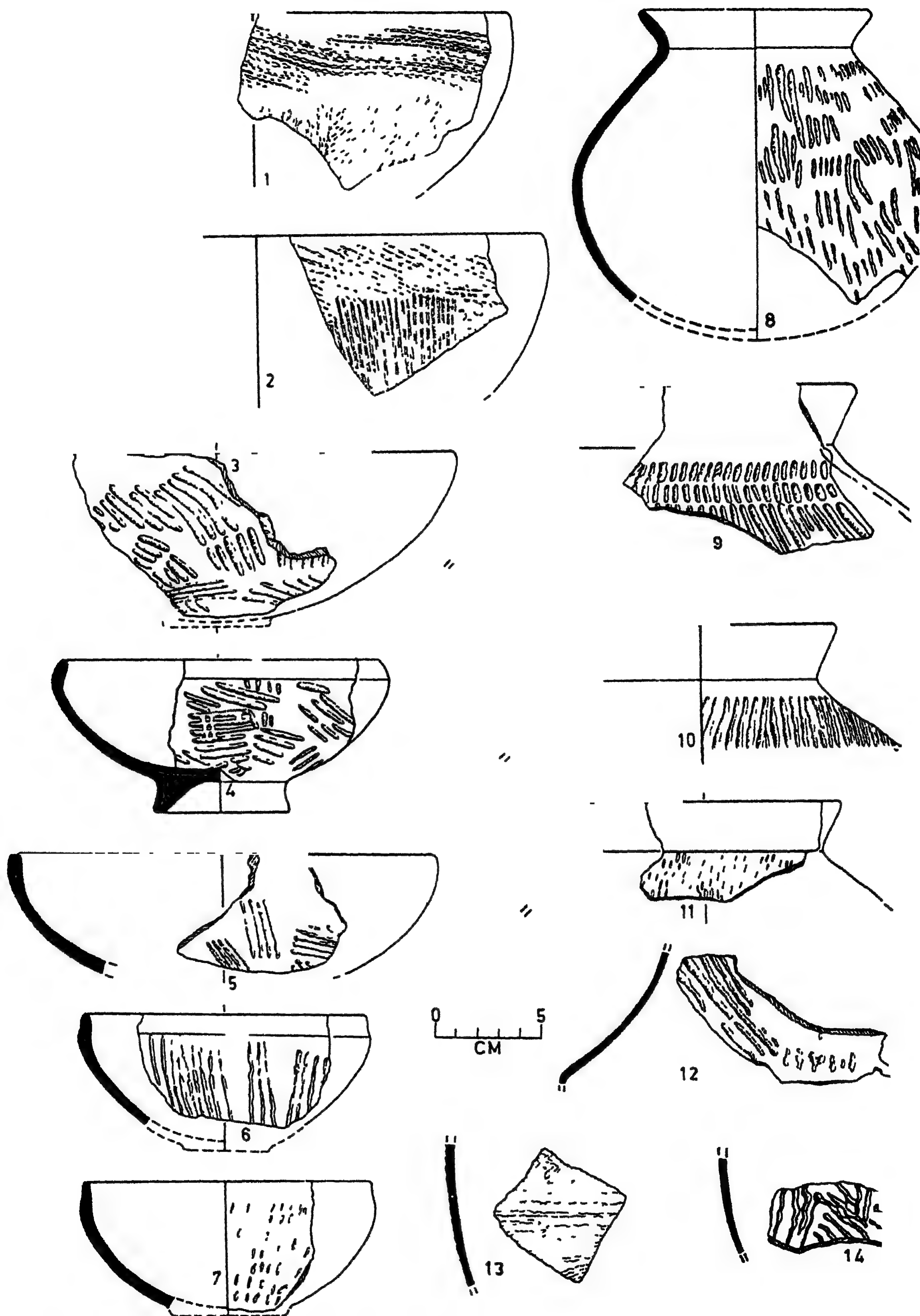
0 25
किमी०



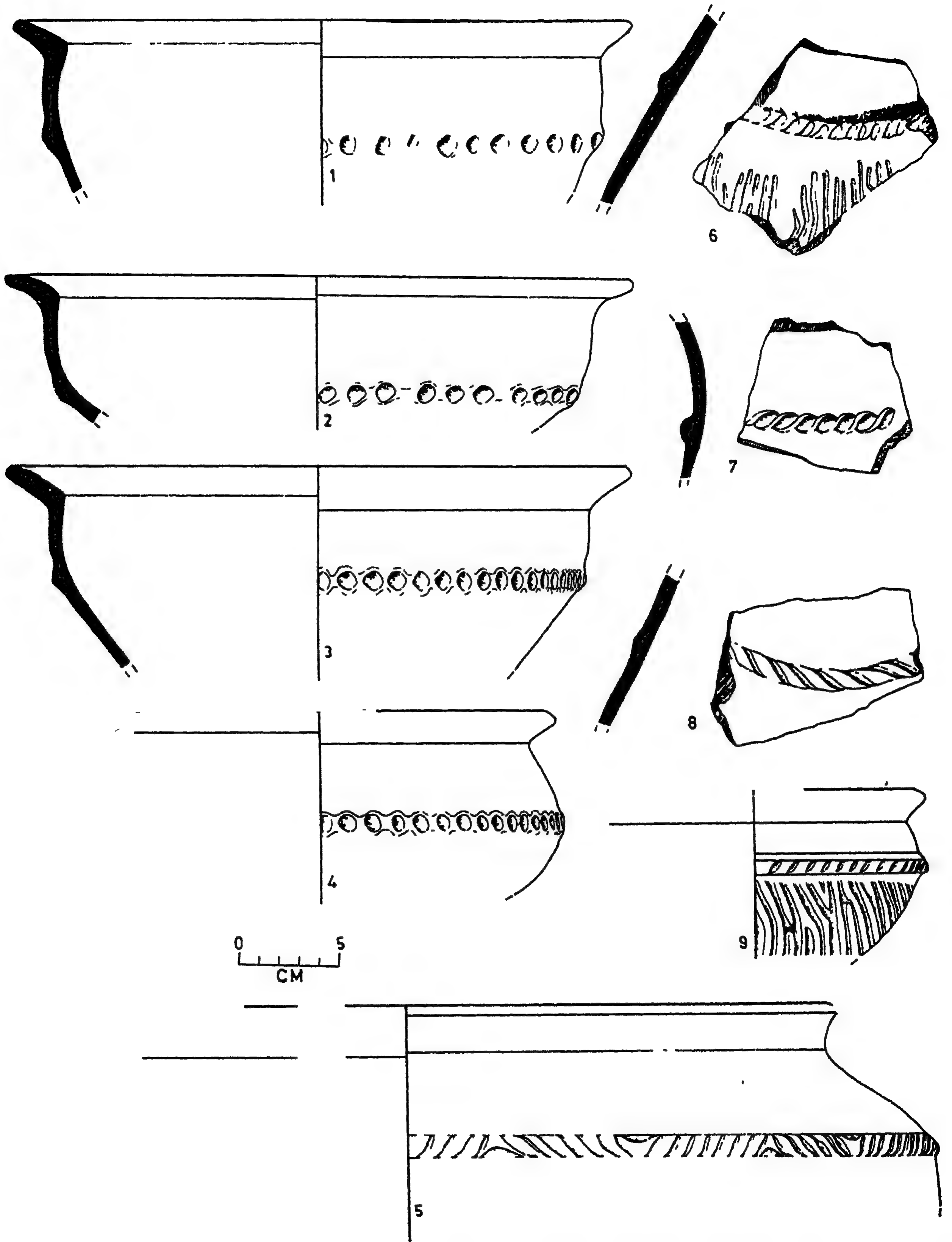




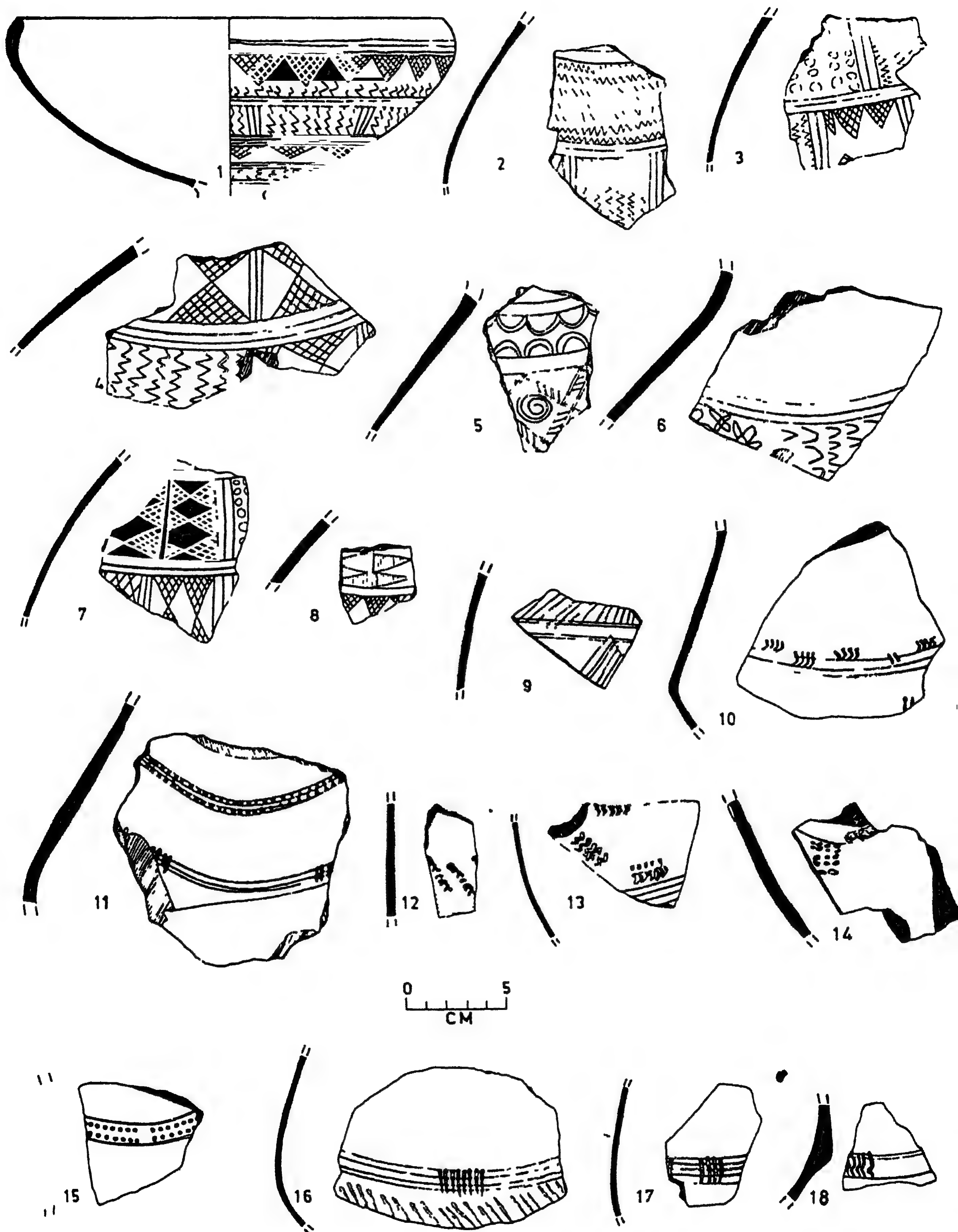
रेखाचित्र संख्या-3, सोहगौरा : प्रथम काल के नवपाषाणिक पात्र-प्रकार



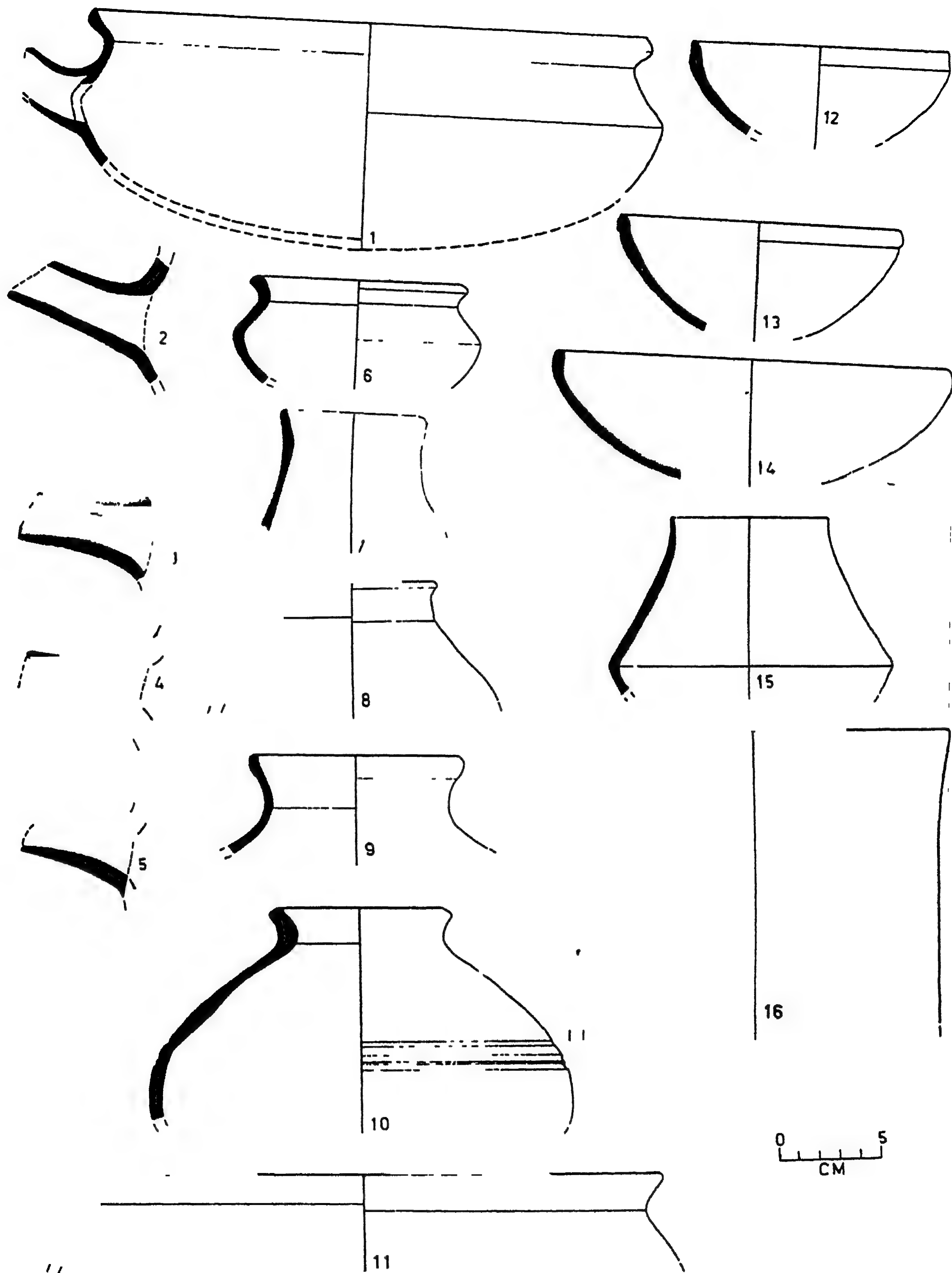
रेखाचित्र संख्या- 4, इमलीडीह : प्रथमकाल, कार्डेड वेयर (पुरुषोत्तम सिंह, प्राग्धारा अंक 3, से स



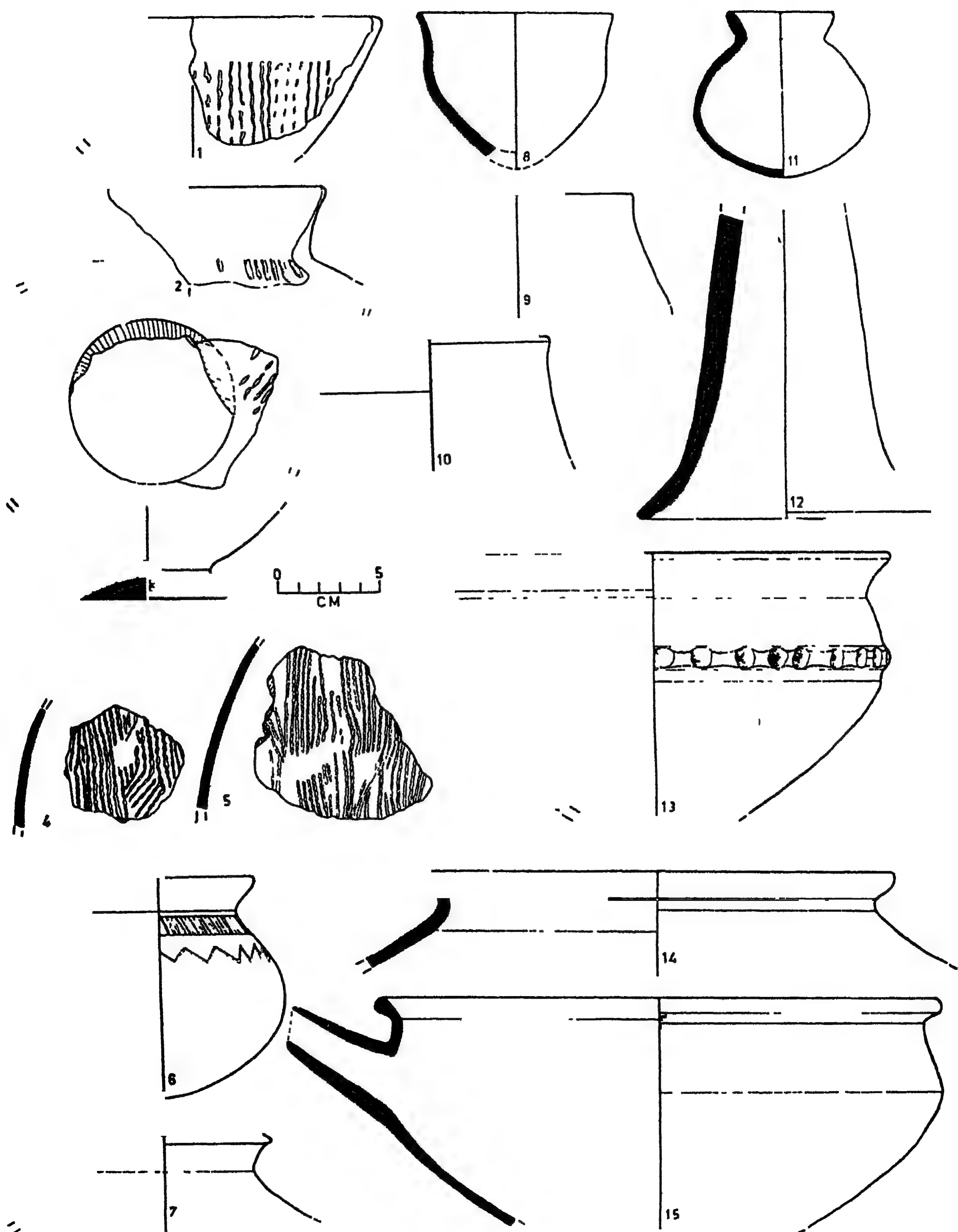
रेखाचित्र संख्या- 5 इमलीडीह : प्रथमकाल, कार्डेड वेयर पर एप्लीक अलंकरण (पुरूषोत्तम सिंह प्राग्धारा, अंक साभार)

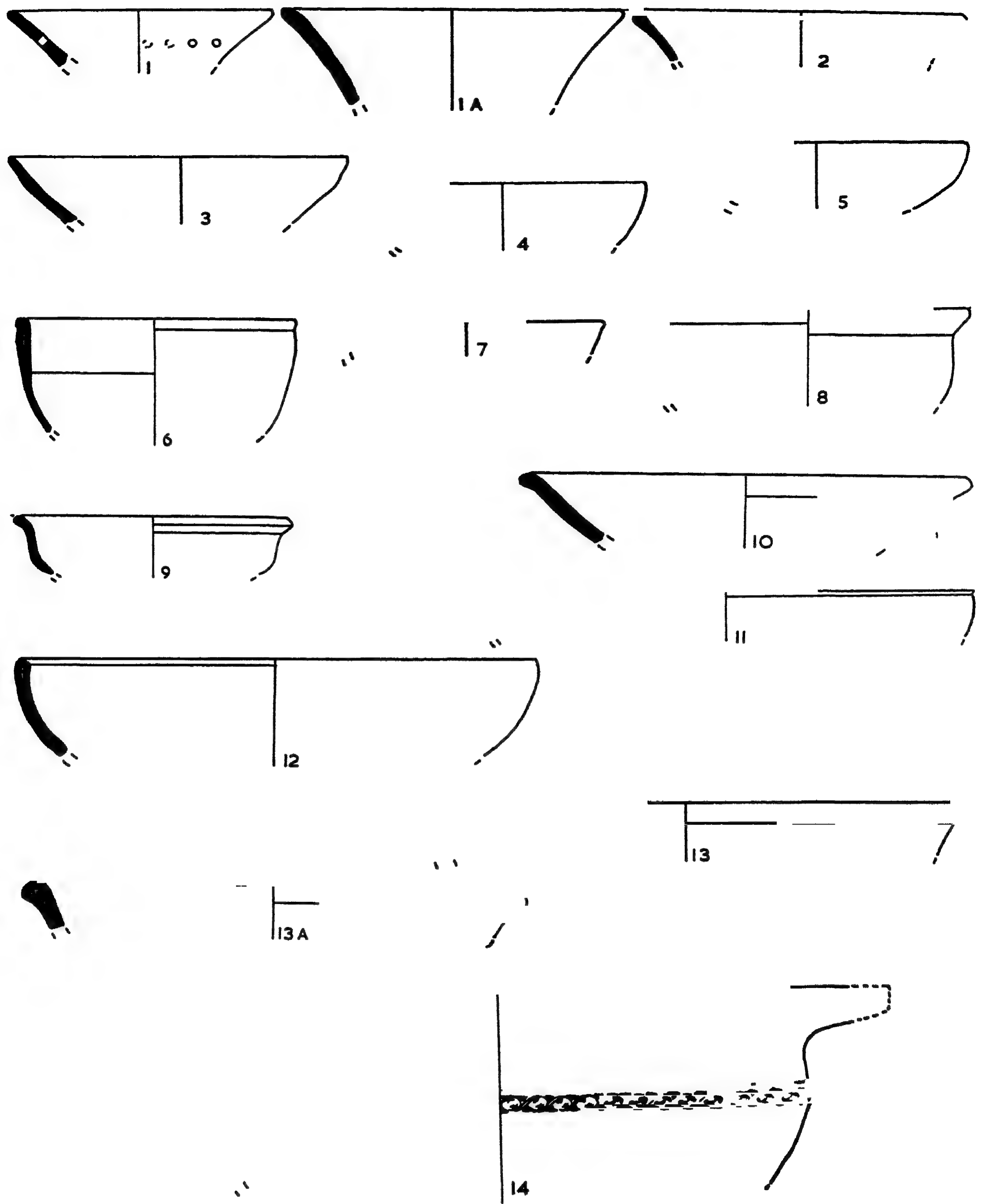


रेखाचित्र संख्या- 6 इमलीडीह : प्रथमकाल, मृद्भाण्डों पर पकाने के बाद उत्कीर्ण और चित्रित आकृतियाँ (पुरु
सिंह, प्राग्धारा, अंक 3 से साभार)



रेखाचित्र संख्या- 7 इमलीडीह : प्रथमकाल,प्लेन रेडवेअर, (पुरुषोत्तम सिंह, प्राग्धारा, अंक 3 से साभार)


1
2
8
9
10
11
12
0
5
CM
4
5
6
7
13
14
15



रेखाचित्र संख्या–9, सोहगौरा : द्वितीय काल के ताम्रपाषाणिक पात्र–प्रकार

14 A

14 B

14 C

14 D

15

16

17

18

18 A

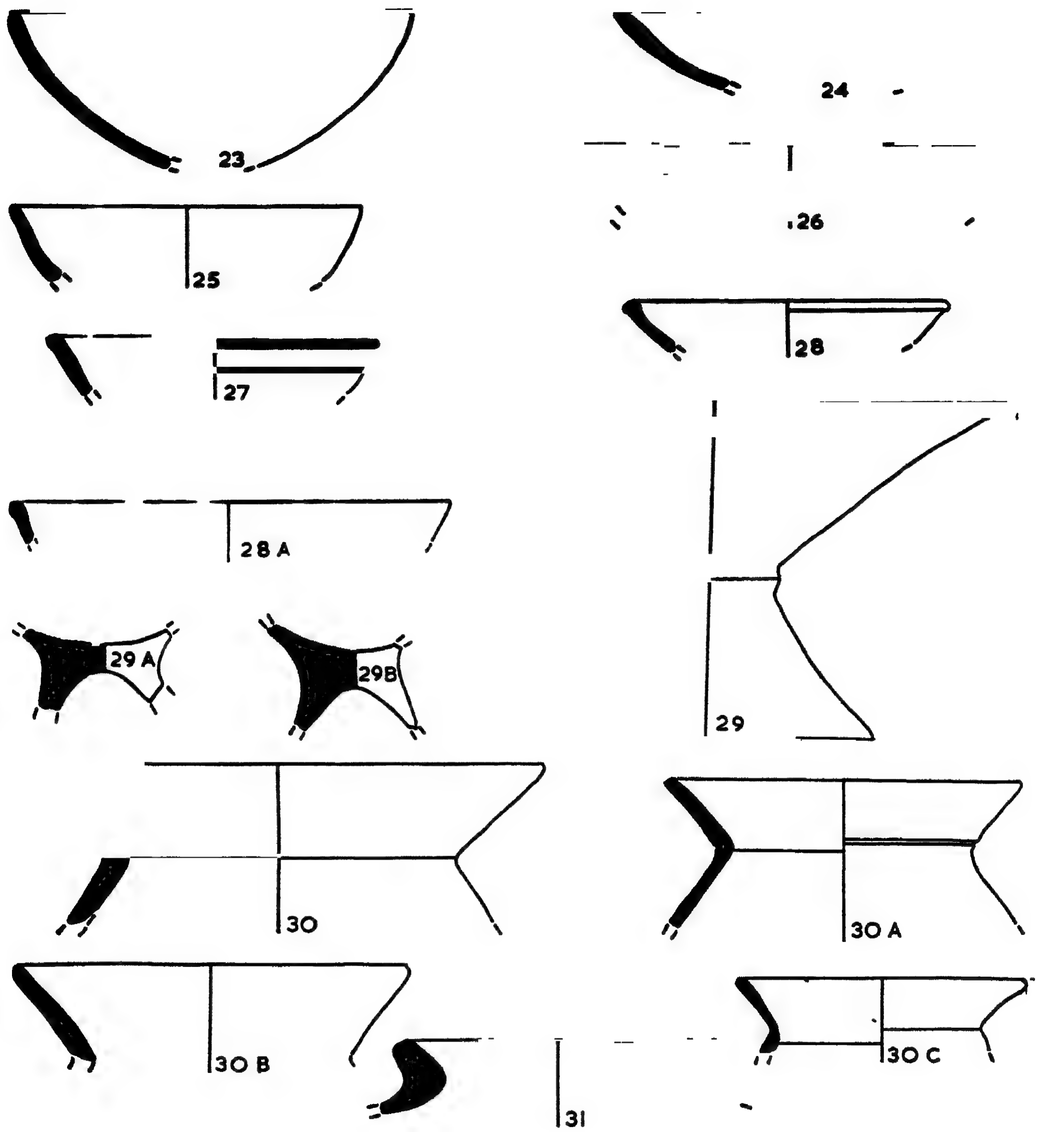
19

20

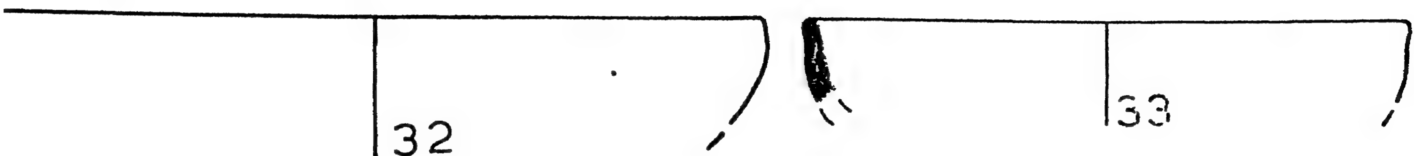
21

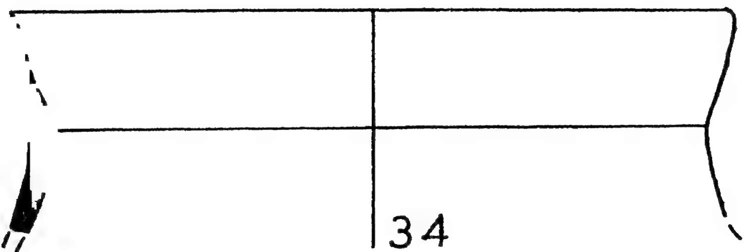
22

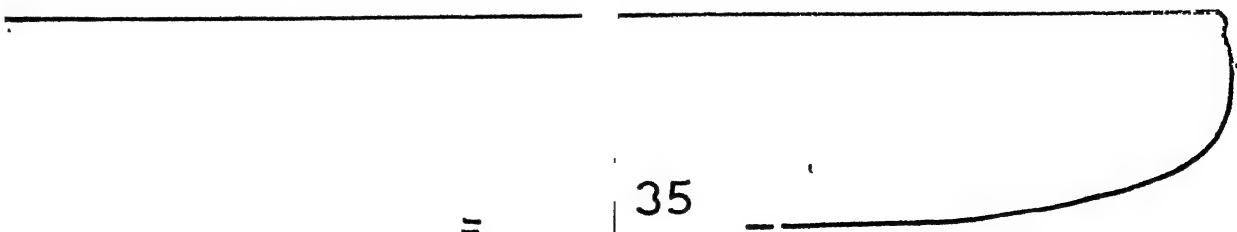
रेखाचित्र संख्या-10, सोहगौरा : द्वितीय काल के ता[illegible] पात्र-प्रकार



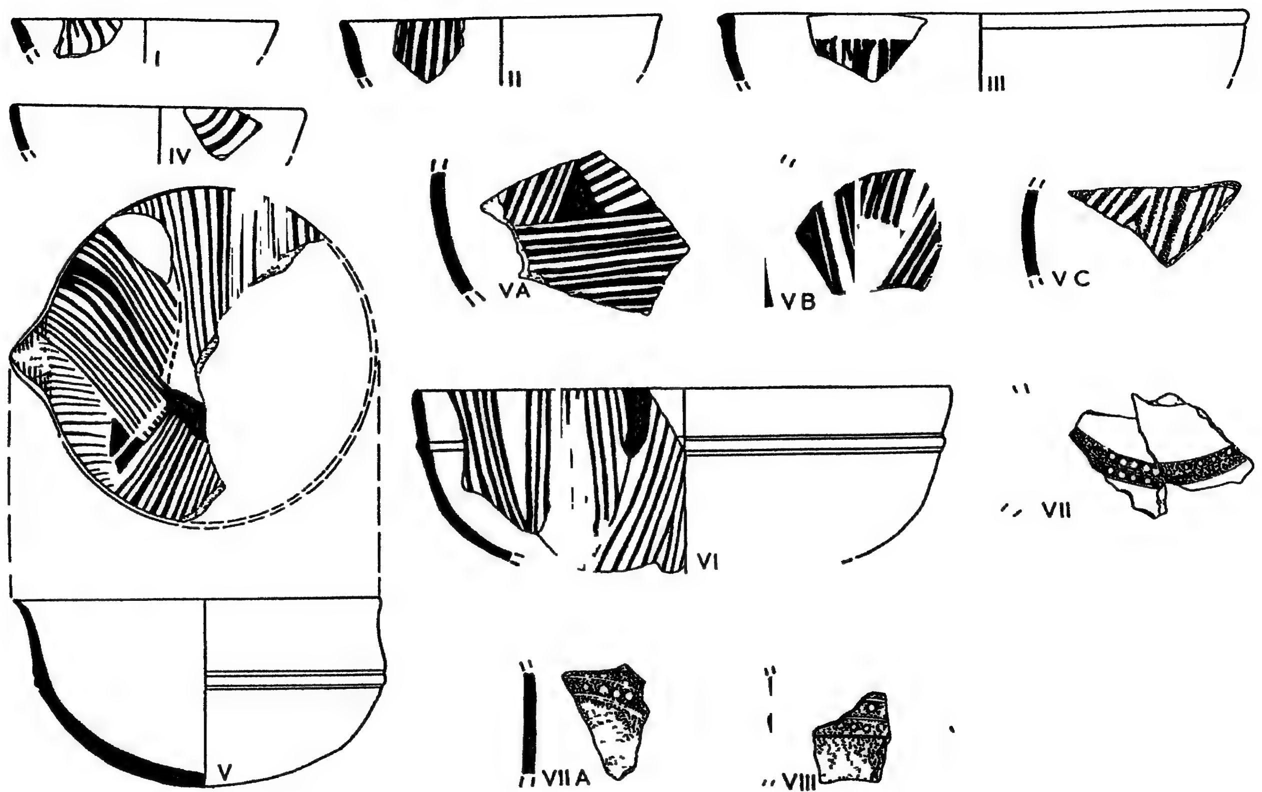
रेखाचित्र संख्या–11, [illegible] : द्वितीय काल के ताम्रपाषाणिक पात्र–प्रकार



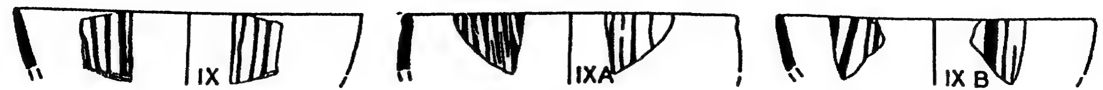


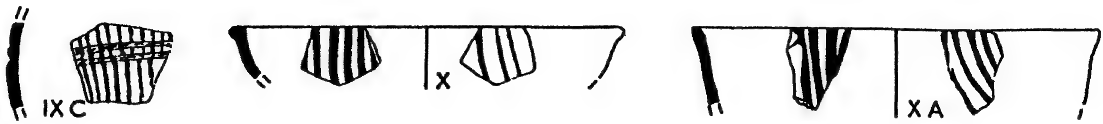


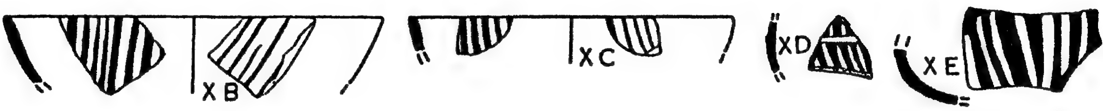
रेखाचित्र संख्या–12. सोहगौरा : द्वितीय काल के ताम्रपाषाणिक पात्र-प्रकार

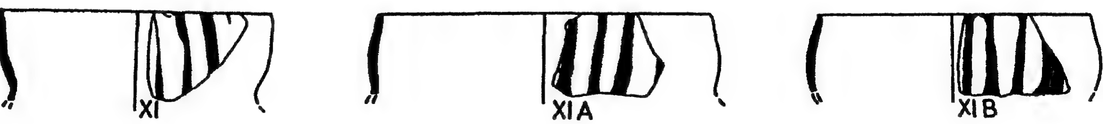


रेखाचित्र संख्या–13, सोहगौरा : द्वितीय काल के ताम्रपाषाणिक पात्र–प्रकार



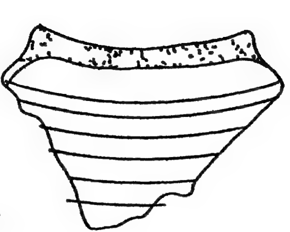


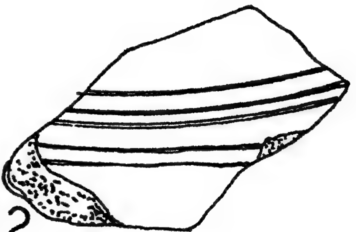


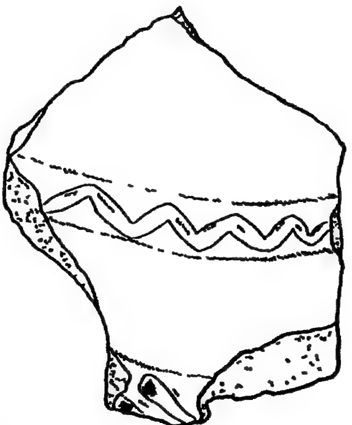


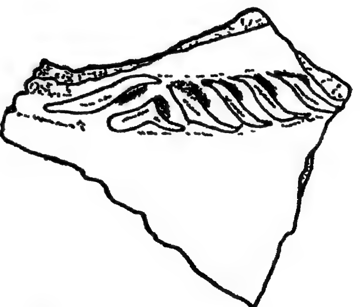


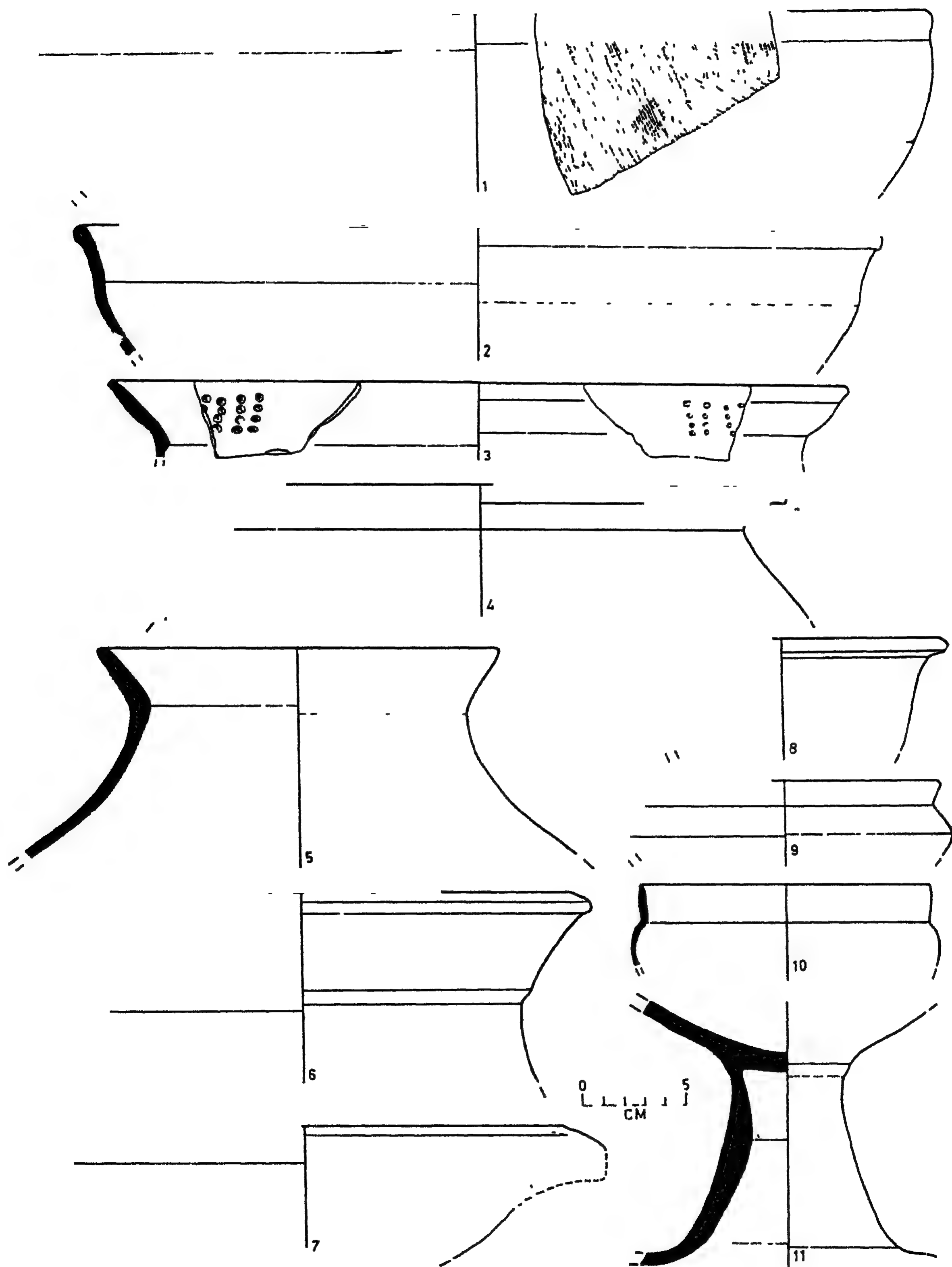
रेखाचित्र संख्या-14, सोहगौरा : द्वितीय काल के ताम्रपाषाणिक पात्र-प्रकार

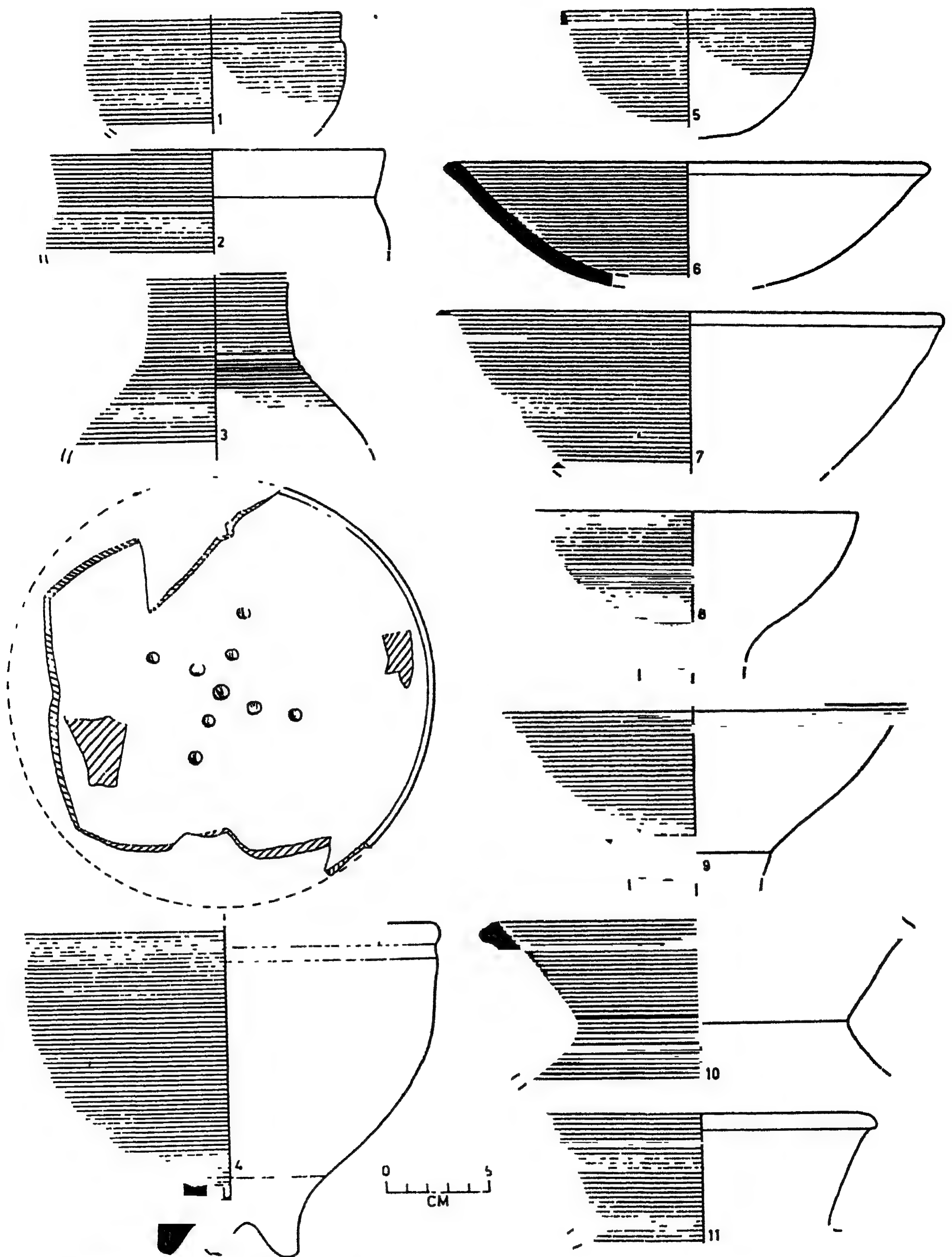

A1


A2

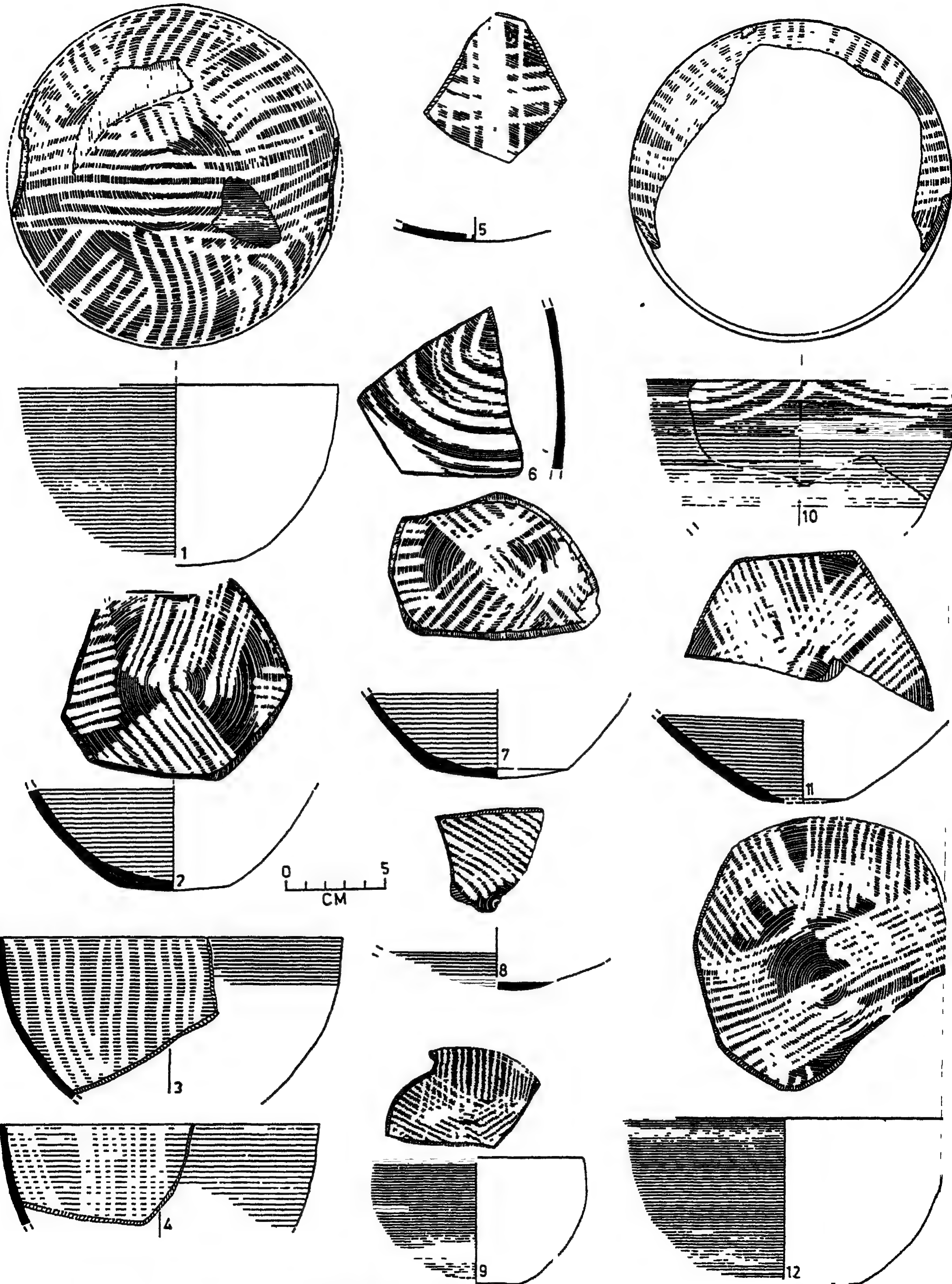

A3


A4

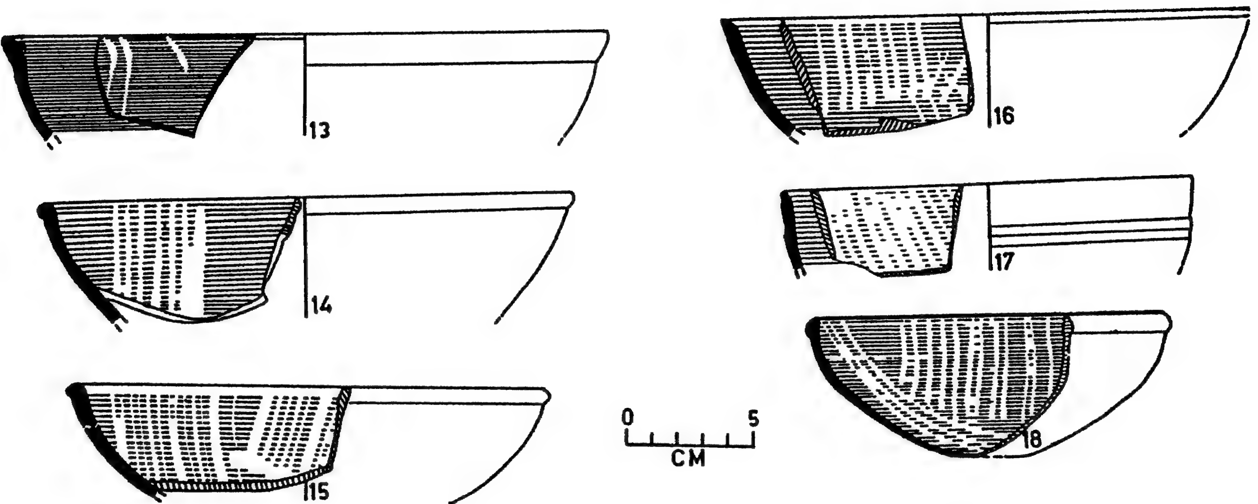

1
2
3
4
5
6
7
8
9
10
11
0
5
CM



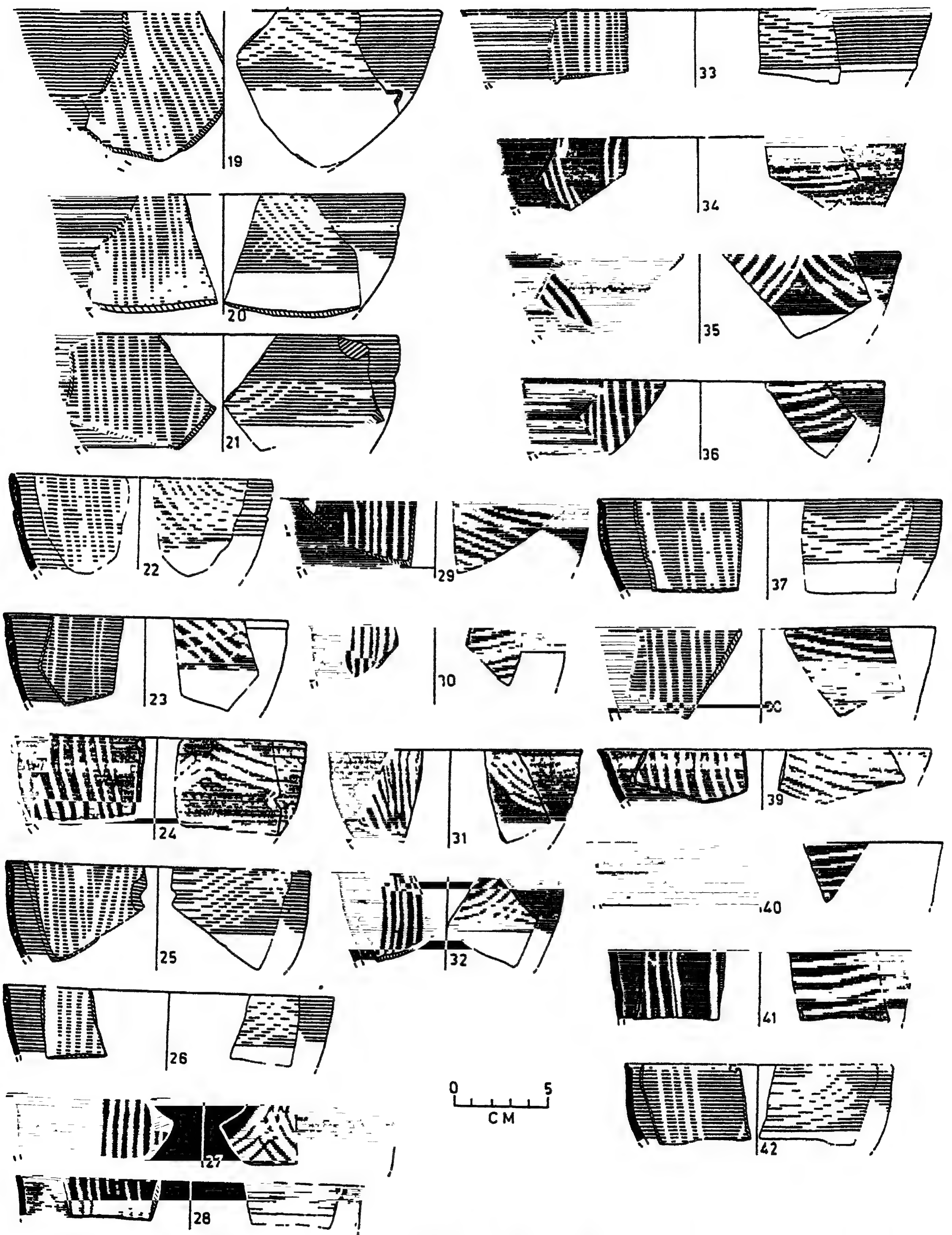
रेखाचित्र संख्या- 17,
इमलीडीह : द्वितीय काल के कुछ अन्य पात्र-प्रकार (पुरूषोत्तम सिंह, प्राग्धारा, अंक 4 से साभार



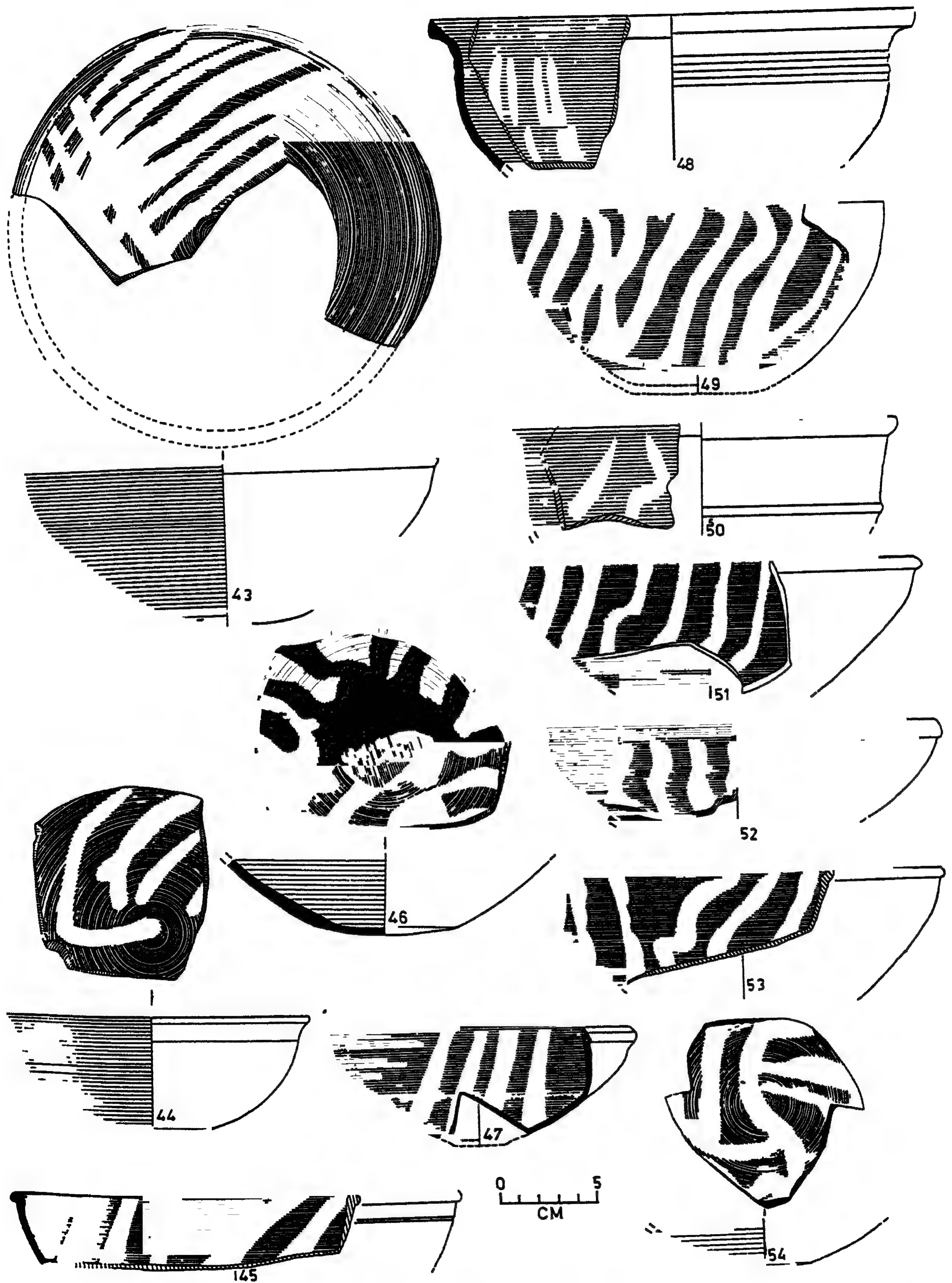
रेखाचित्र संख्या- 18, नरहन : प्रथमकाल, पेन्टेड ब्लैक-एण्ड-रेड वेयर (पुरुषोत्तम सिंह, एक्सकेवेश



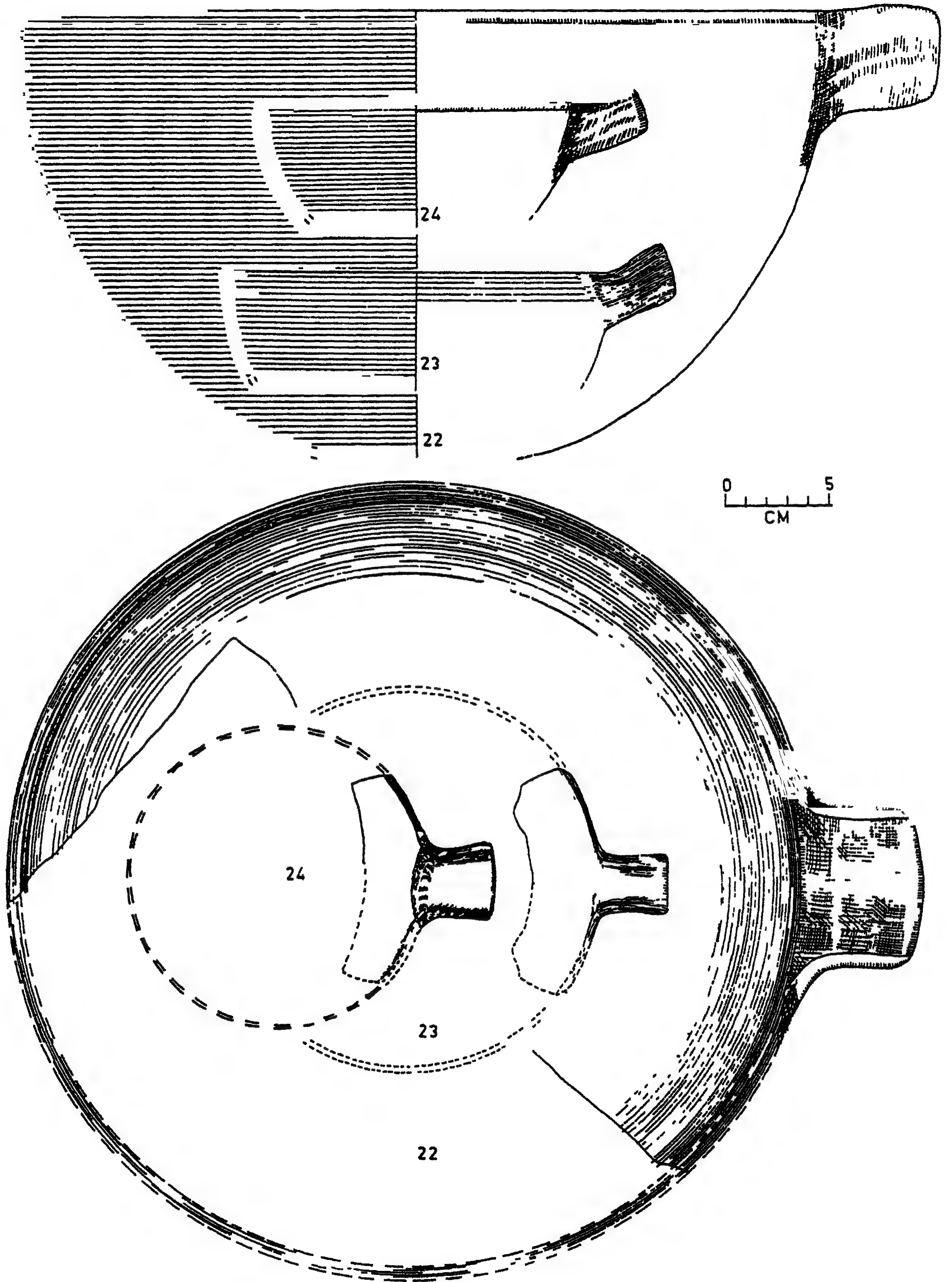
रेखा चित्र संख्या- 19, नरहन : प्रथमकाल, पेन्टेड ब्लैक-एण्ड-रेड वेयर (पुरुषोत्तम सिंह, एक्सकेवेशन ऐट नरहन से साभार)



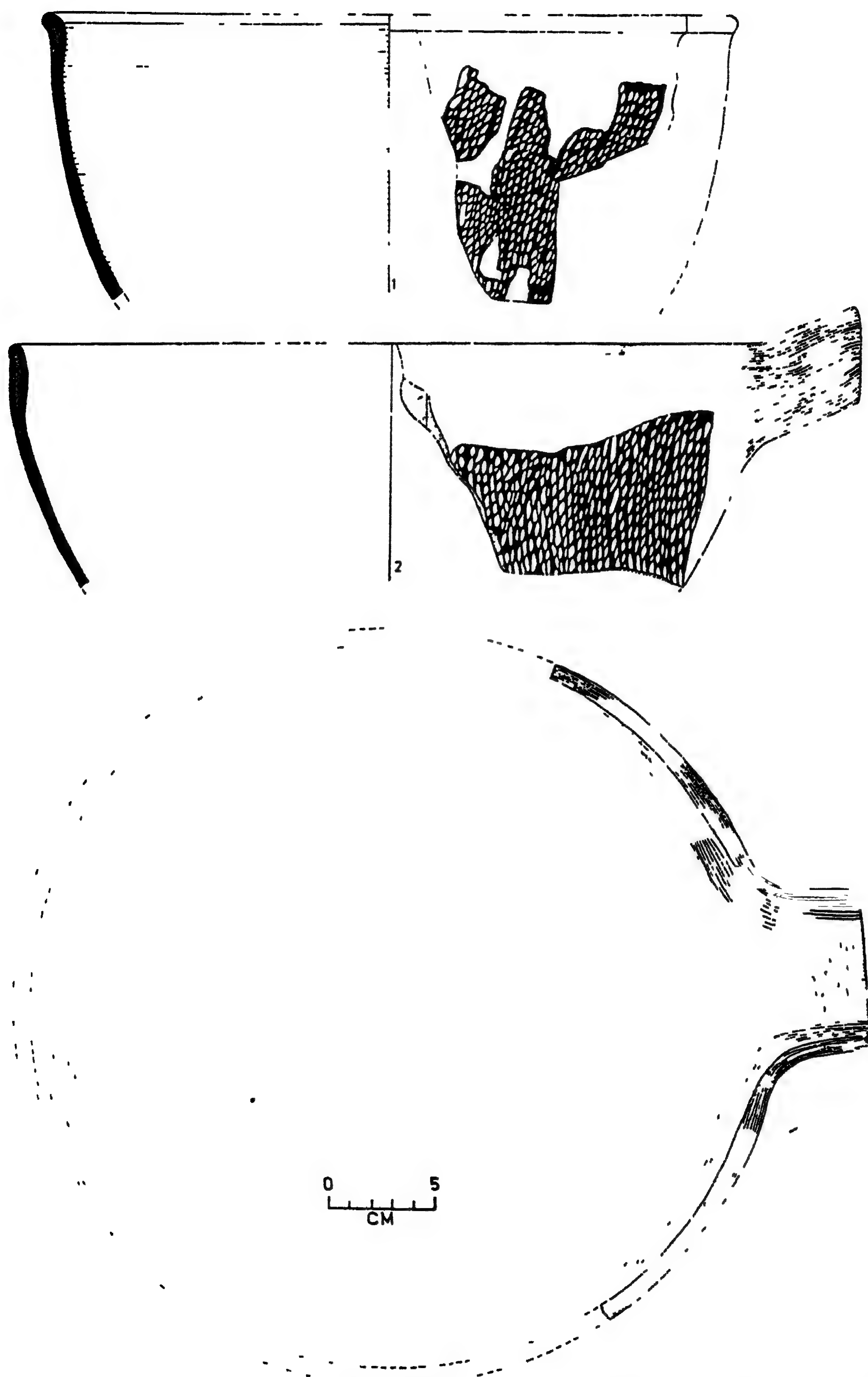
रेखाचित्र संख्या- 20, नरहन : प्रथमकाल, पेन्टेड ब्लैक-एण्ड-रेड वेयर (पुरुषोत्तम सिंह, एक्सकेवेशन ऐट नरहन से साभार)



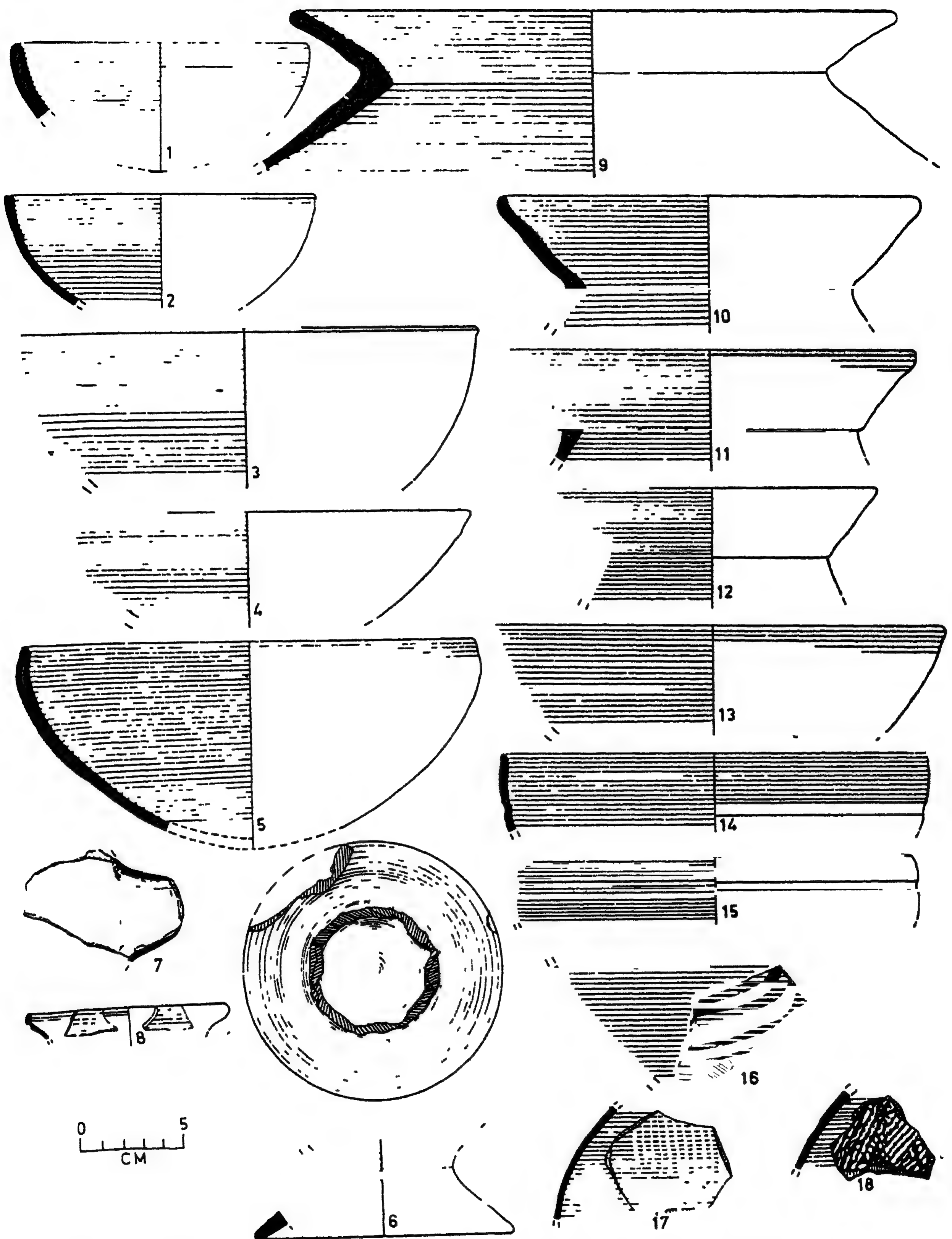
रेखाचित्र संख्या- 21, नरहन : प्रथमकाल, पेन्टेड ब्लैक-एण्ड-रेड वेयर (पुरुषोत्तम सिंह, एक्सकेवेशन ऐट नरहन से साभार)



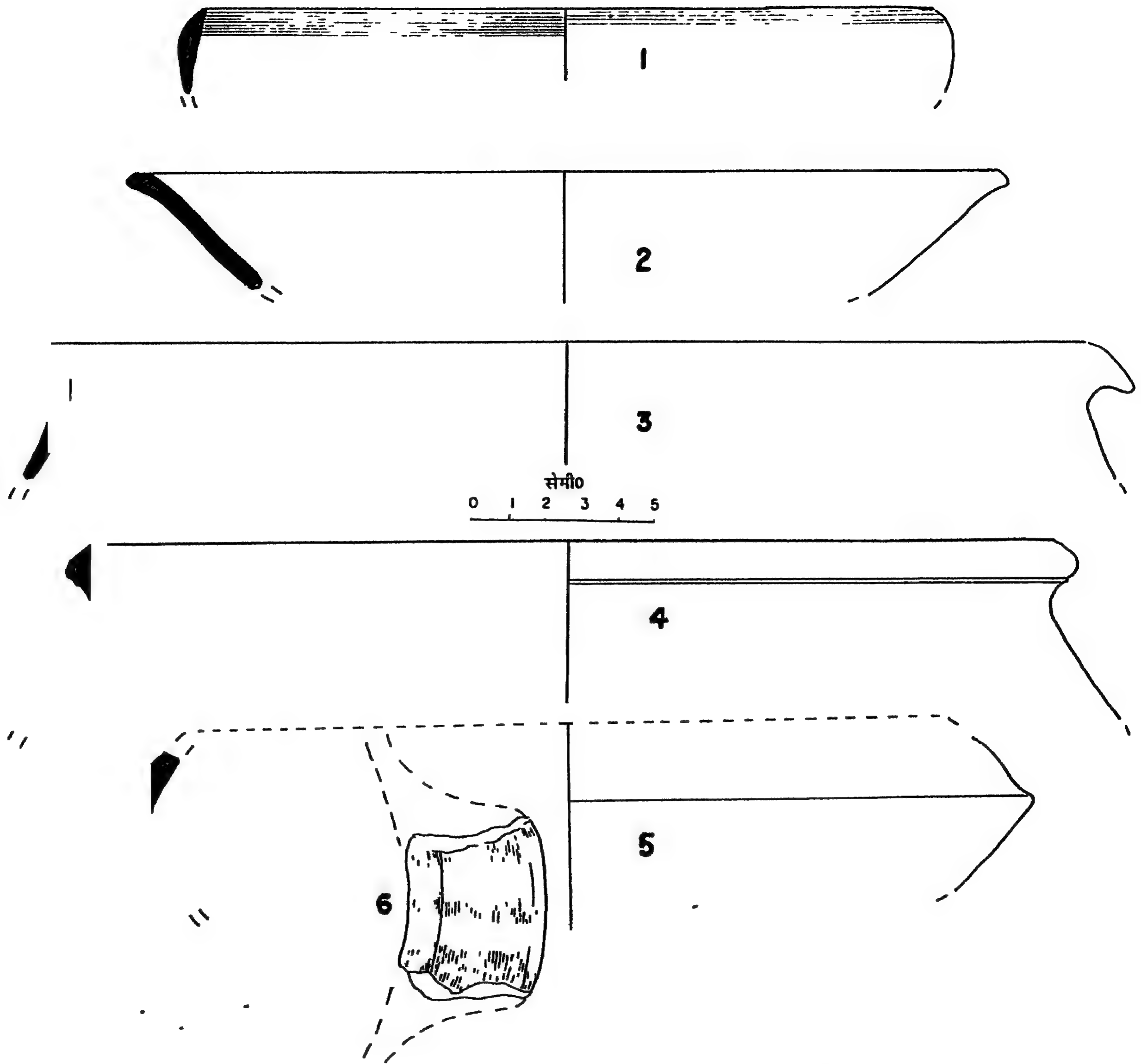
रेखाचित्र संख्या- 22, नरहन : प्रथमकाल, बर्निस्ड ब्लैक-एण्ड-रेड वेयर (पुरुषोत्तम सिंह, एक्सकेवेशन ऐट नरहन से साभार)



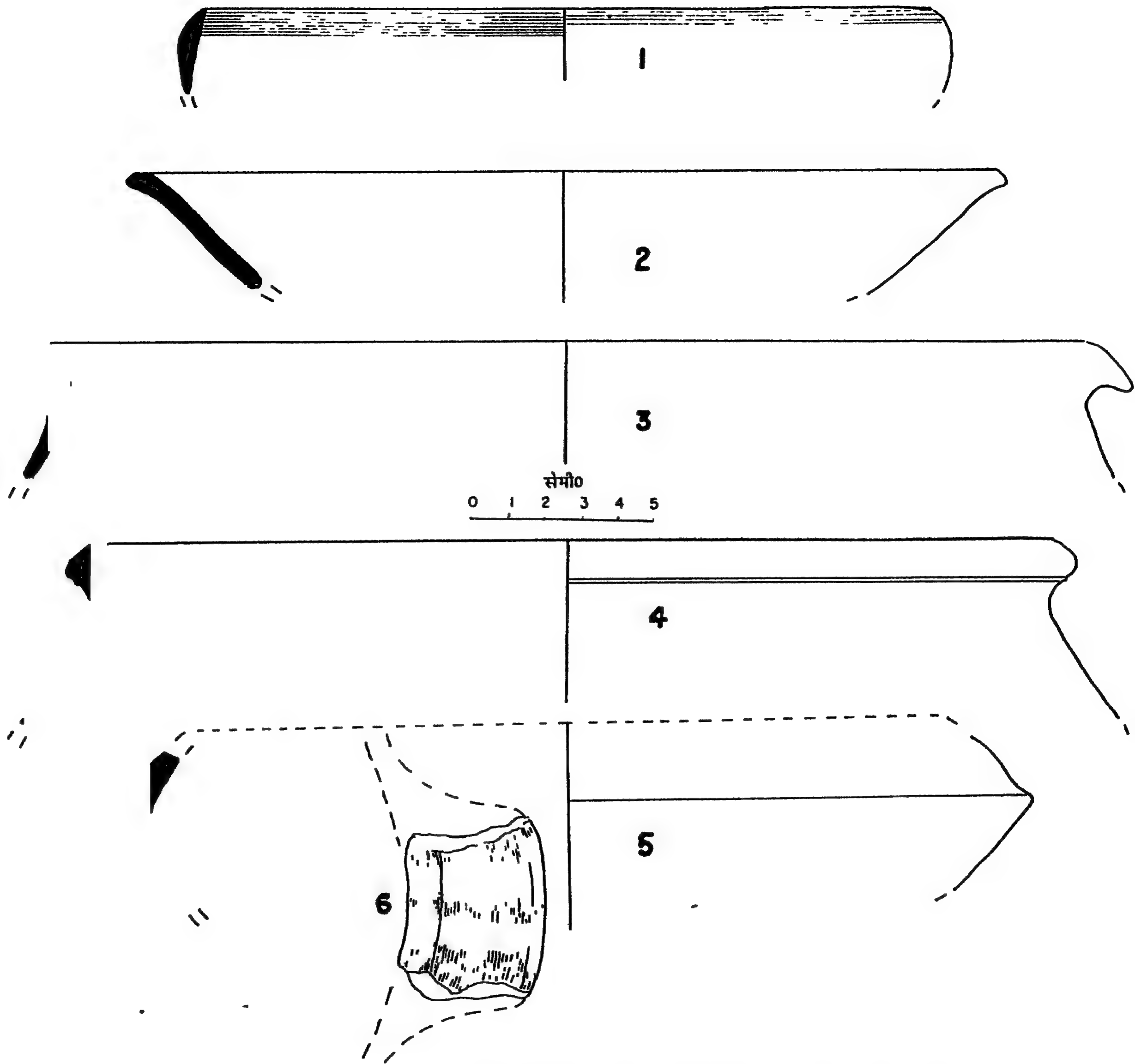
रेखाचित्र संख्या- 23 नरहन : प्रथमकाल, कार्डेड वेयर (पुरुषोत्तम सिंह, एक्सकेवेशन ऐट नरहन से साभार)



रेखाचित्र संख्या- 24, धुरियापार : प्रथमकाल, ह्वाइट पेन्टेड ब्लैक-एण्ड-रेड वेअर, नं० 18, कार्ड इम्प्रेस्ड मृद्भाण्ड का ठीकरा (पी. सिंह, ए. के. सिंह, इन्द्रजीत सिंह प्राग्धारा, अंक 2 से साभार)

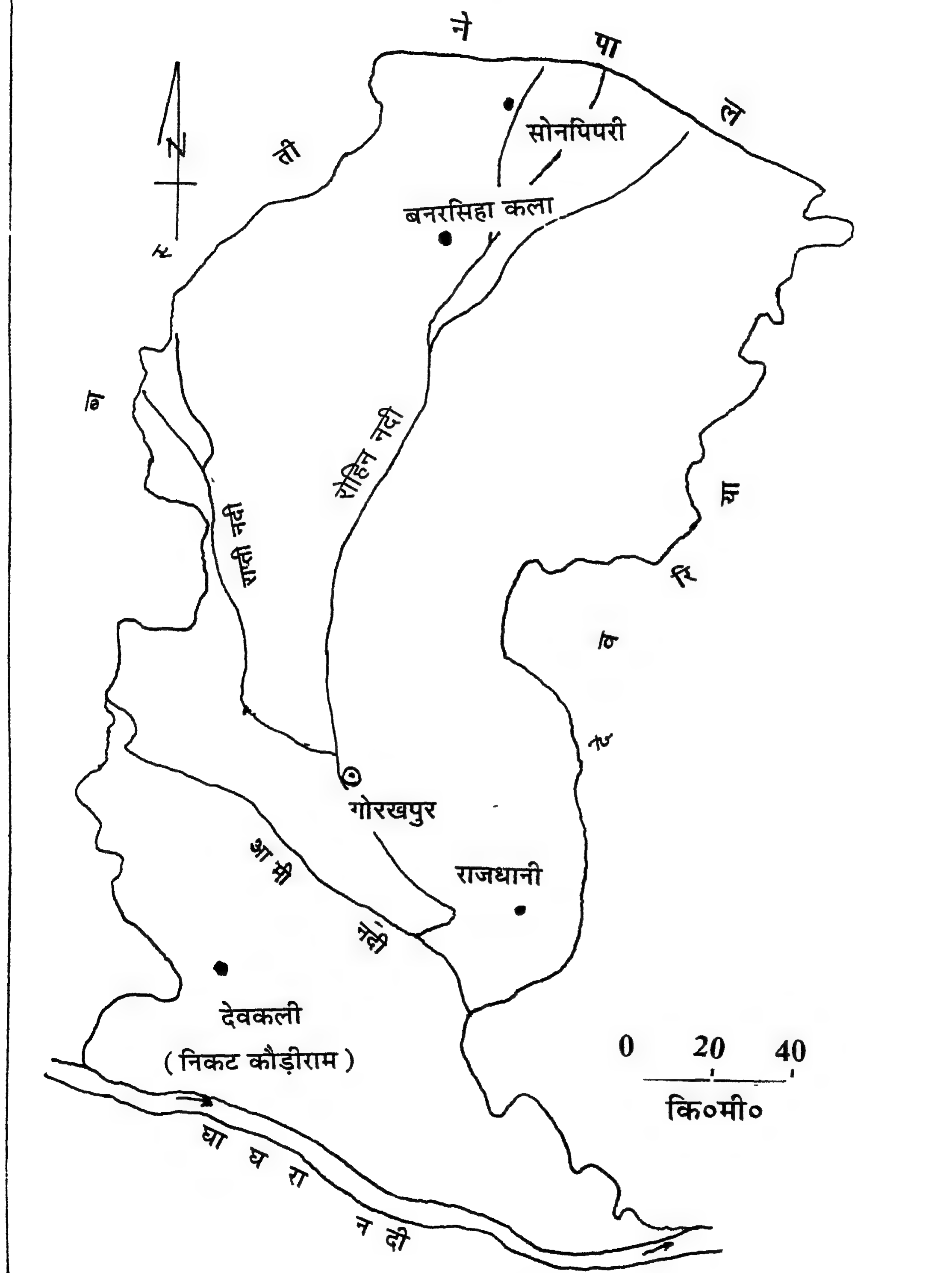


रेखाचित्र संख्या–25, सिकरीगंज : ताम्रपाषाणिक एवं प्रारम्भिक ऐतिहासिक पात्र–प्रकार
(सर्वेक्षण से प्राप्त)



रेखाचित्र संख्या–25, सिकरीगंज : ताम्रपाषाणिक एवं प्रारम्भिक ऐतिहासिक पात्र-प्रकार
(सर्वेक्षण से प्राप्त)

गोरखपुर जनपद के प्रारम्भिक लौह कालीन स्थल



मानचित्र संख्या-3

गोरखपुर जनपद के प्रारम्भिक ऐतिहासिक स्थल

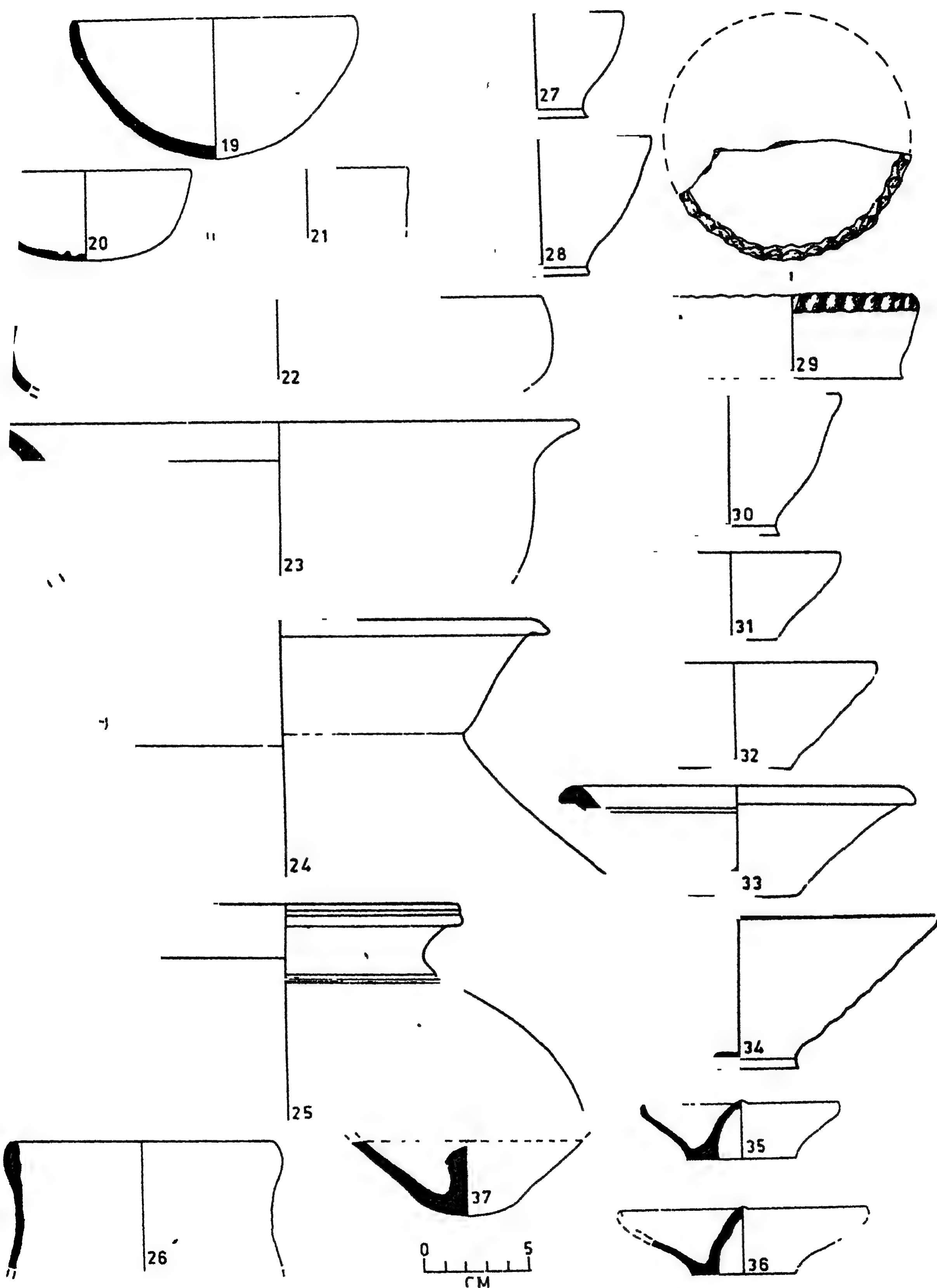
नेपाल
बस्ती
बिहार
सोनपिपरी
बनरसिहा
रोहिन नदी
गण्डक नदी
राप्ती नदी
गेनवरा
इटार
गोरखपुर
आमी नदी
महादेवा बाजार
कोठा
उसरैन
बदरा तिवारी
उपधौलिया
राजधानी
कुआनो
गुरुम्ही
गोरसेहरा
इमलीडीह
सिकरीगंज
धुरियापार
देवकली (निकट गगहा)
गिरधरपुर दुबवलिया
मकन्दवार
असौजी
उरूवा बाजार
घाघरा नदी

0 20 40

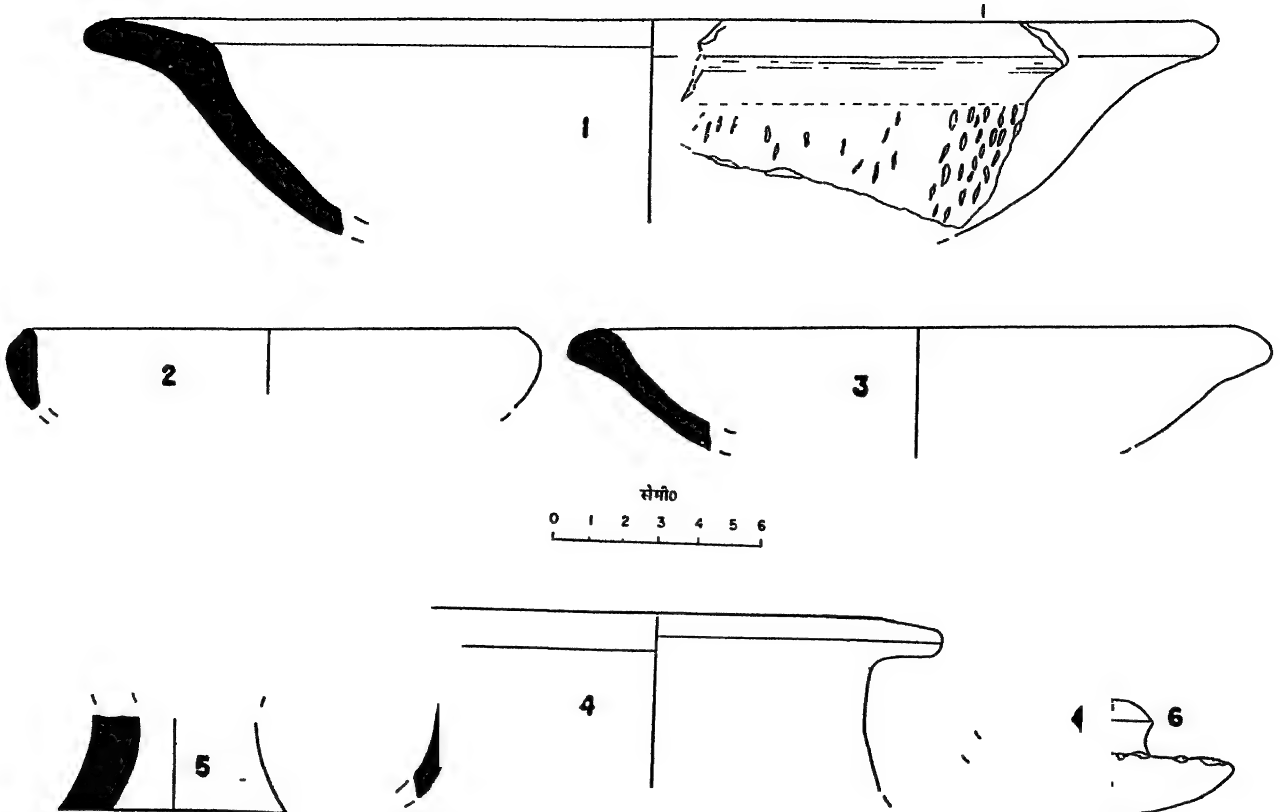


कि०मी०

मानचित्र संख्या–4



रेखाचित्र संख्या- 28, धुरियापार : द्वितीय एंव तृतीय काल के रेड वेअर के मुख्य पात्र-प्रकार, नं० 19 प्रथम काल से उपलब्ध ग्रे-वेयर का हस्तनिर्मित कटोरा

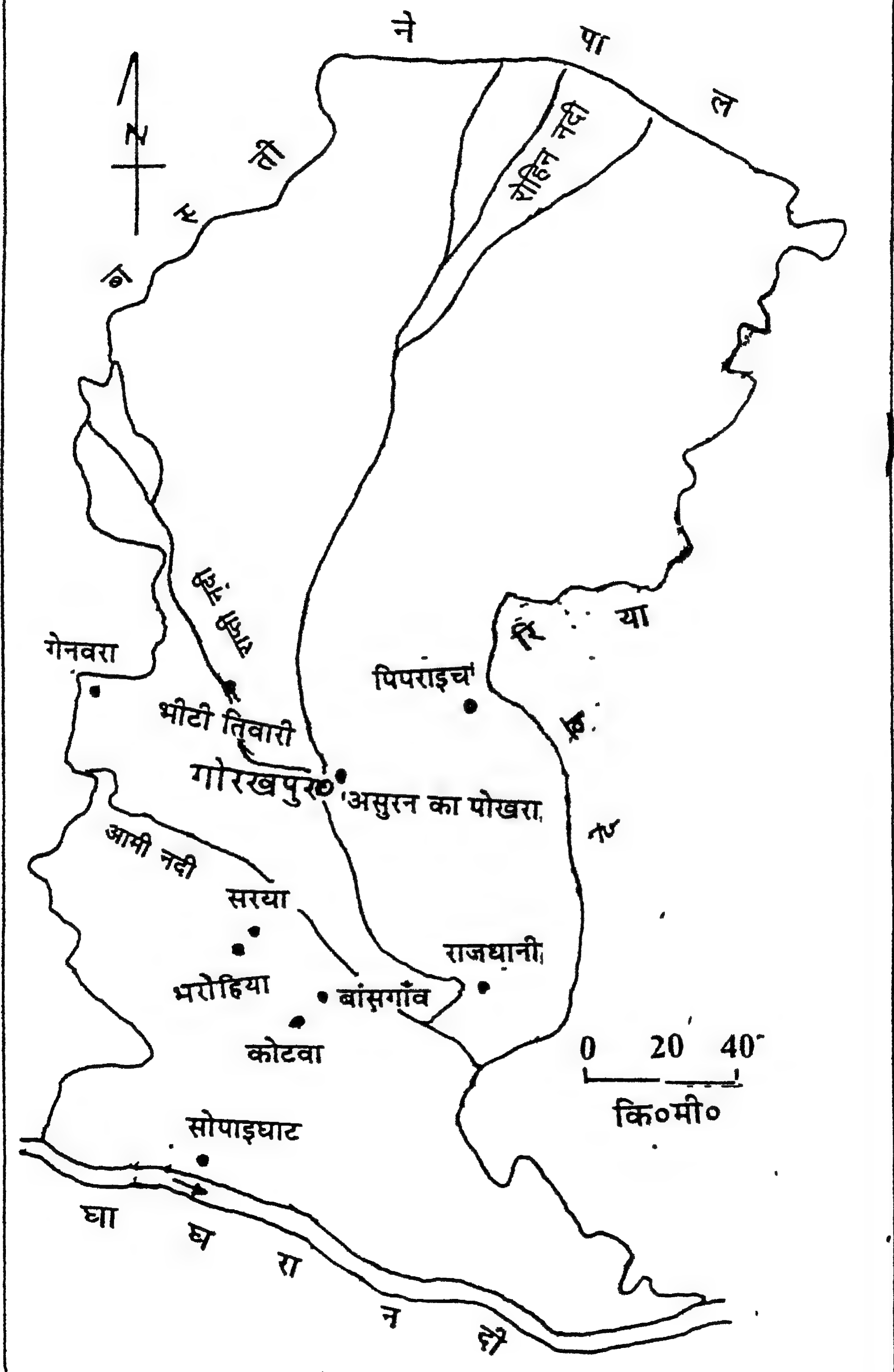


रेखाचित्र संख्या–29, (i) इमलीडीह (1,2,3) नवपाषाणिक एवं ताम्रपाषाणिक पात्र–प्रकार

(ii) उरूवा बाजार (4,5) कुषाण काल के लाल रंग के पात्र–प्रकार

(iii) भरोहिया (6) कुषाण काल का लाल रंग का पात्र–प्रकार

(सर्वेक्षण से प्राप्त)

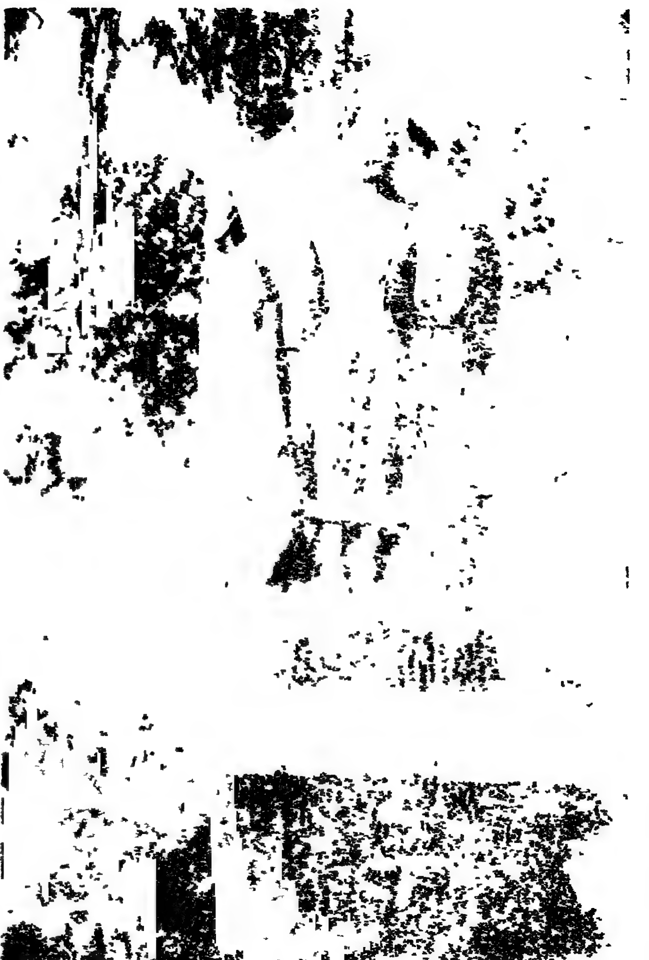

गोरखपुर जनपद के ऐतिहासिक स्थल
ने पा ल
रोहिन नदी
गोनवरा
पिपराइच
भीटी तिवारी
गोरखपुर
असुरन का पोखरा
आमी नदी
सरया
राजधानी
भरोहिया
बांसगाँव
कोटवा
0 20 40
कि०मी०
सोपाइघाट
घा घ रा न दी

मानचित्र संख्या-5



छायाचित्र संख्या 2, विष्णु, विष्णु मंदिर

पूर्व मध्ययुगीन





याचित्र संख्या--4, सूर्य, देवकली (निफट कौड़ीराम),

पाल–युग



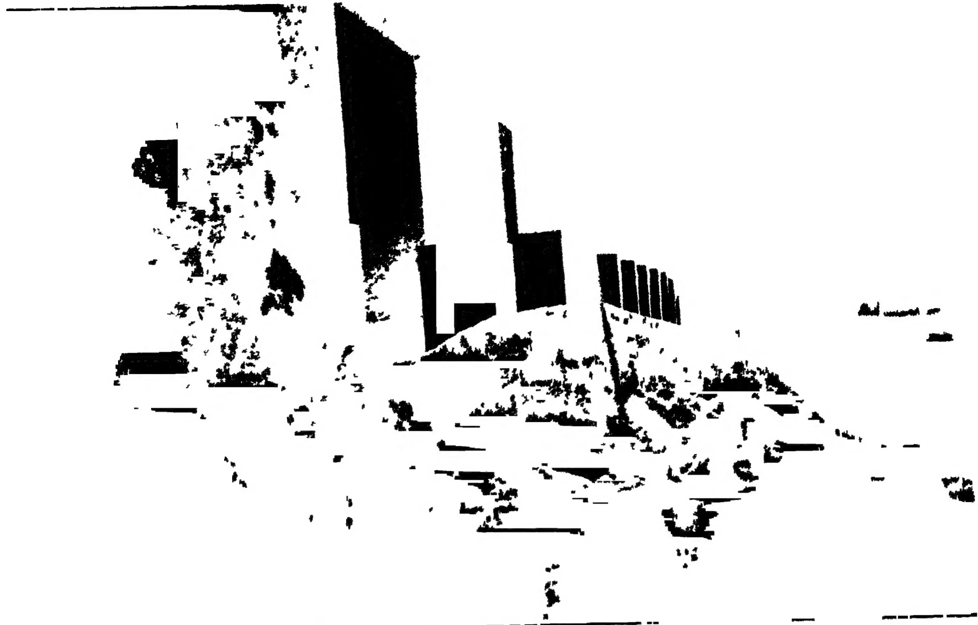
छायाचित्र संख्या- 3, सूर्य, देवकली (निकट गगहा),

पाल–युग



छायाचित्र संख्या-5, संग्रह-पात्र, (कूँड़ा), तियर (निकट देवकली, कौड़ीराम), कुषाण-युग





छायाचित्र संख्या-7, मूर्ति-खण्ड, तुर्कपट्टी-महुअवा, गुप्त-युग



छायाचित्र संख्या-8, शिवलिंग, सरया, पाल-युग



छायाचित्र संख्या-९, अग्नि, सरया, पाल-युग